© हिन्दी विभाग
केरल विश्वविद्यालय
कार्यवट्टम, तिरुवनंतपुरम
2021

A PEER REVIEWED JOURNAL ISSN 2347 8152
अंक : 11

शोध दर्पण

भूमंडलीकरण पर केंद्रित विशेषांक

हिन्दी विभाग
केरल विश्वविद्यालय
कार्यवट्टम, तिरुवनंतपुरम
2021

A PEER REVIEWED JOURNAL

शोध दर्पण

भूमंडलीकरण पर केंद्रित विशेषांक

हिंदी विभाग, केरल विश्वविद्यालय

कार्यवट्टम, तिरुवनंतपुरम

अंक 11

2021

A PEER REVIEWED JOURNAL

परामर्श मंडल

डॉ. गरिमा श्रीवास्तव, प्रोफेसर, भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू . नई दिल्ली

डॉ. जितेन्द्र श्रीवास्तव, प्रोफेसर, इंदिरागांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय , नई दिल्ली

संपादक
प्रोफ. (डॉ.) आर . जयचंद्रन
अध्यक्ष, हिंदी विभाग

सह- संपादिका
डॉ. एस . आर . जयश्री
आचार्य, हिंदी विभाग

संपादक मंडल
डॉ. सी . एस . सुचित
डॉ. लीना बी .एल

ISSN : 2347-8152

©
संपादक

HINDI SHODH DARPAN - BHOOMANDALIKARAN PAR KENDRIT VISHESHANK- EDITOR DR.R.JAYACHANDRAN, HEAD, DEPARTMENT OF HINDI. PUBLISHED BY DEPARTMENT OF HINDI, UNIVERSITY OF KERALA KARIAVATTOM, THIRUVANANTHAPURAM-695581. EDITORIAL ASSISTANCE, COVER PAGE DESIGNING AND LAYOUT SHIJU S.G PRINTED AND PUBLISHED BY KERALA UNIVERSITY PRESS PALAYAM, THIRUVANANTHAPURAM

संपादकीय

शोध दर्पण का प्रस्तुत अंक भूमंडलीकरण पर केंद्रित हैं । इसमें कई लेखकों ने इस विषय को केंद्र में रखकर आलेख लिखकर इस अंक को समृद्ध बनाने में अपनी भूमिका निभाए हैं । आप गणमान्य पाठकों के समक्ष इस अंक को प्रस्तुत करने में मुझे अत्यंत हर्ष का अनुभव हो रहा है ,यह इसलिए भी है कि आज के जमाने में साहित्य की प्रासंगिकता पर कई तरह के प्रश्न चिह्न खड़ा कर दिए जा रहें हैं ,इसके प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कई सारे कारण भी गिनाए जा सकते हैं, लेकिन मुख्य रूप से उपनिवेशवाद, नवउपनिवेशवाद, बाजारीकरण, भूमंडलीकरण आदि इनमें कुछ ऐसे कारण हैं,जो एक ओर तो साहित्य के लिए चुनौतियाँ खड़े करते हैं और दूसरी ओर पाठकों को ऐसे आश्वस्त भी कराते हैं कि ये साहित्य को समय की माँग के अनुसार सही रास्ते पर अग्रसर करवाते हैं ।

शोध दर्पण के इस अंक के प्रकाशन के लिए आर्थिक सहायता केरल विश्वविद्यालय से प्राप्त हुई है । अत: हम केरल विश्वविद्यालय के अधिकारीयों के प्रति अत्यंत आभार प्रकट करना चाहेंगे । इस अंक को साकार बनाने में जिन –जिन लेखक-लेखिकाओं ने सहयोग देकर हमारा हौसला बढ़ाया है उन सबके प्रति भी हम आभारी हैं ।

मुद्रण कार्य केरल विश्वविद्यालय के मुद्रणालय में हुआ है ,इसके लिए निरंतर प्रयासरत मुद्रणालय के अधीक्षक एवं अन्य कर्मचारियों के प्रति भी हम आभारी हैं।

प्रोफेसर.(डॉ.) जयचंद्रन.आर

शोध दर्पण — अनुक्रमणिका

1	ग्लोबल गाँव के देवताओं द्वारा शोषित आदिवासी का यथार्थ 'ग्लोबल गाँव के देवता'	डॉ. अम्बिली.टी
2	उपनिवेशवाद की राजनीति : 'प्रजातंत्र के प्रेत' के सन्दर्भ में	ब्लेस्सनराजू
3	नये जोवन मूल्यों के इर्दगिर्द : 'उसके हिस्से की धूप' के विशेष सन्दर्भ में	डॉ. धन्या एल
4	बाज़ार की मृगमरीचिका : दौड़	डॉ. नीलम
5	'रेत समाधि' की सरहदें — एक मूल्यांकन	प्रो.एस.आर जयश्री
6	'काला पादरी' और आदिवासी जन जीवन का नब्ज़	डॉ. लीना बी.एल
7	वैश्वीकरण की दौर में दौड़	डॉ. एस. हरिप्रिया
8	वैश्वीकृत समाज में पारिवारिक संबंध: 'दौड' उपन्यास के संदर्भ में	हरिता कुमारी.जे
9	समाधि की हद सरहद	हिमा एम.एन
10	साम्प्रदायिकता के बदलते चहरे : 'गूँगी रुलाई का कोरस' उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में	अंजिता जे एम
11	वैशिविकता के परिप्रेक्ष्य में 'शब्द पखेरू'	डॉ इन्दू के . वी
12	वैश्वीकरण के दौर में 'छिन्नमूल'	डॉ. जयश्री.एस.टी
12	कॉर्पोरेट सेक्टर का प्रभाव	किरीट देबनाथ
14	भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में 'रेहन पर रग्घू'	डॉ. मजीदा

15	भूमंडलीकरण से ऊसर हुए कृषक मन को उर्वर बनाने का साहित्यक उद्यम — 'फांस'	डॉ. पूर्णिमा.आर
16	अपनी ही राख से पुर्नसृजित होने का स्वप्न -	प्रज्ञा
17	वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में चित्रा मुद्गल के उपन्यास आवाँ	प्रिया रानी पी.एस
18	वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में 'लेडीज़ क्लब'	टीना ऐ. वासुदेवन
19	वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में प्रदीप सौरभ का उपन्यास 'मुन्नी मोबाइल'	जोस्ना जोस, तेरेसा कुरियाकोस
20	हिंदी साहित्य और वृद्ध विमर्श : एक झांकी	डॉ रम्या जी एस नायर
21	वैश्वीकरण के दौर में 'आवाँ' उपन्यास	डॉ.षीबा शरत.एस
22	यौन अस्मिता की तलाश और 'सवाल पंख वाली नाव' के परिप्रेक्ष्य में एक दृष्टिकोण	श्रीवर्षा मोहन
23	'ग्लोबल गाँव के देवता उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में गाँव का वैश्वीकरण	डॉ.ज्योतिश्री बालकृष्णन
24	उपनिवेशवाद के खिलाफ प्रतिरोध का स्वरः रंगभूमि के विशेष संदर्भ में	सोजा एस.ओ
25	'दौड़' : वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में	डॉ. अन्सा ए
26	'अस्थि फूल' उपन्यास में आदिवासी नारी का दर्द : वैश्वीकरण के विशेष संदर्भ में	हीरा चंद्रन
27	एक मॉडर्न लड़की की करुण गाथा — पचपन खंभे लाल दीवारें	अमला
28	बदलते जीवन मूल्यों का चित्रण गिलिगडु उपन्यास में	सुस्मिता
29	'वैश्वीकरण के दौर की 'सबसे बुरी लड़की'-	डॉ. दीपक के आर
30	समकालीन हिंदी साहित्य — विस्थापन के सन्दर्भ में	प्रो.(डॉ.)आर जयचंद्रन

1

ग्लोबल गाँव के देवताओं द्वारा शोषित आदिवासी का यथार्थ ''ग्लोबल गाँव के देवता''

अम्बिली. टी

सारांश

भूमंडलीकरण ऐसी संकल्पना है, जिसने विश्व को ही एक बाज़ार बना दिया है। इसके कारण विश्व की दूरियाँ मिट गयीं। हमारी उत्तराधुनिक संकल्पना भी इसके अनुकूल है। इसने हर क्षेत्र को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया। साहित्य भी अछूता नहीं रहा। अन्य भाषा साहित्यों के समान हिन्दी में भी इसकी स्पष्ट झलक हम देख सकते हैं। हिन्दी साहित्य में श्री. रणेंद्र का योगदान उल्लेखनीय है। इन्होंने आदिवासी जीवन को ही मुख्य विषय के रूप में चुन लिया था। यही नहीं, भूमंडलीकरण पर विशेष अध्ययन भी किया था। ''ग्लोबल गाँव के देवता'' उपन्यास के साथ हिन्दी साहित्य में इनका पदार्पण हुआ था। इस उपन्यास में भूमंडलीकरण के कारण पूर्ण रूप से विस्थापित होती जा रही असुर आदिवासी जनता की पीड़ापूर्ण ज़िंदगी की कहानी है। दर असल प्रस्तुत उपन्यास ग्लोबल गाँव के देवताओं द्वारा शोषित आदिवासी जीवन का सही दस्तावेज़ है।

बीज शब्द

भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण, बाज़ारवाद, वसुधैव कुटुंबकम्, आदिवासी, उत्तराधुनिकता,

संकल्पना, परिकल्पना, प्रौद्योगिकी, एकध्रुवीय, उदारीकरण, निजीकरण, प्रतिरोध, आदिवासी, सभ्यता

हिन्दी के 'भूमंडलीकरण' शब्द के लिए अंग्रेज़ी में 'ग्लोबलाइज़ेशन' शब्द प्रचलित है। 'वैश्वीकरण' इसका पर्यायवाची शब्द है। भूमंडलीकरण दो शब्दों के योग से बना है- 'भू' का मतलब है भूमि और 'मंडलीकरण' का मतलब है समाहित करना। हमारे देश भारत में तो भूमंडलीकरण जैसी संकल्पना का इतिहास पुराना है। यहाँ वैदिक काल से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की संकल्पना का प्रचलन शुरू हुआ था, जो संपूर्ण दुनिया को ही एक परिवार मानने की भावना थी। वह तो मानव के शाश्वत मूल्यों पर आधारित था। पर अब हम भूमंडलीकरण की जो चर्चा कर रहे हैं, यह तो उससे नितांत भिन्न है। भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण का लक्ष्य तो सार्व भौमीकरण ही है। पुराने ज़माने में भी दुनिया की जनता व्यापार या रोज़गारी के लिए दूसरे देशों में जाती थी। किन्तु आज तो वैश्वीकरण का अर्थ बदल गया है। भूमंडलीकरण द्वारा व्यापार, सेवा, तकनीकी आदि के क्षेत्र में वृद्धि एवं विस्तार हुए हैं। भूमंडलीकरण को श्री. हेमंत जोशी इस प्रकार परिभाषित करते हैः- ''भूमंडलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसने समकालीन समस्त मीडिया- अखबारों, जनसंचार माध्यम एवं सूचना प्रौद्योगिकी के सहारे विश्व बाज़ार तैयार किया है।'' 1

भूमंडलीकरण के द्वारा कंपनियों की आर्थिक वृद्धि बडे पैमाने में हुई। इससे पूरे विश्व के बाज़ार, एक बाज़ार जैसा बन गया। इससे विश्व की दूरियाँ मिट गयीं। सारी दुनिया में एक नयी सामाजिक आर्थिक परिकल्पना का विकास हुआ। हमारी उत्तराधुनिक संकल्पना भी इसके अनुकूल है। कंप्यूटर, इंटरनेट, मोबाइल जैसे उपकरणों के द्वारा हम आसानी से

दुनियावालों को आपस में जोड सकते हैं। वैश्वीकरण का मुख्य उद्देश्य दुनिया की विविध अर्थ व्यवस्थाओं को समन्वित करके पूँजी, श्रम, सेवा, प्रौद्योगिकी आदि का, बिना रुकावट के, आदान प्रदान है। अब सारी दुनिया ही विश्व बाज़ार बन गयी है। भाषा और संस्कृति का विनिमय संभव हुआ। सूचनाएँ दुनिया भर जल्दी ही पहुँचने लगीं।

सन् 1991 ई में सोवियत संघ के विघटन के बाद दुनिया एकध्रुवीय बन गयी। अमेरिका के नेतृत्व में बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने तीसरी दुनिया के बाज़ार पर अपना अधिकार जमाना शुरू किया। इस व्यवस्था को ही हम भूमंडलीकरण के नाम से अभिहित करते हैं। भूमंडलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण से जिस बाज़ारवाद एवं उपभोक्तावाद का उद्भव हुआ, उससे रिश्ते, संवेदनायें आदि नष्ट होते जा रहे हैं। पूँजी, पैसे और स्वार्थ ने इनके स्थान को हडप लिया था। प्रख्यात वैज्ञानिक प्रोफसर यशपालजी इसकी विद्रूपता एवं अपसंस्कृतीकरण की ओर संकेत करते हुए कहते हैं - ''भूमंडलीकरण का अर्थ यह नहीं है कि यह सब लोगों के लिए बराबर है। इसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी बात बिलकुल नहीं। भूमंडलीकरण एक ऐसी स्वेच्छाकारी प्रक्रिया है, जिसके नियमों का पालन हमें करना पड़ेगा और हम सबको उसके पीछे चलना पड़ेगा। ये यह भी तय करेंगी कि हमारी स्थितियाँ कैसी होंगी। उन्हें कैसी होनी चाहिए। आपको अनुकूलित किया जाएगा। आज की स्थिति तो भयानक बन गयी है कि बाज़ारवाद से हर कोई पीड़ित है'' [2]

भूमंडलीकरण की इस प्रक्रिया ने हर क्षेत्र को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है। साहित्य भी अछूता नहीं रहा। अन्य भाषा साहित्यों के समान ही हिन्दी में भी भूमंडलीकरण की स्पष्ट झलक हम पा सकते हैं।

हिन्दी उपन्यास साहित्य पर विचार करें तो एक ओर भूमंडलीकरण के प्रभाव में अनेक उपन्यासों की रचना हो रही है, दूसरी ओर उसके प्रतिरोध के रूप में भी अनेक उपन्यास रचे जाते हैं। हिन्दी साहित्य के लिए श्री. रणेंद्र का योगदान विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने आदिवासी जीवन को ही अपने मुख्य विषय के रूप में चुन लिया था। रणेंद्रजी ने भूमंडलीकरण एवं विकास के इस दौर में आदिवासी जनता में जो आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहे हैं, उन्हें अत्यंत बारीकी से चित्रित करने का प्रयास किया है। इसमें इन्हें सफलता भी मिली है। सन् 2009 ई में प्रकाशित ''ग्लोबल गाँव के देवता'' उपन्यास के साथ हिन्दी साहित्य में उनका पदार्पण हुआ था, जिसमें उन्होंने असुर जाति के आदिवासियों के जीवन की जाँच पडताल की है। इनका दूसरा उपन्यास है सन् 2014 ई में प्रकाशित ''गायब होता देश'', जिसमें इन्होंने मुंडा आदिवासियों के जीवन को परखने की कोशिश की है। इनका तीसरा उपन्यास है ''गूँगी रुलाई का कोरस'', जो शास्त्रीय संगीत के घरानों पर आधारित है। इनके कहानी संकलन हैं ''रात बाकी और अन्य कहानियाँ'' और ''छप्पन छुरी बहत्तर पेंच''। इनकी कविताओं का संकलन है ''थोडा सा स्त्री होना चाहता हूँ''।

रणेंद्र आदिवासी बाहुल्य राज्य झारखंड से विशेष संबन्ध रखनेवाले साहित्यकार हैं। इन्हें उन लोगों की सामाजिक, सांस्कृतिक विशेषताओं को देखने का अवसर मिला था। यही नहीं, ये भूमंडलीकरण के प्रभाव के अन्वेषक भी रहे। इन्होंने अपने इस अनुभव के साथ साहित्य क्षेत्र में प्रवेश किया था।

आदिवासी लोगों को हेय समझनेवाले लोगों में आदिवासियों के संरक्षक कहे

जानेवाले लोग भी शामिल हैं। आज भी इन लोगों को बर्बर, जंगली, असभ्य, नक्सली एवं हिंसक समझा जाता है। उपन्यास का आरंभ ही एक गैर आदिवासी शिक्षक की उस मानसिकता के साथ होता है, यथाः- ''जिसमें आदिवासियों को इस देश का विशिष्ट सांस्कृतिक समुदाय होने की घोषणा की गयी है। किन्तु उन्हें आज भी बर्बर, जंगली, असभ्य, नक्सली और हिंसक इत्यादि ही समझा जाता है।'' 3

'' ग्लोबल गाँव के देवता'' झारखंड की धरती से उपजे असुर समुदाय के जीवन संघर्ष की कथा कहनेवाला उपन्यास है। इसमें देवराज इंद्र से लेकर ग्लोबल गाँव के व्यापारियों तक फैली शोषण प्रक्रिया का चित्रण है। आग और धातु की खोज करनेवाली, धातु को पिघलाकर उसे आकार देनेवाली कारीगर हैं असुर आदिवासी जाति। इन लोगों पर, सभ्यता, संस्कृति और मनुष्य सबने प्रहार किया है। यह उपन्यास इन वनवासियों के जीवन का संतप्त सारांश है। शताब्दियों से अपनी संस्कृति और अपने अस्तित्व को नष्ट करके जीवन बितानेवाले असुर समुदाय को, रणेंद्रजी ने अत्यंत संवेदनशील होकर प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत उपन्यास में उकेरा है।

असुर जाति की कहानी तो हृदय को पिघलनेवाली कहानी है। उपेक्षित शोषित ज़िन्दगी बिताने के लिए अभिशप्त इन लोगों का चित्र उपन्यासकार ने इस प्रकार खींचा हैः- ''छाती ठोंक ठोंक कर अपने को अत्यंत सहिष्णु और उदार करनेवाली हिन्दुस्थानी संस्कृति ने असुरों के लिए इतनी जगह नहीं छोडी थी। वे उनके लिये बस मिथकों में शेष थे। कोई साहित्य नहीं, कोई इतिहास नहीं, कोई अजायबघर नहीं। विनाश की कहानियों के कहीं कोई संकेत मात्र भी नहीं।'' 4

रणेंद्रजी ने अपने उपन्यास में सर्वाधिक शोषित असुर आदिवासी समाज को चुन लिया था, जो विस्थापन की त्रासदी से पीड़ित है। यह त्रासदी तो भूमंडलीकरण का दुष्परिणाम है। इस विस्थापन से उस समाज का भौगोलिक परिवर्तन ही नहीं, उसके चेतनागत सांस्कृतिक रूप का संपूर्ण परिवर्तन होता है। भाषा और संस्कृति में पतन का मतलब है समाज की अस्मिता का नष्ट होना। इसी प्रकार प्राकृतिक वातावरण आदिवासियों का अधिकार है। आदिवासियों को इस अधिकार से वंचित होना पड़ता है। ''ग्लोबल गाँव के देवता'' में प्रकृति के साथ तादात्म्य के साथ रहनेवाले असुर आदिवासियों का यथार्थ चित्र है:-

''अखाडा में पर्व- त्योहार, सरहुल, हरियारी, सोहराय पर रात भर मांदर बजता। रात भर गाँव गाँव से जवान लडके जुटते। लडकियाँ जुडतीं। झूमर, जदुरा के बोलों पर रात भर चाँद नाचता। सखुआ और पलाश नाचता। नदी, झरना, पहाड़ नाचते। एक साथ पूरी प्रकृति नाचती।''5

आदिवासियों की अस्मिता को बनाये रखने के आग्रही रणेंद्रजी बीच बीच में आक्रोश एवं लाचारी प्रक़ट करते हैं। इस उपन्यास में एक ओर असुर जाति की जिजीविषा की प्रतिध्वनि है और दूसरी ओर इन्हें लूटनेवाली शक्तियों का षड्यंत्र है। भूमंडलीकरण के इस युग में विश्व को गलोबल गाँव बनाने की इस दौड में हम असल गाँवों को उसी रूप में बनाए रखने में असमर्थ हो रहे हैं। आदिवासियों की खुशी तो उनकी बसायी दुनिया में उनकी शर्त पर रहने पर ही पूरी होती है।

नगरीकरण ने आदिवासियों में सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक एवं मूलभूत अधिकार संबन्धी समस्यायें उत्पन्न कीं। आदिवासी लोग इन क्षेत्रों में उपेक्षित हो गये। इन समस्याओं

का सूक्ष्म चित्रण इस उपन्यास में है। विकास के नाम पर बड़ी बड़ी कंपनियाँ मुनाफा कमाने की दौड में आदिवासी गाँवों में शीघ्र गति से खनन कार्य में लगी हुई हैं। इसके शिकार हुए गाँववालों की व्यथा से पीड़ित है रणेंद्रजी। यथा वे कहते हैः- ''पिछले 25- 30 सालों में खान मालिकों ने जो बड़े बड़े गड्ढे छोडे हैं, बरसात में इन गड्ढों में पानी भर जाता है, मच्छर पलते हैं, महामारी फैलती है, लोग मरते हैं।''6

असुर जाति के आदिवासियों के बारे में साधारण जनता में जो धारणा है, उसे उपन्यासकार प्रस्तुत उपन्यास द्वारा हमारे सामने रखते हैं:-'' असुरों के बारे में मेरी धारणा थी कि खूब लंबे चौडे, काले कलूटे, भयानक, दांत वांत निकले हुए, माथे पर सींग वींग निकले हुए लोग होंगे, लेकिन किताब के किरदार लालचन को जानकर सब उलटपुलट हो रहा था। बचपन की सारी कहानियाँ उलट रही थीं।'' 7 यह उपन्यास इस धारणा का खंडन करता है।

शिक्षा का अभाव आदिवासी समाज की एक प्रमुख समस्या है। आदिवासी, शहर से दूर जंगलों में रहनेवाले हैं। वहाँ जो विद्यालय खोले गये हैं, वहाँ शिक्षण सुविधाओं एवं समर्थ अध्यापकों की कमी है। जो अध्यापक वहाँ नियुक्त होते हैं, वे वहाँ जाने के लिए तैयार नहीं। इस बात का उल्लेख प्रस्तुत उपन्यास में रणेन्द्रजी ने किया है कि आजकल अध्यापक आदिवासी क्षेत्रों के विद्यालयों की अपेक्षा अन्य क्षेत्रों में काम करना चाहते हैं। उपन्यासकार आदिवासी क्षेत्र भौरापाट और पाथरपाट विद्यालय की तुलना इस प्रकार करते हैं:- ''पाथरपाट स्कूल का कैंपस इतना बडा है कि भौंरापाट विद्यालय जैसे दो तीन गाँव समा जाएँ। इस विद्यालय के विशालकाय भवन में मेधावी लड़के पढ़ते हैं, जिन्हें सबसे ज़्यादा वेतन पानेवाले सुयोग्य अध्यापक पढ़ाते थे। आखिर इन्हें ही शासक बनना है। छात्रावास की

व्यवस्था भी अनूठी थी।'' 8 वास्तव में आदिवासी क्षेत्र के विद्यालय एवं छात्रावास जर्जर होते हैं। इसलिए आदिवासी बच्चे वहाँ जाना पसंद नहीं करते हैं।

आदिवासी लोगों की जटिल समस्या है कि जहाँ ये लोग रहते हैं, वहाँ सरकार व पूँजीपति वर्ग मिलजुलकर उन क्षेत्रों से उन्हें विस्थापित करने का षड्यंत्र रचते रहते हैं। इनका लक्ष्य वहाँ के खनिज हैं। प्राकृतिक खनिज पदार्थों से यह क्षेत्र भरा पड़ा है। इसे मन में रखकर उद्योगपति वर्ग इस क्षेत्र में अपने उद्योग लगाने के होड में है। इन क्षेत्रों में ये लोग आदिवासियों से कठिन काम करवाते हैं और कम वेतन देते हैं। रणेंद्रजी इस खनन से उत्पन्न समस्याओं का जिक्र करते हैं। ये माइंस मालिक खनन के बाद बड़े बड़े गड्ढों को छोड़ देते हैं। बरसात के दिनों में इनमें पानी भर जाता है। मच्छरों के कारण आदिवासियों को, अनेक प्रकार की बीमारियों का शिकार होना पड़ता है। ये जान बूझकर ऐसे करते हैं कि आदिवासी उस क्षेत्र से पलायन कर जायें, तो उनका खनन कार्य निर्बाध रूप से चलते रहे और आसानी से भूमि भी हड़प लिया जाये। विस्थापन के शिकार बने आदिवासियों की दयनीय ज़िंदगी का चित्र इस उपन्यास में है, यथाः-''देश के विकास का और आश्वासन दिया जाता है पुनर्वास और मुआवजे का। किन्तु न तो विकास के सुख में उनकी कोई खास सहभागिता ही होती है और न ही पुनर्वास एवं मुआवजे का कोई खास धरातलीय रूप ही होता है।''9 इस प्रकार अस्मिता विहीन या विस्थापित आदिवासी जनता का सच्चा चित्र इस उपन्यास में मिलता है।

प्रस्तुत उपन्यास यह भी चित्रित करता है कि आदिवासियों की भूमि को हड़पने के लिए सरकारी तंत्र और पूँजीपति वर्ग किस प्रकार के षड्यंत्र रचते हैं। जब वे अपनी ज़मीन के लिए आवाज़ उठाते हैं तो सुननेवाला कोई नहीं। सरकार द्वारा उनपर बलप्रयोग होता है।

गोलियाँ भी चलाई जाती हैं। इस प्रकार इनकी हत्या करके इनको नक्सली घोषित किया जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में ऐसी घटनाओं का उल्लेख है। यथाः- ''संघर्ष समिति द्वारा चलाये गये आंदोलन को पुलिस दमन करते हैं। छः आदिवासी इस संदर्भ में मारे जाते हैं। इसका खबर अखबारों में इस प्रकार छपती है कि 'पाथरपाट में हुए पुलीस मुठभेड़ में छ नक्सली मारे गये। मारे गये नक्सलियों में कुख्यात एरिया कमांडर बालचन भी शामिल'।'' 10 इससे पता चलता है कि पुलिस और मीडियावाले जन प्रतिबद्धता खो चुके हैं।

प्रस्तुत उपन्यास का पात्र रुमझुम असुर द्वारा प्रधानमंत्री को लिखी चिट्ठी में विस्थापन की भयानकता को दर्शाया गया है, यथाः- ''महोदय शायद आपको पता हो कि हम असुर अब सिर्फ आठ नौ हज़ार ही बचे हैं। हम बहुत डरे हुए हैं। हम खतम नहीं होना चाहते। भेडिया अभयाचरण कीमती भेडिए ज़रूर बच जाएँगे श्रीजात। किन्तु हमारी जाति नष्ट हो जाएगी। सच कहें तो हम बिना चेहरेवाले इंसान होकर जीना नहीं चाहते श्रीमान। हमें बचा कीजिए श्रीमान। हमारी आखिरी आस आप ही है।''11

जंगल ही आदिवासी का घर है। ये लोग खेती और अन्य भोग्य वस्तुओं के उत्पादन के लिए जंगल का उपयोग करते हैं। भूमंडलीकरण ने औद्योगीकरण की श्रीवृद्धि की। कच्चे मालों की प्राप्ति के लिए पूँजीपति वर्ग आदिवासी क्षेत्रों को आधिगृहीत करते हैं। कच्चे माल के साथ, आदिवासी लोगों को, श्रमिकों के रूप में इन्हें मिलते हैं। ये लोग इन्हें कम वेतन देते हैं। अशिक्षा एवं गरीबी के कारण इन लोगों को अच्छी नौकरी नहीं मिलती। यदि शिक्षित हों तो भी अच्छी नौकरी इनके लिए सपना जैसा है।

पूँजीपति लोग इनके शरीर पर भी अधिकार स्थापित करना चाहते हैं। ये ज़मीन के

साथ आदिवासी लड़कियों को भी लूटते हैं। ये लडकियां उस क्षेत्र में स्थापित कंपनियों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के घरों पर काम करने में विवश होती है। ये यौन शोषण का शिकार भी होती हैं। यही नहीं, उससे भी अधिक कमाने के लिए बडे शहरों में ढकेल दिये जाते हैं। इस अंधकारमय जीवन से, इन निरीह लड़कियों के लिए मुक्ति संभव नहीं। ऐसी आदिवासी महिलाओं के बारे में रणेंद्रजी कहते हैं :-

''महिलायें इस समाज में सियानी कहलाती थीं, जनानी नहीं। जनानी शब्द कहीं न कहीं केवल जनन, जन्म देने की प्रक्रिया तक उन्हें संकुचित करता, जबकि सियानी शब्द उसकी विशेष समझदारी। सयानेपन की ओर इंगित करता मालूम होता। इसके बाद भी ग्लोबल गाँव के देवताओं ने अपनी ज़रूरतों और इच्छा पूर्ति के लिए इन सियानियों का इस्तेमाल किया। सियानी महिलाओं के देवताओं के आगे झुक जाने की जजह उनकी मज़बूरी थी।'' 12

अच्छी सड़कों का अभाव भी आदिवासियों के पिछडेपन का कारण है। इसी कारण वे मुख्य शहर से जुडने में असमर्थ हो जाते हैं। आदिवासी क्षेत्र में जो सडकें हैं, उनकी हालत तो अत्यंत बुरी है। प्रस्तुत उपन्यास में रणेंद्रजी कहते हैं कि इसका कारण सरकार और माइंस कंपनी मालिकों के बीच की खींचातानी है।

आदिवासी लोगों की धार्मिक- भाषिक अस्मिता भी अब संकट में है। इसका जिक्र भी रणेंद्र प्रस्तुत उपन्यास में करते हैं। आदिवासी लोगों का धर्म तो भला धर्म है, जो समानता पर आधारित है। इनका धर्म प्रकृतिपूजक धर्म है। ऐसे अच्छे धर्म को भी शिवदास बाबा जैसे लोग विकृत करने में तैयार है। लेकिन इसका सशक्त प्रतिरोध ललिता असुर नामक पात्र द्वारा

होता है। उसकी अपनी धार्मिक चेतना का परिचय इन शब्दों में है यथाः- ''हम प्रकृति के पूजक हैं। हमारे महा दुनिया महादेव वही नहीं है, जो लंगटा बाबा के हैं। हमारे महादेव यह पहाड है। यह पाट है जो हमें पालता है। हमारी सरना माई न केवल सखुआ गाछ में , बल्कि सारी वनस्पतियों में समायी है। हम सारे जीवों से अपने गोत्र को जोडते हैं। छोटे जीवों , कीट पतंगों को भी अपने से अलग नहीं समझते। हमारे यहाँ अन्य की अवधारणा नहीं है। जिस समाज के पास इतनी खूबसूरत इतनी बडी सोच हो, उसे किसी लंगटा बाबा या किसी और की शरण में जाने की ज़रूरत ही क्या है?''13

ग्लोबल गाँव के देवता उपन्यास आदिवासी समाज में फैले अंधविश्वास की ओर भी संकेत करता है, यथाः-''दर असल अभी कुछ लोगों के मन में यह बात बैठी हुई है कि धान को आदमी के खून में तानकर बिचडा डालने से फसल बहुत अच्छी होती है। इसलिए सीज़न में मुडी कटवा लोग घूमते रहते हैं।'' 14

अब तो आदिवासी लोग पूँजीपतियों के और प्रशासन के भय से मूल स्थान छोडकर शहरों की ओर पलायन करने में अभिशप्त हैं। इस कारण इनकी भाषा, संस्कृति आदि का संरक्षण आवश्यक है। जंगल के पौधों और दवाओं की अच्छी जानकारी केवल आदिवासी को ही है। इस दृष्टि से आदिवासी समाज का अधिक महत्व है। आदिवासियों के इस पलायन को रोकने के लिए सरकार को चाहिए कि इन जंगलों का संरक्षण करना। अवैध खनिज खनन को रोकें तो उससे संबन्धित समस्या दूर हो जायेगी। आदिवासियों को शिक्षा की सुविधा भी देनी चाहिए। इससे वे सामाजिक और आर्थिक रूप से सक्षम बनेंगे। इन्हें कानूनी अधिकारों से भी परिचित कराना है। सरकार द्वारा कानूनी संरक्षण भी इन्हें आवश्यक है।

पूँजीपतियों के हितों के लिए सरकार को काम नहीं करना चाहिए। तभी इन समस्याओं के लिए समाधान संभव होगा। रणेंद्रजी ने इस उपन्यास में असुर आदिवासियों के संघर्ष को दर्शाया है। उपन्यास के अंतिम पृष्ठ में इन्होंने संघर्ष के लिए कटिबद्ध असुर जाति के चित्र पेशकर ये उपन्सास को खतम करते हैं, यथाः- ''राजधानी के यूनिवर्सिटी होस्टल से सुनिल असुर अपने साथियों के साथ कोमल बीघा पाट के लिए निकल रहा था। लड़ाई की बागडोर अब उसे संभालनी थी।'' 15 यहाँ उपन्यासकार के आशावादी स्वर की स्पष्ट झलक देख सकते हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि ''ग्लोबल गाँव के देवता'' उपन्यास के द्वारा रणेंद्रजी ने यह चित्रित करने का प्रयत्न किया है कि भूमंडलीकरण ने आदिवासी जीवन को किस तरह प्रभावित किया है। ग्लोबल गाँव के देवताओं के शोषण से बेबस हुए हमारे गाँवों की पीड़ा की कहानी कहनेवाला उपन्यास है यह। इसमें केवल झारखंड के असुर आदिवासियों का जीवन संघर्ष ही नहीं, बल्कि पूरे भारतीय आदिवासियों के, वैश्विक संस्कृति के खिलाफ संघर्ष का दस्तावेज़ है। इसमें आदिवासी शोषण का चित्र मात्र नहीं, प्रतिरोध का स्वर भी है।

संदर्भ संकेत

1.हेमन्त जोशी -भूमंडलीकरण के युग में वैश्विक पत्रकारिता- पृ 20

2.यशपाल - अक्षरपर्व (पत्रिका) मार्च 2004- नरेन का लेख

3. रणेंद्र -ग्लोबल गाँव के देवता – पृ 3

4.रणेंद्र -ग्लोबल गाँव के देवता – पुस्तक परिचय

5. रणेंद्र -ग्लोबल गाँव के देवता -पृ16

6. रणेंद्र -ग्लोबल गाँव के देवता - पृ 35

7. रणेंद्र -ग्लोबल गाँव के देवता - पृ 11

8. रणेंद्र -ग्लोबल गाँव के देवता – पृ 14

9. रणेंद्र -ग्लोबल गाँव के देवता -पृ33

10. रणेंद्र -ग्लोबल गाँव के देवता -पृ 88

11. रणेंद्र -ग्लोबल गाँव के देवता – पृ 22

12. रणेंद्र -ग्लोबल गाँव के देवता – पृ-34

13. रणेंद्र -ग्लोबल गाँव के देवता - पृ 72

14. रणेंद्र -ग्लोबल गाँव के देवता -पृ 62

15. रणेंद्र- ग्लोबल गाँव के देवता- पृ 100

डॉ. अंबिली.टी
सहायक आचार्या,
हिन्दी विभाग, सरकारी महिला महाविद्यालय,
तिरुवनन्तपुरम,केरल
E mai l- ambi lihindi@gmai l.com
Mo- 9495369970

****

2

उपनिवेशवाद की राजनीति : 'प्रजातंत्र के प्रेत' के

ब्लेस्सनराजू

शाताब्दियों भारत दूसरे देश और उनके सत्ता के अधीन में रहा है। उन साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपनी अधिकार एवं बल के ज़रिए भारत में अपनी उपनिवेशवादी व्यवस्था के जड़ों को मज़बूत किया। हॉब्स्सन के अनुसार ''उपनिवेशवाद अपने श्रेष्ठ स्वरुप में राष्ट्रीयता का स्वाभाविक प्रसार है और सफल उपनिवेशवाद का मानदंड ही यह है कि उपनिवेशवादी राज्य अपनी सभ्यता को मूल्यों को नए प्रदेशों के स्वाभाविक सामाजिक परिवेश में कहाँ तक स्थित कर सका है।''१ (जे .ए हॉब्सन, इम्पेरिअलिसम ए स्टडी, जेम्स निस्बत प्रकाशन लन्दन १९०२, पृ सं. 7)

२०० साल के पहले उपनिवेश सिर्फ आर्थिक सीमाओं एवं अपनी बाज़ार के विकास के लिए शुरू किया था। लेकिन यह आज अपनी सीमाओं को लाँघकर दूसरे देश के राष्ट्रीय,प्रजातान्त्रिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर अपना आधिपत्य स्थापित किया है। इन देशों ने अपनी राजनीतिक प्रभुत्व के माध्यम से भारत को १९४७ तक आने अधीन में रखा है। स्वतंत्रता के बाद इसका क्या हुआ। इसका असर या इन उपनिवेशी मनोवृत्तियों की कब्जे से हम मुक्त हुए? इसका जवाब हमें आज भी ढूंढना पड़ता है। पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद,नव उपनिवेशवाद, और वैश्वीकरण जैसे नए रूप और ढांचे में हमारे आज के

रूप में आ गए हैं।

'प्रजातंत्र के प्रेत' समसामयिक भारत के प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का व्यंग्यात्मक चित्र है । हीराबाबू भारत के किसान मंत्री थे। हार्ट अटैक से मृत्यु होने के बाद वह यमलोक में चित्रगुप्त और एनी यमदूतों के सामने पधारे हैं। मंत्री जी को स्वर्ग प्रवास का फैंसला आधिकारिक तौर पर नहीं हुआ है । आजीवन भ्रष्टाचार में डूबे मंत्री और चित्रगुप्त के बीच दिनों तक वाद-विवाद हो रहा है । उपन्यास ज्यादात्तर समय मंत्री जी के भूतकाल से यात्रा करता है । उनकी कुकृत्यों को हमें दिखता है और अंत तक बहस-मुबाहिसा होने पर भी चित्रगुप्त निर्णय लेने में असमर्थ हो जाते हैं और हीराबाबू को प्रेतयोनी में भड़कने के लिए भेजा जाता है।

ब्रिटन से मुक्त होने के बाद भी उनके कई तत्वों को हम छोड़े नहीं। देश को एक बाज़ार के रूप में देखते देखते सारी मानवीय मूल्यों और संवेदनाओं को हम नष्ट कर चुका है । जाति और धर्म के नाम पर अंग्रेजों ने हमें अलग किया। ''अँगरेज शासक तो 'फूट डालो और राज करो' की अपनी दुर्नीति के लिए कुख्यात हैं ही, किंतु उन्हें अपनी इस दुर्नीति पर अमल करने में इसलिए सफलता मिली कि नवजागरण तथा राष्ट्रीय आंदोलन के शुरुआती दौर में उपजे उनके अंतर्विरोधों ने इस सफलता के लिए आवश्यक ज़मीन पहले से ही तैयार कर दी थी।''२ (दसवें दशक के हिंदी उपन्यास में सांप्रदायिक सौहार्द, मंजुला राना, वाणी प्रकाशन, २००८,पृ सं ७९)

राजनेता अपनी पूरी ताकत के साथ विभिन्न धर्मो और जातियों के बीच मौजूदा भेदभाव बनाने का प्रयास कर रहे हैं। 'फूट डालो और राज करो' आज भारतीय सरकार का

सिद्धांत बन गया है। हम एकजुड़ होने पर उनका शासन नहीं चलेगा । हमारे नेतागण यह समझकर वोट के लिए हमें फूट डालकर शासन करने की व्यवस्था को अपनाया है। हीराबाबू से बकरीवाला बताता है :-

''जाति और धर्म, जनता को बरगलाने के यही दो नुस्खे हैं। इन्हीं के आधार पर अपनी राजनीति खड़ी करो। यदि इनमें से किसी एक को चुनना पड़े तो निसन्देह धर्म को चुनो । भाई, जब धर्म को आधार बनाकर अंग्रेज दो सौ सालों तक राज कर सकते हैं तो क्या आप पाँच साल नहीं कर सकते? समझदार लोगों ने इसे अफीम तक कहा है।''३ (प्रजातंत्र के प्रेत, शशिकांत सिंह 'शशि', अमन प्रकाशन,कानपूर २००७ पृ सं ५६)

उपनिवेशवाद का असर प्रत्यक्ष रूप में हैं लेकिन स्वतंत्रता के बाद यह अप्रत्यक्ष रूप में है, क्योंकि उपनिवेश्वाद का शोषण मूर्त रूप में और नव उपनिवेशवाद शोषण अमूर्त रूप में है। भारत में उपनिवेशीकरण के बाद में भी इसका प्रभाव ज़ारी हैं । वैश्वीकरण उपनिवेशवाद का एक और अलग चरण है।

''उपनिवेशवाद का परिणाम ही वैश्वीकरण के रूप में सामने आया । इसके परिणाम में रँगा मीडिया जाने अनजाने अश्लीलता, आतंकवाद, पृथक्तावाद व सांप्रदायिकता आदि को बढ़ावा दे रहे हैं, साथ ही साथ मिडिया साम्राज्यवाद को भी बल मिल रहा है।''४ (मीडिया का वर्तमान परिदृश्य,राकेश परवीर,प्रभात प्रकाशन २०२०, पृ सं. ५४)

मीडिया समाज में एक मुख्य प्रभाव है। और मीडिया के माध्यम से लोगों को बरगलाया जाता है। इसी तरीके को अपनाकर हीराबाबू अपनी एक पत्रिका का प्रकाशन भी किया। इसके ज़रिये लोगों के मन में उनके प्रति एक ईमानदार जन सेवक की छवि पैदा की।

''जलज कुमार निर्जल एक उदीयमान साहित्यकार थे जिनको पूंजी की जरूरत थी। दोनो लोगों ने संयुक्त प्रयासों से एक अखबार निकाला- 'दैनिक प्रकाश' जिसमें जलज कुमार का संपादन होता था। जलज कुमार के प्रयासों से जल्दी ही उस अखबार के लोग 'दैनिक बकवास' कहने लगे। नेता जी को नाम तो मिलने लगा लेकिन लोगों ने उनको कुछ ज़्यादा ही ईमानदार मान लिया जिसके निवारण के लिये दोनों ने मिलकर एक 'सनसनी' नाम की पत्रिका निकाली''५ (प्रजातंत्र के प्रेत, शशिकांत सिंह 'शशि', अमन प्रकाशन,कानपूर २००७, पृ सं ६९)

उपनिवेशवाद का मूल तत्व आर्थिक शोषण के विविध तरीकों में निहित हैं। नव उपनिवेशीकरण बाज़ार के पूंजीपतियों की जेब भरने के अलावा आम आदमियों या किसान मजदूर जैसे मेहनती वर्ग तक नहीं पहूंचता है। यह सिर्फ आर्थिक उदारीकरण या भूमंडलीकरण की गलती नहीं हैं। समाज के निचले स्तर तक पहुंचनेवाले ऐसी योजनाओं ज्यादात्तर व्यवस्थापक रोक देते हैं। वैश्वीकरण से भारत पूँजी का प्रवाह हुआ है लेकिन यह कुछ लोगों तक सीमित रहा। शेष लोगों की स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया और वे पहले जैसे ही बने रहे । इसका मतलब यह है कि अमीर और भी अमीर हो गए तथा गरीब गरीब ही बनी रहे। गाँव और शहर, उद्योगपति और श्रमिक, अमीर एवं गरीब के बीच जो खाई थी जो बढ़ी है । यह उनकी राजनीति है। सत्ता एक अभिजात वर्ग तक ही सीमित है। एक तरफ़ा जहाँ शहर की सुख-सुविधाएँ बढ़ रही हैं, वहीं गाँव भुख और अविकसितता की ओर बढ़ रहे हैं।

''नेताजी की समझ में नहीं आ रहा था कि यह गाँव है या शहर । यदि गाँव है तो

फिर बजबजाती नालियाँ और रंभाती गांये कहाँ हैं? टूटी सड़कें और सूखे हुये खेत कहां हैं? यदि ये शहर है, तो फिर वायुमंडल में इतनी शांति क्यों है? न मोटरकार, न मैट्रो आखिर माज़रा क्या है? जिसे देखो किसी न किसी काम में लगा हुआ है।''६ (प्रजातंत्र के प्रेत, शशिकांत सिंह 'शशि', अमन प्रकाशन,कानपूर २००७, पृ सं ७७)

एक तरफ यह हमारे जीवन की सुविधाओं को बढ़ाकर ज़िन्दगी को आसान बनाने में मददगार है लेकिन दूसरी तरफ यह भारत के अस्तित्व को मिटने केलिए सक्षम है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम इन सुविधाओं को कैसे उपयोग करते हैं । भारत एक विकासशील देश है । और हम इसे एक विकसित देश बनाना चाहता है। इसमें कोई गलती नहीं है, लेकिन खतरा यह है कि आज हम भारत के अमेरिका और यूरोपियन देशों से तुलना करके उस देश कि तरफ भारत को पुनर्निर्माण करना चाहता है। और गाँव को अविकसित और असभ्य मानने के साथ शहरीकरण को विकास की पहली सीढ़ी के रूप में मानता है । वैश्वीकरण नगरों-महानगरों तक ही सीमित है जिसे हम आज उत्तर-आधुनिकतावाद के नाम से जानते हैं वह असल में उपनिवेशवाद का दर्शन। वह उत्तर-उपनिवेशवाद के नये संस्करण है नवउपनिवेशवाद का दर्शन है जो उपभोक्तावाद और उसकी संस्कृति पर आधारित है। ''राजनैतिक अधिकार और स्वतन्त्रता मिलने के बावजूद भी खेतिहर मजदूर में अपने श्रम को बेचना पड़ रहा है। जिन छोटे किसानों के पास स्वयं की थोड़ी-बहुत जमीन है वे भी कृषि के औद्योगीकरण के कारण उन्हें बेचने के लिए विवश हैं।''७ (मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र और हिंदी उपन्यास, कुंवर सिंह पला, नवचेतना प्रकाशन दिल्ली २००५, पृ सं १७१)

किसानों के नेता होने के बावजूद, खेती जैसे बर्बाद हो जानेवाला उत्पादन क्षेत्र की

रक्षा करने के बजाय, नेता ने अपने कर्तव्यों को शब्दों तक सीमित कर दिया और उत्पादक क्षेत्र तक ध्यान दिया । देश के किसानों की स्थिति दिन ब दिन बिगड़ते रहे। लेकिन उनको परवाह नहीं था । एक तरफ सरकार किसानों के खिलाफ कानून बनाते हैं और पूँजीपतियों और कॉरपोरेट उद्योगपतियों को अपना मुनाफा बढ़ाने में मदद करते हैं । और अंत में उन्हें अपने अधिकारों के लिए सड़क पर आन्दोलन करना पड़ता है। हीराबाबू को अंत में ऐसे एहसास हुआ कि - ''किसानों के नेता माने जाते थे। किसानों के लिए भाषण देना होता तो उनका मूंह पकड़ने वाला कोइ नहीं होता तो उनका मूंह पकडने वाला कोई नहीं होता । मगर यहाँ तो सचमुच का काम करना है।''८ (प्रजातंत्र के प्रेत, शशिकांत सिंह 'शशि', अमन प्रकाशन,कानपूर २००७, पृ सं १८)

भारत जैसे देश उपनिवेश युग से सालों आगे है। लेकिन कभी न कभी हमें दूसरे देशों पर धन, सैन्य,आर्थिक एवं राजनीतिक महत्त्व आदि के लिए निर्भर करना पड़ता है। यह अप्रत्यक्ष रूप में होता है। उपनिवेशवाद का इस नया रूप है नव उपनिवेशवाद। यह उन देशों की चाल है। चीन जैसे देशों पाकिस्तान, श्रीलंका,और अन्य अफ्रीकन देशों को इसी तरह मदद कर रहा है। वे दूरदर्शिता के बिना ऐसे नहीं करेंगे । हमें देश के मुश्किल समय दोस्ती की आड़ में हमारे मदद करेंगे और बाद में हमें उनके साथ रहने केलिए कहेंगे। वे हमें किसी न किसी तरह से इस्तेमाल करेंगे क्योंकि हम लोग हमेशा उनके ॠणी रहेंगे। यह छोटा चारा डालकर बड़ी मचली को फंसने के जैसा है। हमारे शासक वृन्द अस्थायी लाभ के लिए विदेशी सहायता स्वीकार करता है और लोगों को भ्रष्टाचार से ठगते हैं उन्हें इस बात की अंदाज़ा नहीं है कि यह भविष्य में देश कि समस्या बन जाएगी। उपन्यास में देखा जा सकता है

कि बाढ़ के समय विदेश से कंबल मदद के रूप में दिया जाता है । ''उन्हें तो कंबल दिए जा ही रहे हैं । यह महंगे वाले कंबल है जो मदद के नाम पर विदेशों से आये हैं । इनके बदले उन्हें देशी कंबल दी गए हैं।''९ (प्रजातंत्र के प्रेत, शशिकांत सिंह 'शशि', अमन प्रकाशन,कानपूर २००७, पृ सं १३७)

ऐसे अनेक घटनाओं को उपनिवेशवाद और उत्तर उपनिवेशवाद के सामाजिक परिस्थितियों से जोड़कर 'प्रजातंत्र के प्रेत' में देखा जाता है। उपनिवेश समाप्ति के इतने साल बाद भी हम मानसिक तौर पर अन्य देश की कब्जे से नहीं मुक्त हुए। उत्पादक, दोस्त और सहायक के रूप में वे हम पर अदृश्य रूप से शासन करते हैं। उपनिवेश के समय उनकी बात मानने के अलावा कोई चारा नहीं था और आज हम स्वतंत्र होने पर भी मानसिक दासता से मुक्त नहीं हुई। यह हमारी गलती नही है, व्यवस्था की है । आज भी उपनिवेशों की कूटनीति युक्त शासन से हम मुक्त न हुआ है । हमारी देश कि राजनीतिक अस्थिरता के कारण भारत में उपनिवेशों की कूटनीति युक्त शासन ही चल रहा है।

ब्लेस्सनराजू

शोध छात्र

हिंदी विभाग

केरल विश्वविद्यालय

e-mai l : B lessanraju97@gmai l.com

Mob No: 9020323639

****

3

नये जीवन मूल्यों के इर्दगिर्द : 'उसके हिस्से की धूप' के

डॉ. धन्या एल

वर्तमान समय वैश्वीकरण का समय है। भारत में सन् 1990 के बाद वैश्वीकरण की प्रक्रिया को अपनाया गया। आज यह दुनिया को एक वैश्विक गाँव में बदल दिया है। वैश्वीकरण का हमारे जीवन पर पडनेवाले प्रभावों को हिंदी साहित्य ने बड़ी कुशलता के साथ रेखांकित किया है। हिंदी साहित्य जगत में लगभग पिछले तीन दशकों से इसपर चर्चा हो रही है। वैश्वीकरण के सन्दर्भ में ज्योतिष जोशी की राय यह है कि ''उपन्यास अपने समय की नैतिकता से दूर नहीं हो सकता। उपन्यासकार अगर नैतिक समस्याओं से आँखें चुराता है तो मानना चाहिए कि वह अपने दायित्व से मुँह मोड़ रहा है।''[1] हिंदी में वैश्वीकरण के प्रभाव में अनेक उपन्यास लिखे हैं और लिखे जा रहे हैं। हिंदी उपन्यासों में वैश्वीकरण का प्रभाव और प्रतिरोध कई रूपों में है।

साहित्य समाज का दर्पण है। लेखक का कर्तव्य है कि वह समाज की समस्याओं का सही अंकन कर वह समाज तथा मानवता को नयी दृष्टि प्रदान करे जो समाज के हित में हो और जो समस्या का समाधान भी प्रस्तुत करना चाहिए। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि ''जीवन के गंभीरतर समझ जानेवाले प्रश्नों का साहित्य में समाधान खोजना आधुनिक प्रवृत्ति है।''[2] आज उपन्यास साहित्य की एकमात्र ऐसी विधा है। जो सबसे अधिक गतिशील है प्रारंभ से लेकर आज तक इस विधा ने अनेक प्रकार के मोड़ लिए हैं। आज

उपन्यास में भी पाश्चात्य संस्कृति के रंग में रंग डालने की इच्छा प्रबल होती जा रही है। भाव, संवेदना, प्रेम का स्वर अब आम लोगों के जीवन से अलग होता जा रहा है, उसके स्थान पर अब केवल पूँजी, पैसा, स्वार्थ ही प्रमुख हो गया है। जिसमें सारी रिश्ता, नाता संवेदना, संस्कार सब खो गई है। प्रेम के बदलते स्वरूप का चित्रण भी हिंदी उपन्यासों में प्रचुर मात्रा में हुआ है। प्रेम के नाम पर केवल वासनापूर्ती व्याभिचार, अनैतिक संबंध, मुक्त यौन सम्बन्धों को अपनाया जा रहा है।

समकालीन हिंदी उपन्यास ने बहुत सूक्ष्म संवेदना, गहराई और विस्तार में जाकर देश, समाज और व्यक्ति पर पडनेवाले प्रभावों का अध्ययन कथात्मक धरातल पर किया है। समकालीन उपन्यासों की अपनी समृद्ध परंपरा में ऐसे अनेक लेखक हैं जिन्होंने वैश्वीकरण से प्रभावित भारतीय जनमानस को अपनी रचना का विषय बनाया है। मृदुला गर्ग लिखित उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' इस श्रेणी में अपना खास स्थान रखता है।

स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों में मृदुलागर्ग एक विशिष्ट स्थान रखती है। उन्होंने आधुनिक विचारों से प्रभावित एक साहसी लेखिका है। नाटक, कहानी, उपन्यास आदि गद्य – विधाओं पर उनका समान अधिकार है। साहित्य को जीवन का श्रेय और प्रेय स्वीकार करने के कारण उनका सृजन निरंतर गतिशील था। मृदुला गर्ग ने सन् 1971 में लिखना प्रारंभ किया। मृदुलाजी ने क्षण, अस्तित्व, प्रेम, सेक्स आदि विषयों को लेकर रचना की है। उनके लेखन में विचारों की तीव्रता, स्वानुभव का मार्मिक चित्रण, अनुभूति की सघनता, अस्मिता की पहचान, अतीत की विसंगतियों को नष्टकर पुरुष के बराबर खड़े होकर सुखद भविष्य की कामना दिखाई देती है।

साहित्य की सभी विधाओं में स्त्री पात्रों का प्राधान्य रहता है। आज सुशिक्षित एवं आत्मनिर्भर नारी अपमानजनक समझौते में विश्वास नहीं रखती। आज नारी विवाह और पति को सर्वस्व मानने को तैयार नहीं है। पुरुष-निर्धारित नैतिक मूल्यों के अनुसरण करने के बजाय आज वह अपने नैतिक मूल्यों का निर्माण स्वयं कर रही है। सामाजिक नैतिकता की तुलना में वह व्यक्तिगत को अधिक महत्व देने लगी है। आज अपना वजूद उसके लिए सबसे अहम है। मृदुला गर्ग ने नारी जीवन के विविध आयामों को सूक्ष्म दृष्टि से देखा, समझा, परखा और उसे अभिव्यक्त किया। उन्होंने नारी समस्याओं के प्रति प्रतिबद्ध रही थी और यही प्रतिबद्धता उनके सृजन का केंद्रबिंदु भी था। उनकी रचनाओं की विशेषता यह है कि नारी के प्रेम और वासनात्मक जीवन पर उन्होंने अपना एक विशेष दृष्टिकोण अभिव्यक्त किया है। उन्होंने नारी के यौन एवं प्रेम विषयक आधुनिक जीवन दृष्टिकोण को खुलेपन के साथ रेखांकित करती हैं। ''मृदुला गर्ग के उपन्यास यौन-सम्बन्धों को लेकर चलते हैं। श्रीमती गर्ग 'बोल्ड' हैं, उनका लेखन भी 'बोल्ड' है सहानुभूति वे न चाहती हैं न बाँटती हैं, स्वाभिमान उनमें कूट-कूटकर भरा है। वे सत्य के एक अंश को लेकर उसे 'ग्लोरीफाय' नहीं करती, उसे संपूर्णता में लेती हैं। उनकी जैविक तृष्णाओं की सहज स्पष्ट अभिव्यक्ति में अपने प्रति बोला गया सच है। एक सूक्ष्म पारदर्शी वेदनाधारा उनके लेखन व व्यक्तित्व में बहती दिखाई देती है। वह यदाकदा त्रासदी बनकर उभरती है।''[3]

मृदुलाजी अपने लेखन में सेक्स का बोल्ड चित्रण किया गया है। उन्होंने नारी की स्वतंत्रता अथवा नारी देह की स्वतंत्रता को उसकी यौन स्वतंत्रता से जोड़कर देखने का प्रयास किया। काम – सम्बन्धों का खुला चित्रण इस स्वतंत्रता का ही द्योतक है। आलोच्य समय के

नारी केन्द्रित उपन्यासों में एक ओर जहाँ अपनी ही शादी के सम्बन्ध में निर्णय लेने के अधिकार से वंछित नारियों का चित्रण है तो दूसरी ओर शादी जैसी संस्थाओं का खुलकर विरोध करनेवाली, विवाह को जीवन-सफलता का पर्यायवाची शब्द न माननेवाली नारियों का चित्रण भी उपलब्ध है। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं।

मृदुलाजी का विचार है कि ''आधुनिक युग में दाम्पत्य जीवन में जीवन की एकरसता तथा आपसी सामंजस्य न होने के करण या प्रेम के आभाव के करण ही विवाहेतर सम्बन्ध स्थापित होते हैं।''[4] मृदुलाजी की मान्यता है कि स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को स्वतन्त्र एवं स्वच्छंद होना चाहिए। उनके अधिकतर औपन्यासिक चरित्र पाश्चात्य संस्कृति को आत्मसात करते दृष्टिगोचर होते हैं। मृदुला जी की कथाकृतियों का यह महत्वपूर्ण विषय यह है कि जिनमें उन्होंने पूरी तन्मयता से अपने चिंतन को विविध चरित्रों के माध्यम से रूपायित करते हैं। मृदुलाजी नारी को प्रयोग की वस्तु नहीं मानतीं। उनकी दृष्टि में नारी वस्तु नहीं व्यक्ति होती है। पुरुष की तरह ही उनकी भी अपना भरापूरा जीवित व्यक्तित्व होता है। मृदुलाजी के प्रमुख उपन्यास हैं – उसके हिस्से की धूप, वंशज, चित्त्कोबरा, अनित्य, मैं और मैं, कठगुलाब- आदि।

'उसके हिस्से की धूप' मृदुलाजी का प्रथम उपन्यास है। सन् 1975 में यह उपन्यास छपा और मध्यप्रदेश साहित्य परिषद से इस उपन्यास को उन्हें वीरसिंह देव राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। उपन्यास की कथा मनीषा, जितेन और मधुकर के इर्दगिर्द घूमती है। उपन्यास के तीन भागों का विभाजन तीन पात्रों के नामों के धरातल पर किया गया है – जितेन, मधुकर और मनीषा। इसमें त्रिकोणात्मक प्रेम-कथा है। मृदुला गर्ग ने इस लघु उपन्यास में एक

विवाहित मध्यवर्गीय नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की चाहत और द्वंद्व को परखने की कोशिश की है।

आज के मनोविज्ञान ने प्रेम की नैतिकता को वैयक्तिक बना डाला है और सामाज की नैतिकता से इसे अलग कर दिया है। इसलिए प्रेम केवल रक्तमांस के शरीर की पुकार बन गया है। असंतृप्त नारी चाहे वह मानसिक या शारीरिक जो भी हो, विवाह सम्बन्ध से बाहर दूसरे सम्बन्ध ढूँढने से कतराती नहीं। 'उसके हिस्से की धूप' का मनीषा की चरित्र विवाहेतर सम्बन्ध ढूँढना अपना अधिकार समझती है। पूरे उपन्यास में एक विवाहिता नारी मनीषा की कहानी है। इस उपन्यास में मनीषा को एक लेखिका और कॉलेज अध्यापिका के रूप में अंकित किया गया है। उसका पति जितेन एक व्यवसायिक फर्म में मैनेजर है। दोनों एक-दूसरे को समझने में असमर्थ हैं। ये पति-पत्नी परस्पर उदासीन रहकर प्यार का नाटक करते हैं। वैवाहिक जीवन की एकरस और ऊबाऊ अन्यमनस्कता की स्थिति से परेशान मनीषा अपनी अस्मिता खोजना चाहती है। मनीषा बचपन से ही प्रेम-विवाह या स्वेच्छा से विवाह करने के पक्ष में थी परन्तु जितेन से उसका प्रबंधित विवाह होता है इसलिए बचपन से पोषित उसका प्रेम-विवाह्वाला विचार अधूरा रह जाता है। जितेन से विवाह के बाद उसकी सहेली सुधा उसका परिचय कॉलेज के नए अद्यापक मधुकर से करवाती है।

मनीषा अपनी अधूरी इच्छा को पूरी करने केलिए वह मधुकर से प्रेम करने लगती है। वह अपने पति को इस नये सम्बन्ध के बारे में सब कुछ बता देती है, लेकिन जितेन इतनी उदार दृष्टि रखता है कि उसे मनीषा-मधुकर का नया सम्बन्ध अखरता नहीं है। जितेन कुछ समय केलिए जब बाहर चला जाता है तो मनीषा और मधुकर में सम्बन्ध इतना निकट का हो

जाता है कि वह उससे विवाह करने केलिए तैयार हो जाती है। मनीषा मधुकर से शादी कर लेती है किन्तु प्रेम का यह ऊबल विवाह के चार वर्षों के उपरांत ही ठंडा पड़ने लगता है। मनीषा अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व बनाना चाहती है पर पति उसकी राह में रोड़ा बनकर आ जाता है। जितेन के यहाँ मनीषा अपने को उपेक्षित महसूस करती है इसलिए मधुकर से शादी कर लेती है लेकिन मधुकर भी उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व को मान्यता नहीं देता। वह मनीषा को अपनी वस्तु समझता है। इसे खुलकर घूमने – टहलने की आज़ादी नहीं देता। मधुकर के इस रवैये से मनीषा के अन्दर असंतोष जनमता है पर कोई दूसरा रास्ता उसे नहीं दिखाई देता। अपनी ऊब को मिटाने केलिए मनीषा फिर जितेन की ओर आकृष्ट होती है। मनीषा को दुःख है कि कोई भी उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व को मान्यता नहीं देता, सभी उसे किसी न किसी रिश्ते से आंकते हैं। ''वह बेटी है, वह बहन है, वह पत्नी है, वह प्रेयसी है। मेरी-तेरी-उसकी। पर क्या यही स्त्री का पूरा परिचय है। स्वयं अपने में कुछ भी नहीं?''[5] अंत में मनीषा अपनी बेचैनी और असंतोष को लेखन के ज़रिए व्यक्त कर उसी में संतोष पाना चाहती है।

मनीषा मधुकर से घृणा नहीं कर सकती किन्तु अपनी ऊब मिटाने केलिए उसे जितेन भी चाहिए। मनीषा को चाहिए मानसिक और दैहिक दोनों स्तरों की तृप्ति जो एक मनुष्य से संभव नहीं हो पा रही थी। मनीषा और उसकी सखी सुधा के बीच चलनेवाली प्रेम एवं विवाह सम्बन्धी चर्चा से स्पष्ट पता चलता है कि मनीषा प्रबंधित विवाह में विश्वास नहीं करती, बल्कि उसका प्रेम-विवाह में विश्वास है। मनीषा यह मानती या समझती है कि प्रेम तो विवाह के साथ ही समाप्त हो जाता है। विवाह के बाद तो प्रेम केवल नाटक रह जाता है। जब मनीषा जितेन की पत्नी थी तो वह मधुकर से प्रेम करती थी और अब जब वह मधुकर की पत्नी है तो जितेन

का प्रेम करती है। जितेन के साथ रहते समय मनीषा को उसकी उदासीनता खटकती है तथा मधुकर के साथ रहकर मनीषा को उसका पोजैसिवनैस खटकता है। विवाह के पहले जो पेम लगता है वही विवाह के बाद नाटक बनकर रह जाता है। मनीषा की इस मनोदशा से निष्कर्ष यही निकलता है कि विवाह और प्रेम दोनों एक व्यक्ति से नहीं होने चाहिए। लेकिन उपन्यास के अंत तक पहुँचते-पहुँचते हमें पता चलता है कि वह केवल प्रेम-सम्बन्ध में ही विश्वास रखती है। वह विवाह जैसे पवित्र बंधन को प्रेम की मृत्यु मानती है। अंत में मनीषा मधुकर के साथ रहने का निश्चय कर लेती है और अपने लेखन-कार्य में ही संतुष्टि अनुभव करती है। मनीषा यह मानता कि 'प्यार करना कला नहीं जरूरत है'।[6]

इस विषय में मधुकर कहता है कि ''आदमी औरत से सब कुछ करे, बस प्यार न करे'' । मनीषा इसी के जवाब में कहती है कि ''सब कुछ करे, बस ब्याह न करे।''[7] मनीषा न तो पति जितेन से और न पति मधुकर से ही प्रेरणा पाती है परन्तु जैसे ही वे पति से प्रेमी रूप में सामने आते हैं वह इन दोनों से ही प्रेरणा पाती है। जितेन की पूर्ण स्वतन्त्र विचारधारा को वह उसकी उदासीनता मानती है और मधुकर का अतिरिक्त स्वामित्व उसको खिजाता है। दोनों ही स्थितियों में वह असंतुष्ट रहती है। इससे उसके जीवन में भटकाव ही भटकाव उत्पन्न होता है।

मृदुलाजी ने आलोच्य उपन्यास में मनीषा में दिखाया है जो कभी जितेन को आकर्षित करती है तो कभी मधुकर को आकर्षित करती है। यही नहीं, वह एक से अतृप्त होकर दूसरे के पास तथा दूसरे से अतृप्त होकर पहले के पास चक्कर काटती है। मनीषा हर तरह से संपन्न होने पर भी निरंतर एक मानसिक अतृप्ति, एक खालीपन अनुभव करती है तथा घर से बाहर और बाहर से फिर घर आने का प्रयास करती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ऐसे लोगों को तृप्ति

कहीं भी नहीं प्राप्त हो सकती। इससे विकृति ही होती है। मनीषा जितेन से संभोग स्तर तक परम संतुष्ट थी लेकिन उसे मधुकर जितेन से अधिक आकर्षक लगा और वह सब कुछ छोड़कर मधुकर के साथ पत्नी बनकर रहने लगी। चार साल बाद अचानक नैनीताल में मिलने पर जितेन उसे फिर पूर्णत: संतुष्टिदायक लगा। इस लगाव में मन का कोई दखल नहीं है। मनीषा शारीरिक जरुरतों के इसी साम्य के करण मधुकर से भी पूरी तरह संतुष्ट रहती है और इसे किसी भी तरह अनैतिक और गलत नहीं समझती है।

जितेन ने मनीषा को कभी परतंत्र समझा ही नहीं। वह तो केवल उसे समझाने का प्रयास करता है और कहता है, ''मनीषा, किसी भी स्त्री-पुरुष के बीच आकर्षण का मतलब यह नहीं होता कि वह विवाह करे ही करे। आकर्षण ऐसी चीज़ है जो वक्त के साथ टिकती नहीं। तुम जानती हो, मैं उतने तंग खयालों का आदमी नहीं हूँ। मधुकर और तुम्हारे बीच कुछ हो भी, गुजरा हो तो उसे भुलाया जा सकता है। इसमें तलाक की जरूरत नहीं है।''[8]

मनीषा के माध्यम से मृदुलाजी ने पत्नी के उस रूप को स्पष्ट किया है जो स्वछन्दतापूर्वक रहना चाहती है। मनीषा विवाह को सामाजिक बंधन समझती है और वैवाहिक जीवन की इसी विचित्रता पर जितेन के साथ रहते हुए मनीषा सोचती है — ''यह वैवाहिक जीवन भी अजीब चीज़ है, वह सोच रही थी। जो करो एक साथ। साथ बैठो, साथ बोलो, चाहे बोलने को कुछ हो, चाहे नहीं, साथ घूमो, साथ दोस्त बनाओ, चाहे एक का दोस्त दूसरे को कितना भी नागवार क्यों न लगे, साथ खाओ और साथ सोओ, चाहे एक के खर्राटे दूसरे को सारी रत जगाये क्यों न रखें। --- चूँकि वे विवाहित हैं, इसलिए जरूरी है कि जो भी वे करें, दोनों करें, चाहे उससे एक को कितनी ही कोफ़्त क्यों न हो।''[9]

इस तरह मनीषा को लेखिका ने एक आधुनिका के रूप में चित्रित किया है। जितेन को एक संयमित व्यक्ति के रूप में अंकित किया गया है। वह अपनी पत्नी को मधुकर के पास चले जाने की अनुमति दे देता है और लौट आने का भी सुझाव देता है। जितेन मनीषा से कहता है कि ''जबरदस्ती करके तुम्हें नहीं रोकूँगा। एक इंसान का दूसरे पर इतना अधिकार मैं नहीं मानता। इतना जरुर कहूँगा, एक बार और सोच ले। मैं तुम्हें चाहता हूँ और चाहता हूँ तुम न जाओ। इसके आलावा सिर्फ यह कहता हूँ कभी लौटना चाहो तो लौट आना।''[10]

आलोच्य उपन्यास में पुराने नैतिक मूल्यों या मानव मूल्यों का भी विरोध किया गया है और प्रेम-सम्बन्धी या सेक्स – सम्बन्धी नयी नैतिकता को उजागर किया गया है। इसमें स्त्री और पुरुष दोनों अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को स्थापित तो करना चाहते हैं, लेकिन वे विघटन का शिकार हो जाते हैं। समकालीन सामाजिक विधान में नारी अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को स्थापित करने की प्रक्रिया में या तो टूट जाती है या बिखर जाती है। यह आधुनिक प्रेम-सम्बन्धों के विकृत होने का एक मूल कारण है।

मृदुलाजी ने मनीषा को एक आधुनिका के रूप में चित्रित किया है जिसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व विघटित होने की साक्षी देने लगता है। 'उसके हिस्से की धूप' नामक इस उपन्यास में विवाह जैसे पवित्र अनुष्ठान का तिरस्कार किया गया है और केवल प्रेमिका का ही प्रबल और प्रखर रूप उभरा गया है। मनीषा केवल प्रेमी को ही प्रेरक शक्ति मानती है और वही प्रेरक शक्ति 'प्रेमी' के 'पति' बनते ही बिखर जाती है। इस कथा की मूल समस्या प्रेम नहीं बल्कि स्त्री -पुरुष के सम्बन्धों में व्याप्त स्वतंत्रता की अनुभूति है। जो स्वतंत्रता पुरुष केलिए अहम् मुद्दा है वही स्त्री केलिए पैरों की जंजीर तो नहीं। इस मूल्यवान अर्थ को टटोलती हुई उपन्यास की

कथा जितेन, मनीषा और मधुकर के आस-पास घूमती है। इस तरह यह उपन्यास आधुनिकता के नए मानदंड स्थापित करता है।

गोविन्द रजनीश इस उपन्यास की समीक्षा करते हुए कहते हैं कि ''इसमें परंपरागत विवाह की एकरसता, जितेन की उदासीनता और सृजम्शील मन की निष्क्रिय बेचैनी से ऊबकर मनीषा मधुकर की भावुकता की ओर आकृष्ट होती है। वह जिसे प्रेम समझती है उसकी सहेली सुधा उसे बचकानी रूमानियत मानती है।''[11]लेखिका इस उपन्यास द्वारा यह भी व्यक्त किया है कि ''प्रेम जीवन का एक पक्ष है, समूचा जीवन नहीं है।''[12] उपन्यास में जितेन का चरित्र यह व्यक्त भी करता है। जितेन कहता है —''यह महज आकर्षण है। जब वह चुक जायेगा तो क्या करोगी? प्रेम जरुर चुक जाता है। यही उसकी नियति है और यही उसकी त्रासदी।''[13] मनीषा बचपन से अपने मन के अनुकूल विवाह करने की इच्छा को मधुकर से प्रेम और विवाह के माध्यम से पूरा करना चाहती है।

मृदुला गर्ग ने मनीषा के व्यक्तित्व को पूरी तरह जीकर इसे उजागर किया है। इस उपन्यास में प्रेम के विविध रूपों को उभरा गया है, जैसे त्रास, पीड़ा, घृणा, जलन, द्वेष और हिंसा। इस भावनाओं को निजी महत्व है और इनकी जटिलता को बड़ी कुशलता से सीधी और सहज भाषा में व्यक्त किया गया है। मृदुलाजी ने इस पूरे उपन्यास में अपनी जिप्सी प्रवृत्ति को नायिका के मानसिक और रचनात्मक मनोभावों, द्वन्द्वों, विचारधाराओं, क्रियाओं — प्रतिक्रियाओं और प्रसुप्त कामनाओं का अत्यंत सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया है। स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में प्यार का विशेष स्थान है। आधुनिकता के पक्षधर लोग इस सम्बन्धों को गलत या बड़ी बात नहीं मानते हैं। आलोच्य उपन्यास में भी प्रेमी-प्रेमिका सम्बन्ध विवाहेतर सम्बन्ध

है। इस तरह यह लघु उपन्यास मौजूदा पूँजीवादी समाज में मध्यवर्गीय विवाहिता महिला के अस्मिता और द्वंद्व को उजागर करता है। हिंदी उपन्यास साहित्य हमेशा ही विषम स्थितियों के विरोध में सजगता से काम करता आया है। उपन्यास युगीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में मनुष्य जीवन को मार्मिकता से प्रस्तुत करनेवाली सक्षम विधा है। वैशिकरण आधुनिक युग का बहुत महत्वपूर्ण संकल्पना एवं विशेषता है। इसकी वजह से आज मानवीय मूल्यों में शीघ्रता से बदलाव हो रहे हैं। इस दृष्टि में मनीषा की चरित्र को हमें देख सकते हैं।

मृदुलाजी की अपनी विशिष्टता भी है और नवीनता भी। मृदुला ने नारी के बहुआयामी सम्बन्धों को सामाजिक व पारिवारिक स्तर पर बड़े प्रभावी व विश्वसनीय ढंग से चित्रित किया है। लीक से हटकर लेखन करना मृदुला जी की विशेषता है. अपनी विशिष्ट भाषा- शैली के करण हिंदी की महिला उपन्यासकारों में उनका एक पृथक् स्थान सुरक्षित है।

सन्दर्भ

1www.a l lresearchjourna l.com

2 www.mpgmahavidya laya.org

3 आठवें दशक की लेखिकाओं के उपन्यासों में व्यक्त स्त्री चरित्र, डॉ. सविता चोखोबा किर्ते, विनय प्रकाशन, कानपुर, 2007, पृष्ठ संख्या – 57-58

4 जैनेन्द्र और मृदुला गर्ग के उपन्यासों में चित्रित नर-नारी सम्बन्ध, डॉ. सत्याजैन , शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ संख्या - 61

5 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी लघु उपन्यास सामाजिक-राजनीतिक अंतर्विरोध के परिप्रेक्ष्य में, डॉ. ओमप्रकाश नारायण द्विवेदी , साहित्य भंडार, इलाहाबाद,1998, पृष्ठ संख्या -69

6 जैनेन्द्र और मृदुला गर्ग के उपन्यासों में चित्रित नर-नारी सम्बन्ध, डॉ. सत्याजैन , शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ संख्या – 62

7 वही, पृष्ठ संख्या – 183

8 वही , पृष्ठ संख्या – 172

9 वही , पृष्ठ संख्या – 195

10 वही , पृष्ठ संख्या – 194

11 महिला कथाकारों की रचनाओं में प्रेम का स्वरूप विकास, सरिता कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983, पृष्ठ संख्या – 180

12 वही, पृष्ठ संख्या – 179

13 वही, पृष्ठ संख्या – 180

सहायक ग्रन्थ

1. आठवें दशक की लेखिकाओं के उपन्यासों में व्यक्त स्त्री चरित्र, डॉ. सविता चोखोबा किर्ते, विनय प्रकाशन, कानपुर, 2007 ।

2. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी लघु उपन्यास सामाजिक-राजनीतिक अंतर्विरोध के परिप्रेक्ष्य में, डॉ. ओमप्रकाश नारायण द्विवेदी , साहित्य भंडार, इलाहाबाद,1998 ।

2. महिला कथाकारों की रचनाओं में प्रेम का स्वरूप विकास, सरिता कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983 ।

3. जैनेन्द्र और मृदुला गर्ग के उपन्यासों में चित्रित नर-नारी सम्बन्ध, डॉ. सत्याजैन , शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996 ।

4. हिंदी कथा साहित्य समकालीन सन्दर्भ, डॉ. ज्ञान अस्थाना, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1981 ।

5. राष्ट्रवाणी : सितम्बर-अक्तूबर, 2010 ।

सहायक वेबसाइट

1 www.mpgmahavidya laya.org

2 www.a l lresearchjourna l.com

3 www.aarhat.com

4 www.humrang.com

5 www.wor ldwidejourna ls.com

डॉ. धन्या एल.

अध्यक्षा एवं सहायक प्राध्यापिका

के. एस. एम. डी. बी. कॉलेज

शास्ताम्कोट्टा, कोल्लम

****

4

बाजार की मृगमरीचिका : दौड़

डॉ.नीलम

80 का दशक भारतीय समाज के लिए एक ऐसा समय था जहां हर व्यक्ति एक दूसरे के आगे भागने की होड़ में दौड़ रहा था। मानवीय मूल्य आपस में टकरा रहे थे। नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी की टकराहट बदस्तूर जारी थी । इंसान बाजारवाद में इतना उलझ गया था कि कौन अपना कौन पराया का फर्क भी नहीं कर पा रहा था। परिवार इस दौड़ में टूट रहे थे। एकाकी जीवन का परिदृश्य बढ़ता जा रहा था । इस भूमंडलीकरण के दौर में लोग बस भाग रहे थे। अपने लोगों के लिए अपनों के पास समय नहीं था। कैरियर की ये होड़ लोगों को अपनों से दूर कर रही थी। इंसान इंसान ना होकर मशीन बनता जा रहा था। जीवन के इस यथार्थ से साहित्य भी अछूता न रहा। उसने इंसान के इस बदलते स्वरूप को साहित्य के माध्यम से बहुत ही बेबाकी से उठाया है ।

ममता कालिया द्वारा रचित 'दौड़' उपन्यास इंसान के इसी बदलते स्वरूप, मतभेदों, बाजारीकृत होते रिश्ते, मशीन बनता इंसान आदि रूपों का बहुत ही यथार्थ और मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करता है। एक समय ऐसा था कि जब युवा पीढ़ी अपने आंखों में एक ही सपना संजोए रहती थी या तो वह प्रशासनिक सेवा में जाना चाहता था या इंजीनियर बनना चाहता था या डॉक्टर। युवा पीढ़ी का चमकता हुआ ख्वाब बस यही हुआ करता था वह अपनी सारी इच्छा शक्ति अपनी उम्मीदें अपने ख्वाब अपनी उड़ान इन्हीं रोजगारों को पाने में

लगा देते थे, लेकिन समय बदला समाज बदला लोग बदले और 21वीं सदी में भूमंडलीकरण के दौर में युवाओं की सोच बदली। वे अब एक ऐसी उड़ान भरने लगे जहां सिर्फ और सिर्फ उनका कैरियर था वह अच्छे से अच्छा पैकेज पाना चाहते थे । सरकारी महकमे का ख्वाब छोड़ वे प्राइवेट कंपनियों की रेस में अपने को झोकने लगें। वे इस दौड़ में हर कीमत चुकाने के लिए तैयार थे।

बाजार उनको अपनी तरफ बाहें फैलाए पूरे जोर-शोर के साथ आत्मसात करता जा रहा था, जबकि पहले बाजार का मतलब अपनी जरूरतें पूरी करना होता था, लेकिन भूमंडलीकरण के इस दौर में बाजार पूरे साज-सज्जा और चमकदार तथा चटकीले रूप में अपनी जड़ें जमाने लगा था। इस दौर में बाजार जितना लोगों की जेब खाली कर सकता है उतना वह प्रोडक्ट लोगों के बीच अपनी पैठ और जड़े मजबूती के साथ जमा सकता है। जिस प्रोडक्ट में जितना झूठ की मलाई होगी वह प्रोडक्ट लोगों के बीच उतना ही चमकेगा इस प्रवृत्ति को ममता कालिया ने बखूबी चित्रित किया है कि किस प्रकार विज्ञापन की मार्केटिंग उपभोक्ता को अपनी ओर खींचने के लिए क्या-क्या करवाता है और कंपनियों में काम करने वाले लोग प्रोडक्ट को बेचने के लिए क्या-क्या हथकंडे अपनाते हैं । " रोजबिन्दर ने पुरानी कंपनी छोड़ कर इंडिया लीवर के टूथपेस्ट डिवीजन में काम संभाला था। उसे आजकल दांत के सिवा कुछ नजर नहीं आता था। वह कहती, "हमारी प्रोडक्ट के एक एक आइटम को इतना प्रचारित कर दिया गया है कि अब इसमें साबुन मिलने की कसर बाकी है।" (पेज नंबर 24 ,दौड़)

भूमंडलीकरण के इस दौर में बाजार इतना हावी हो गया है कि मानव का स्वास्थ्य

किस प्रोडक्ट से कितना दूषित होगा या इंसान के शरीर के लिए कितना घातक होगा इससे कंपनी मालिक को कोई लेना देना नहीं होता है। उनकी होड़ बस एक ही दिशा में उत्प्रेरित होती है कि उनका माल उपभोक्ता के बीच में ज्यादा बिके और कंपनी को ज्यादा से ज्यादा फायदा हो। ये कंपनियां अपने प्रोडक्ट को बेचने के लिए इंसान का जितना हो सकता है उतना इस्तेमाल बखूबी करता है। इंसान इस दौड़ में इतना आगे निकलना चाहता है कि वह सिर्फ और सिर्फ अपनी कंपनी को मुनाफा कैसे कराए इस विषय पर ही अपनी सारी शक्ति लगा देता है। " शरद को लगता है बूट पॉलिश बेचना सबसे मुश्किल काम है तो रोजविन्दर को लगता है ग्राहकों के मुंह नया टूथपेस्ट चढ़वाना चुनौतीपरक है और पांडे को लगता वह अपनी कंपनी का टारगेट, विक्रय लक्ष्य, कैसे पूरा करें। खाली समय में अपने उत्पाद पर बहस करते करते वह इतना उत्पात करते हैं कि लगता सफलता का कोई सट्टा खेल रहे हैं।"(पेज 24, दौड़)

बाजार मानव संवेदनाओं पर इतना हावी होता गया कि इस दौड़ में मनुष्य कहीं खो गया वह अपनी कामयाबी के लिए कुछ भी करने को तैयार था। कोई भी कीमत इस बाजारवाद के लिए कम है। दीन ईमान का तो कोई सवाल ही नहीं उठता। झूठ फरेब बाजार की फितरत है तभी तो अपना माल बेचने के लिए हर कंपनी अपने विज्ञापन में झूठ का सहारा लेती है और अपना माल झूठ के सहारे धड़ल्ले से बेचती है और लोग इसे विश्वास करके अपने घरों तक ले आते हैं। विज्ञापन की जकड़ इतनी मजबूत है कि कंपनी में काम करने वाले एम्पलाई को यह फरेब पता है लेकिन फिर भी वह उसकी चपेट में है क्योंकि विज्ञापन उसे इतने चमकदार रूप में पेश करता है कि उसकी चकाचौंध हर घर में दिखती है।"हा हा आज तक मैंने कोई

ऐसा विज्ञापन नहीं देखा जो कहता हो यह चीज ना खरीदिए।" अभिषेक ने कहा," विज्ञापन की दुनिया खर्च और बिक्री की दुनिया है। हम सपनों के सौदागर हैं, जिसे चाहिए बाजार जाए, सपनों और उम्मीदों से भरी ट्यूब खरीद ले। ये विज्ञापन का ही कमाल है कि हमारे तीन सदस्यों वाले परिवार में तीन तरह के टूथपेस्ट आते हैं। अंकुर को धारियों वाला टूथपेस्ट पसंद है तुम्हें वह षोड़सी वाला और मुझे सांस की बदबू दूर करने वाला। टूथपेस्ट तो फिर भी गनीमत है, तुम्हें पता है- डिटर्जेंट के विज्ञापन में और भी अंधेर है। हम लोग सोना डिटर्जेंट की ऐड फिल्म जब सूट कर रहे थे तो सीवर्स के क्लीन डिटर्जेंट से हमने बाल्टी में झाग उठाए थे। क्लीन में सोना से ज्यादा झाग पैदा करने की ताकत है।" (पेज -41,वही)

बाजार में नैतिकता,अनैतिकता सभी की दूरी समाप्त हो गई है। बाजार में हर अनैतिक चीज नैतिकता का फासला मिटा देती है तभी तो "पवन ने कहा," दरअसल बाजार के अर्थशास्त्र में नैतिकता जैसा शब्द लाकर राजूल तुम सिर्फ कन्फ्यूजन फैला रही हो। मैंने अब तक पाँच सौ किताबें तो मैनेजमेंट और मार्केटिंग पर पढ़ी होंगी। उनमें नैतिकता पर कोई चैप्टर नहीं है।" (पेज -42,वही)

बाजार नैतिकता को सबसे पहले अपनी जेब से बाहर निकाल फेंकता है। वहां सिर्फ काम करता है मनुष्य का मशीन बन जाना। अपनी कंपनी का सामान बेचना उसकी जीवन का एकमात्र लक्ष्य होता है। उसको बेचने की होड़ में वह इतना पागल रहता है कि परिवार को भी वह दरकिनार कर देता है उसके बीच में एक ही रिश्ता रहता है सिर्फ बाजार का। वह अपनी कंपनी को सबसे बेस्ट साबित करने में लगा रहता है। शीलता और अश्लीलता का दायरा विज्ञापन में काम नहीं करता । विज्ञापन का काम होता है लोगों को अपने ऐड द्वारा

जितना हो सके आकर्षित करना। तभी तो अभिषेक अपने विज्ञापन में जो आकर्षण लेकर आता है वो रियल जिंदगी में संभव ही नहीं है जब अभिषेक द्वारा बनाया गया विज्ञापन टीवी पर आता है तो अंकुर चिल्लाते हुए कहता है। " पापा एक का ऐड, पापा का एड, ।"

यह विज्ञापन आज पांचवी बार आया था पर वे सब ध्यान से देख रहे थे। विज्ञापन में पार्टी का दृश्य था जिसमें हीरो के कुछ कहने पर हीरोइन हंसती है उसकी हंसी में हर दाँत से मोती गिरते हैं। हीरो उन्हें अपनी हथेली पर रोक लेता है। सारे मूर्ति इकट्ठे होकर 'स्पार्कल' टूथपेस्ट की ट्यूब बन जाते हैं। अगले शॉर्ट में हीरो हीरोइन लगभग चुंबनबद्ध हो जाते हैं। (पेज -39,वही) बाजार सिर्फ बेचता है तो अपना प्रोडक्ट। चाहे उसके लिए कितने भी झूठ का सहारा क्यों न लेना पड़े। आये दिन हम टीवी में विज्ञापन देखते हैं कि फेयर एण्ड लवली लगाओ और गोरे हो जाओ, एक कोल्ड्रिंक पी लो और पहाड़ से नीचे गिरा कुछ भी नही होता या परफ्यूम लगाओ और लड़कियां खिंची चली आती हैं ऐसे अनगिनत विज्ञापन हम रोज़मर्रा के जीवन में देखते हैं और उसे सच मान कर घर लाते हैं । विज्ञापन के इसी झूठ पर करारा व्यंग्य करते हुए राजुल के माध्यम से ममता कालिया एक प्रश्न खड़ा करते हुए कहती हैं - "नहीं मैं सोच रही थी, विज्ञापन कितनी अतिशयोक्ति करते हैं । सच्चाई यह है कि ना किसी के हंसने से फूल झड़ते हैं ना मोती, फिर भी मुहावरा है कि लीक पीट रहा है।"

"सच्चाई तो यह है कि मॉडल लीना भी स्पार्कल इस्तेमाल नहीं करती। वह प्रतिद्वंदी कंपनी का टिक्को इस्तेमाल करती है। पर हमें सच्चाई नहीं, प्रोडक्ट बेचनी है।"

"पर लोग तुम्हारे विज्ञापनों को ही सच मानते हैं। क्या यह उनके प्रति धोखा नहीं है?"

" बिल्कुल नहीं आखिर हम टूथपेस्ट की जगह टूथपेस्ट ही दिखा रहे हैं, घोड़े की लीद

नहीं सभी टूथपेस्ट में एक ही चीजें पड़ी होती हैं। किसी में रंग ज्यादा होता है किसी में कम। किसी में फोर ज्यादा, किसी में कम।""ऐसे में कॉपीराइट की नैतिकता क्या कहती है ?"

"ओ शिट। सीधा साधा एक प्रोडक्ट बेचना है, इसमें तुम नैतिकता और सच्चाई जैसी भारी भरकम सवाल मेरे सिर पर दे मार रही हो। मैंने आई. आई. एम. में दो साल भाड़ नहीं झोंका। वहां से मार्केटिंग सीख कर निकला हूं। आई कैन सैल ऐ डैड रैट (मैं मरा चूहा भी बेच सकता हूं) यह सच्चाई, नैतिकता सब मैं दर्जा चार तक मारल साइंस में पढ़ कर भूल चुका हूं। मुझे इस तरह की डोज मत पिलाया करो, समझी ।"(पेज-39-40,दौड़)

भूमंडलीकरण के इस दौर ने नवयुवकों की आंखों में चमक पैदा की। एक नई उड़ान, नई सोच और नया जीवन पैदा किया। जितनी ही ये दुनिया बाहर से चमकीली है उतनी ही यह अंदर से खोखली है, लेकिन आगे भागने के इस दौड़ में लोग इतने अंधे हो गए हैं कि उन्हें सिर्फ और सिर्फ दौड़ ही दिखाई देती है। मानवीय मूल्य इस भूमंडलीकरण के दौर में कोई महत्व नहीं रखते। तभी तो कंपनियां महिलाओं को अपनी कंपनी में जॉब देने से पीछे हटती है और अगर दे भी देती हैं तो जब वह अपनी दुनिया, अपना घर- परिवार बढ़ाने की सोचती हैं या उसमें शामिल होती हैं तो उन्हें अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ता है इसका बहुत ही यथार्थ चित्रण ममता कालिया ने राजुल के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है। "जब से राजूल ने नौकरी छोड़ी उसके अंदर असुरक्षा की भावना घर कर गई थी। साढ़े चार साल की नौकरी के बाद वह सिर्फ इसलिए हटा दी गई क्योंकि उसने विवाह कर लिया था। उसकी विज्ञापन एजेंसी मानती थी कि घर और दफ्तर दोनों मोर्चे संभालना लड़कियों के बस की बात नहीं खासतौर पर जब वह गर्भवती थी, उसके हाथ से सारे महत्वपूर्ण कार्य लेकर साधना सिंह को

दे दिए गये। अंकुर ने पैदा होने तक दफ्तर में माहौल इतना बिगड़ गया कि प्रसव के पश्चात राजुल ने त्यागपत्र दे दिया।" (पेज -38,वही) इस भूमंडलीकरण के दौर में लड़कियों के मन में असुरक्षा की भावना इतनी तीव्र रूप से बढ़ जाती है कि उसका असर उसके घरेलू जीवन पर पड़ता है। न चाहते हुए भी शक करने की भावना बढ़ती जाती है । इसका बहुत ही सुंदर उदाहरण हम 'दौड़' उपन्यास की राजुल में देख सकते हैं। "पर तब से वह पति के प्रति बड़ी सतर्क और संवेदनशील हो गई थी उसे लगता था अभिषेक उधना व्यस्त नहीं जितना वरना करता है फिर विज्ञापन की दुनिया परिवर्तन और आकर्षण से भरपूर थी रोज नई-नई लड़कियां मॉडल बनने का सपना आंखों में लिए हुए कंपनी के द्वार खटखटा थी उनके शोषण की आशंका से इनकार नहीं किया जा सकता था"(पेज -38,वही)

प्राइवेट कंपनियों को सिर्फ अपने मुनाफे की चिंता होती है। उसके लिए घर परिवार, नाते -रिश्तेदार आदि संबंधों का कोई मतलब नहीं होता है । यही कारण है कि इस भूमंडलीकरण के असंवेदनशील रवैए से परिवार एकाकी होते जा रहे हैं। किसी की भावनाओं की कोई कदर नहीं है। बस एक ही चीज सामने दिखती है वह है तरक्की। तरक्की के आगे हर चीज छोटी है, हर चीज बेगानी है। "पापा मेरे लिए शहर महत्वपूर्ण नहीं है, कैरियर है। अब कलकत्ते को ही लीजिए कहने को महानगर है पर मार्केटिंग की दृष्टि से एकदम लद्धड़। कलकत्ते में प्रोड्यूसर्स का मार्केट है, कंज्यूमर्स का नहीं। मैं ऐसे शहर में रहना चाहता हूं जहां कल्चर हो ना हो, कंज्यूमर जरूर हो। मुझे संस्कृति नहीं उपभोक्ता संस्कृति चाहिए तभी मैं कामयाब रहूंगा।"

माता-पिता को पवन की बातों ने स्तंभित कर दिया बेटा उस उम्मीद को भी खत्म

किए दे रहा था जिस की डोर से बंधे बंधे वे उसे टाइम्स ऑफ इंडिया की दिल्ली रिक्तियों के काल कल डाक से भेजा करते थे। रात को जब पवन अपने कमरे में चला गया राकेश पांडे ने पत्नी से कहा, "आज पवन की बातें सुनकर मुझे बड़ा धक्का लगा इसने तो घर के संस्कारों को एकदम ही त्याग दिया।"(पेज -43-45, वही)

बदलते परिवेश और बदलते समाज में इतनी ज्यादा प्रतिस्पर्धा हो गई है लोगों के अंदर की कौन दौड़ में कितना आगे निकल जाएगा इसी फिराक में लोग लगे रहते हैं। आस - पड़ोस के लोग, परिवार के लोग या आप जहां काम करते हैं वहां के लोग क्या कहेंगे कि आपके बच्चे किस स्टेटस की नौकरी करते हैं। बस अपने आप को साबित करने की एक होड़ सी लगी है कि हम सबसे आगे और हमारे बच्चे। इस होड़ में चाहे उन्हें अपना सब कुछ खो देना पड़े। इसी समस्या को बहुत ही बारीकी से ममता कालिया ने अपने उपन्यास 'दौड़' में चित्रित करते हुए रेखांकित किया है कि " रेखा का चचेरा भाई भी नागपुर में मार्केटिंग मैनेजर था। उसे थोड़ा अंदाज था कि इस क्षेत्र में कितनी स्पर्धा होती है। वह एक फटीचर पाठशाला में अध्यापिका थी उसके लिए बेटे की कामयाबी गर्व का विषय थी। उसकी सहयोगी अध्यापिकाओं के बच्चे पढ़ाई के बाद तरह-तरह के संघर्षों में लगे थे। कोई आई.ए.एस. परीक्षाओं को पार नहीं कर पा रहा था तो किसी को बैंक की प्रतियोगी परीक्षा सता रही थी। किसी का बेटा इंटरव्यू में असफल होने के बाद नशे की लत में पड़ गया था तो किसी की बेटी हर साल पी.एम .टी. में अटक जाती। जीवन के पचपनवें साल में रेखा को यह सोच कर बहुत अच्छा लगता कि उसके दोनों बच्चे पढ़ाई में अव्वल रहे और उन्होंने खुद ही अपने कैरियर की दिशा तय कर ली।" (पेज -44-45,वही)

अपनी जिंदगी का बेस्ट से बेस्ट देने के बाद भी इस बाजार की दुनिया में कोई गारंटी नहीं है कि अगले पल उसकी नौकरी का क्या होगा। हर पल हर क्षण इंसान को बस अपना बेस्ट ही देते रहना है बिल्कुल मशीन की तरह थोड़ा। बंद हुई नहीं कि तुरंत निकाल बाहर कर दिए गए। प्राइवेट कंपनियों में काम करने वाले नवयुवकों में इस कदर की होड़ लगी है कि बस वो मशीनों में ही चिपके रहते हैं लेकिन फिर भी कोई गारंटी नहीं कि कब तक वह अपनी कंपनी में टिके रहेंगे। थोड़ी खराबी हुई या ऊंच-नीच हुई नहीं कि की बाहर। युवकों के अंदर अपने जॉब से बाहर किए जाने का जो डर हर पल सताता है, उसे ममता कालिया ने बहुत ही शिद्दत के साथ उठाया है। " अभिषेक की कंपनी की साख बची थी और अभिषेक वहाँ पांच साल से था पर नौकरी को ले कर असुरक्षा बोध उसे भी था। यहां हर दिन अपनी कामयाबी का सबूत देना पड़ता। कई बार क्लायंट को पसंद न आने पर अच्छी भली कॉपी में तब्दील करनी पड़ती तो कभी पूरा प्रोजेक्ट ही कैंसिल हो जाता। तब उसे लगता वह नाहक विज्ञापन प्रबंधन में फंस गया, कोई सरकारी नौकरी की होती, चैन की नींद सोता। पर पटरी बदलना रेलों के लिए सुगम होता है जिंदगी के लिए दुर्गम। अब यह उसका परिचित संसार था, इसी में उसके संघर्ष और सफलता निहित थी। "(पेज -53,वही)

जिंदगी के इस भागमभाग में अपनापन कहीं खोता जा रहा है। ऐसा लगता है कि जीवन सिर्फ एकाकी जीवन ही बन गया है सिर्फ दिखता है तो नफा-नुकसान। अपने या पराए का फर्क भूमंडलीकरण के इस दौर ने भुला दिया है। " उसने सुबह पवन से बताया कि वह चादर नहीं ले जाएगी पवन उखड़ गया, आपको पता है हमारे तीन हज़ार रुपए इस गिफ्ट में खर्च हुए हैं इतनी कीमती चीज की कोई कदर नहीं आपको। "(पेज -61,वही) भूमंडलीकरण

के इस दौर में नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के विचार और संवेदनाएं हर बात पर टकराते हैं। पुरानी पीढ़ी का मानना है कि वह जो कर या कह रहे हैं वह सही है ,नई पीढ़ी का मानना है कि वह जो कर या कह रहे हैं वह सही है । उनकी इस वैचारिक टकराहट को बखूबी समझते हुए लेखिका ने 'दौड़' उपन्यास के माध्यम से इसे बखूबी चित्रित किया है। "डील का क्या मतलब है तुम अभी शादी जैसे रिश्ते को गंभीरता नहीं जानते। शादी और व्यापार अलग-अलग चीजें हैं।"

" कोई भी नाम दो, इससे फर्क नहीं पड़ता। अगले महीने आप चौबीस को मद्रास पहुंचो। स्वामी जी की सालगिरह पर चौबीस जुलाई को बड़ा भारी जलसा होता है, कम से कम पचास शादियां कराते हैं स्वामी जी। "(पेज -63,वही)

बाजार एक जखीरा है जहां हर कोई दौड़ रहा है अपनी अपनी जहाज लेकर। सबको अपने जहाज को सबसे अच्छा साबित करने की वह सवार है। इस होड़ में क्या छूट रहा है, क्या नहीं इसकी परवाह किसी को नहीं है बस चाहता है तो एक दूसरे से आगे निकलने की। इस चाहत में जो सबसे पीछे छूट जाता है वह है परिवार, अपनापन जो अपने बच्चों के भविष्य में अपना ख्वाब बुनते हैं और उसे पूरा करने के लिए अपने जीवन का अमूल्य समय भी उन्हें दे देते हैं, लेकिन एक दिन उनके हिस्से रह जाती है सिर्फ और सिर्फ उनका अकेलापन उनकी तनहाइयां और उनकी यादें "रसोई में ताक पहुंच से ऊंचे लगे थे। रेखा का कद सिर्फ पांच फुट था। ऊपर के ताकों पर कई ऐसे सामान रखे थे जिनकी जरूरत रोज ना पड़ती। पर पड़ती तो सही। रेखा एक पैर पट्टे पर उचका कर मर्तबान उतारने की कोशिश करती पर कामयाब ना हो पाती। स्टूल पर चढ़ना फैक्चर को खुला बुलावा देना था। अंततः जब वह

चिमटे या कलछी से कोई चीज उतारने को होती उसे लगता कहीं से आकर दो परिचित प्यारे हाथ मर्तबान उतारते देंगे। रेखा बावली बन इधर उधर कमरों में बच्चों को टोहती पर कमरों की विरानी में कोई तब्दीली ना आती।"

कॉलोनी में कमोवेश सभी की यह हालत थी इस बुड्ढ़ा बुड्ढ़ी कॉलोनी में सिर्फ सर्दी गर्मी की लंबी छुट्टियों में कुछ रौनक दिखाई देती जब परिवारों के नाती पोते अंदर बाहर दौड़ते खेलते दिखाई देते हैं। वरना यहां चहल पहल के नाम पर सिर्फ सब्जी वालों के या रद्दी खरीदने वाले कबाड़ियों के ठेले घूमते नजर आते। बच्चों को सुरक्षित भविष्य के लिए तैयार कर हर घर परिवार के मां-बाप खुद एकदम असुरक्षित जीवन जी रहे थे" (पेज-82,वही)

भारतीय समाज के लोगों की एक सबसे बड़ी चाहत होती है कि मरने के बाद उनकी चिता को आग उनका बेटा ही दे, तभी मोक्ष की प्राप्ति होगी। यह विचार सदियों से हर माता-पिता और घर के बुजुर्गों की चाहत होती है लेकिन ये चाहत आज के इस दौर में बहुत पीछे छूट गई है।इस भागमभाग की जिन्दगी में इंसान इतना मशीन हो गया है कि उसे परिवार की संवेदनाओं और दुख दर्द से कुछ नहीं लेना देना । वह देखता है तो सिर्फ अपना नफा-नुकसान। "मिसेज सोनी पति के शोक में एकदम हतबुद्धि हो रही थीं। फोन में वे सिर्फ रोती और कलपती रहीं, तेरे डैडी, तेरे डैडी..." तब फोन मिन्हाज साहब ने संभाला, "भाई सिद्धार्थ बड़ा ही बुरा हुआ। अब तू जल्दी से आ कर अपना फर्ज पूरा कर। तेरे इंतजार में फ्यूनरल (दाह संस्कार) रोककर रखें?" (पेज 88,वही)

हमारी संस्कृति में बेटी और बेटे की तुलना में बेटों को हमेशा उच्च शिखर पर रखा गया है। बेटा ही बैकुंठ पार लगाता है ,बेटा ही वंश चलाता है, बेटा ही चिता को मुखाग्नि देता

है। बेटे की अहमियत हमारे भारतीय समाज में सर्वोपरि है । बेटे की जगह कोई नहीं ले सकता। बेटा चाहे कितना भी निकम्मा हो, लेकिन बेटा बेटा होता है । यह सोच आज भी हमारे समाज में इस तरह से बरकरार है कि लोग बेटों के लिए आज भी बेटी को पराया ही मानते हैं । लेकिन बाजार की इस होड़ में रिश्ते भी बाजारी होने में पीछे नहीं हटें। बाजार से पैसा देकर सब कुछ खरीदने की प्रवृत्ति है बाजार से एक चीज नहीं खरीदा जा सकता तो वो है रिश्ते। लेकिन जिंदगी के इस भागमभाग में रिश्ते भी बाजार में खरीदे जाने लगें और बिकने लगें। रिश्ते बाजार की चौखट पर अपना अस्तित्व अपना चित्र ढूंढने लगें। इस उत्तर आधुनिक समय का सबसे बड़ा खुलासा ममता कालिया ने बहुत ही मुखर होकर किया है। जहां रिश्ते बिकने के लिए मुंह फाड़ कर खड़े हैं। इसका बहुत ही मार्मिक चित्रण ममता कालिया ने प्रस्तुत किया है - "हम सब तो आज लूट गए ममा। लोग बता रहे हैं मेरे आने तक डैडी को रखा नहीं जा सकता। आप ऐसा कीजिए, इस काम के लिए किसी को बेटा बनाकर दाह संस्कार करवाइए मेरे लिए तेरह दिन रुकना मुश्किल होगा। आप सब काम पूरे करवा लीजिए। मजबूरी है ममा, मेरा दिल रो रहा है। मैं आपकी मुसीबत समझ रहा हूं। और घर, अनजान लोगों के लिए खुला मत छोड़िएगा इंडिया में अपराध कितना बढ़ गया है, हम बी.बी.सी. पर सुनते रहते हैं।" फोन पटक कर मिसेज सोनी आंखों पर पल्लू लगाकर सुबह उठीं।"(पेज -89,वही)

इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने जीवन का बहुत ही मार्मिक चित्र उकेरा है। जीवन के सच से बेधड़क रू-ब-रू कराते हुए ममता कालिया कहीं नहीं झिझकतीं। पति की मृत्यु के बाद बेटे की राह तकती माँ का हृदय उस समय चकना चूर हो जाता है, जब उसका

बेटा कहता है कि अंतिम संस्कार के लिए किसी को अपना बेटा बना लें ।इससे बड़ा दुर्भाग्य किसी भी माँ बाप के लिए और क्या होगा । 'दौड़' में इसी खत्म होती संवेदना को बारीकी से ममता कालिया ने उठाया है ।

जहां उन्होंने बेटों द्वारा मरती हुई संवेदना को बहुत ही शिद्दत से उठाया हैं वहीं वह यह भी दिखाने से पीछे नहीं हटती कि कुछ लोगों में अभी भी मानवीय संवेदना बची हुई है । इसका बहुत ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते हुए लेखिका कहती है कि " मिसेज सोनी ने पड़ोसियों के आगे हाथ जोड़कर कहा, "यह ऐसा काम है जो औरतें नहीं कर सकतीं। आप सब मेरे भाई हो। जनम भर वे शान से जिये। उनकी मिट्टी खराब ना होने देना।"

कालोनी के सभी घरों के लोग इंतजाम में जुट गये। जिसको जो याद आता गया वही काम करता गया, सवेरे तक फूल, गुलाल, शाल से अर्थी ऐसी सजी कि सब अपनी मेहनत कर खुद दंग रह गये। पर इस दारुण कार्य के दौरान कई लोग बहुत थक गये। मिन्हाज साहब के दिल की धड़कन बढ़ गई। उनके लड़के ने कहा ‘’डैडी, आप रहने दो मैं घाट चला जाता हूं।"भूषण ने मुखाग्नि दी। रेखा, मिसेज गुप्ता, मिसेज यादव, मिसेज सिन्हा और अन्य स्त्रियां मिसेज सोनी के पास बैठी रहीं। मिसेस सोनी अब कुछ संयत थीं, "आप सब ने दुख की घड़ी में साथ दिया।""यह तो हमारा फर्ज था।" कुछ आवाजें आयीं।रेखा के मुंह से निकल गया, ऐसा क्या होता है कुछ लोग फर्ज पहचानते हैं कुछ लोग नहीं ।अरे सुख में नहीं पर दुख में तो साथ दो।" (पेज 89-90,वही)

कैरियर को अपना सब कुछ समझने वाली नई पीढ़ी यह नहीं सोच पा रही है कि उनके पीछे जो छूट रहे हैं वह उनके बुजुर्ग माता-पिता जो आस लगाए एक दिन अपनी आंखें

मूंद ले रहे हैं । उनके इंतजार में मां-बाप एक-एक पल बेसब्री से बिताते हैं , लेकिन बच्चों को अपने आगे बढ़ने की होड़ में उनकी सिसकियां कहीं सुनाई नहीं देतीं।एकाकी भरे इस दुख की महागाथा को उपन्यास में बहुत ही मार्मिक ढंग से ममता कालिया ने उठाने का प्रयास किया है। " रेखा ने फोन झपट कर कहा, "तू कब आ रहा है छोटू?" सघन ने कहा, "मां जब आने लायक हो जाऊंगा तभी आऊंगा तुम्हें थोड़ा इंतजार करना होगा" (पेज 95,वही)

जिन बच्चों के कैरियर को बनाने में माता-पिता अपनी पूरी जमा पूंजी लगा देते हैं, लेकिन उनके कैरियर को लेकर कोई समझौता नहीं करते। अपने जीवन के सारे अरमान कुर्बान कर देते हैं ,लेकिन वही बच्चे उनके मरने पर भी नहीं आते।जीवन के इस कटु सत्य से सीख लगभग हर व्यक्ति को लेनी चाहिए कि बुढ़ापे में अपना इंतजाम कैसे किया जाए यह बखूबी सिखाता है 'दौड़' उपन्यास। सोनी के पति की मृत्यु हो जाती और उनका बेटा किराए के बेटे की बात करता है। यह घटना उस मोहल्ले के लोगों की आत्मा को इस कदर झकझोर देता है कि सब बड़े बुजुर्ग लोग इससे सीख लेते हुए अपने बुढ़ापे के इंतजाम में लग जाते हैं। "इस आकस्मिक घटना ने सबक का काम किया। सभी ने अपनी वसीयतनामें संभाले और बैंक खातों के ब्यौरे। क्या पता कब किसका बुलावा आ जाए अलमारी में दो चार हजार रुपए रखना जरूरी समझा गया।

कॉलोनी के फुरसत पसंद बुजुर्गों की विशेषता थी कि वह हर काम मिशन की तरह हाथ में लेते। जैसे कभी उन्होंने अपने दफ्तरों में फाइलें निपटायीं होंगी वैसे वे एक-एक कर अपनी जिम्मेदारियां निपटाने में लग गये। सिन्हा साहब ने कहा, "भाई मैंने तो एकादशी को गोऊदान भी कर लिया। पता नहीं अमित बंबई से आकर यह सब कर या नहीं।"गुप्ता जी

बोले, ऐसे स्वर्ग में सीट रिजर्व नहीं होती। बेटे का हाथ लगाना चाहिए।"श्रीवास्तव जी के कोई लड़का नहीं था, इकलौती लड़की ही थी। उन्होंने कहा, किसी के बेटे ना हो तो?" "तब उसे ऐसी तड़फड़ नहीं होती जो सोनी साहब की मिसेज को हुई।" (पेज -90-91,वही)

भारतीय समाज के लोगों की एक सबसे महत्वपूर्ण चाहत है विदेश जाने की । जो हमारे समाज में वायरल फीवर की तरह फैला है । लगभग हर युवा वर्ग और उसके माता पिता इस फीवर की चपेट से अपने को बाहर नहीं निकाल पाते हैं और इस बिमारी से बुरी तरह ग्रस्त हो चुके हैं।ममता कालिया ने अपने इस उपन्यास में बहुत ही शिद्दत के साथ इस बिमारी को उठाया है। मौजूदा समाज में यह बात कायम है कि जो विदेश चला गया उसे विद्दुता का सर्टिफिकेट मिल जाता है हर एक भारतीय परिवार की चाहत होती है कि उनका बच्चा विदेश में नौकरी करे। यह जो चाहत है उसके लिए वे हर कीमत देने के लिए तैयार है, लेकिन उसके बाद का जो दर्द है उसे कैसे पूरा परिवार झेलता है, इन सब उधेड़बुन रिश्तो की गाथा को बहुत ही सुंदर तरीके से पिरोया है ममता कालिया ने अपने उपन्यास 'दौड़' में।

'दौड़' उपन्यास उपभोक्तावाद, भूमंडलीकरण, उत्तर आधुनिक समय के उस सच को बहुत ही गहराई और सच्चाई के साथ उजागर करता है, जिसका सामना आज के दौर में लगभग हर परिवार कर रहा है। एक तरह से देखा जाए तो बाजार का जो जखीरा है वह किन रूपों में कहां और कितना असर डाल रहा है। कैसे मानवीय रिश्ते समाप्त हो रहे हैं। अपने जीवन को आगे बढ़ाने की जो दौड़ है वह मनुष्य को कहां तक ले जाती है । बाजार कैसे लूट रहा है, रिश्तो की कोई परवाह नहीं। इन सब का एक आख्यान है 'दौड़' उपन्यास। इस छोटे से उपन्यास में पूरी महागाथा को समेटा है लेखिका ने। इस छोटे से उपन्यास में ममता

कालिया ने दिखाया है कि बाजार की दौड़ में मनुष्य कैसे गायब हो रहा है मनुष्य कैसे बाजार में परिवर्तित होता जा रहा है। वह रिश्तो को नफा नुकसान में देख रहा है भारतीय समाज की इन विभिन्न समस्याओं को उजागर करने में यह उपन्यास बेजोड़ है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि बाजार हमेशा से और हर युग में एक तिलिस्म रहा है जिसने हर दौर में सभ्यता और संस्कृति को प्रभावित किया है तथा नए जीवन मूल्य और नई दृष्टियों को जन्म दिया है, जिसमें सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही पक्ष शामिल हैं। एक सीमित दायरे में देखा जाए तो बाजार ने धर्म और जातीय के समीकरण को तोड़ा है, लेकिन व्यक्तिवाद को सबसे ज्यादा प्रबल किया है । अर्थात कहा जा सकता है कि बाजारीकरण के आज के दौर में व्यक्तिवाद का वर्चस्व चरम पर है, जिसने समाज में अनेक तरह की विसंगतियों को जन्म दिया है । जिसके कारण अत्याधुनिक सुविधाओं से लैस मालवीय समाज बुनियादी संवेदनाओं के धरातल पर या यूं कहें आपसी संबंधों पर और संकुचित हुआ है। जो एक मानवीय त्रासदी का प्रतीक है। 'दौड़' उपन्यास को मानवता के इस पतन के रूप में भी देखा जा सकता है। वास्तव में यह उपन्यास अपने समय का सांस्कृतिक और सामाजिक पुनर्निर्माण का द्योतक है।

डॉ.नीलम
एसोसिएट प्रोफेसर
लक्ष्मीबाई कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
मोबाइल नंबर - 7042232176
ईमेल - drnee lam lb@gmai l.com

****

5

'रेत समाधि' की सरहदें – एक मूल्यांकन

प्रो. एस.आर जयश्री

उपन्यास साहित्य का अपने जन्म काल से ही एक स्वतंत्र अस्तित्व है, वह साहित्य भारतीय भाषाओं की बहुसांस्कृतिकता तथा बहुस्वरता को आत्मसात करते हुए वैश्विक समाज के अंतर्विरोधों, विसंगतियों तथा विडंबनाओं को पूरी ताकत के साथ अभिव्यक्त करता है। अपने समय और समाज के मानव की स्थिति की पहचान और अभिव्यक्ति समकालीन उपन्यास की रुख है। समकालीन समय वैश्वीकरण का है। वैश्वीकरण के जीवन की गतिविधि बदल गयी है। ''यह परिवर्तन दृष्टिकोण को भी प्रभावित करता है। अंतर्विरोधों की गतिशील धारणा अपदस्थ हो गयी है, भविष्य झूठ हो गया है, इतिहास चेतना का ह्रास होता जा रहा है। फलस्वरूप मिथ्या चेतना के नाना रूप अस्तित्व में आ रहे हैं। इस माया जाल को भेदने की ज़रूरत है। श्रमजीवी जनता की वास्तविक कारवाईयाँ ही इस ज़रूरत को पूरा करेंगी, इसमें भी संदेह नहीं।''1 वैश्वीकरण ने केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण दोनों प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया है। केंद्रीकरण की प्रवृत्ति से एकरूपता वर्चस्व और आर्थिक सांस्कृतिक दमन हुआ है। विकेंद्रीकरण का अर्थ है स्थानीयता, प्रतिरोध और विशिष्टता। केन्द्रीकरण में वर्चस्वपूर्ण स्थिति है, विकेन्द्रीकरण में विखंडनपूर्ण स्थिति। इनसे उत्पन्न सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों को पूरी तरह तथा प्रभावशील ढंग से पाठकों तक पहुँचाने का दायित्व साहित्य की सभी विधाओं पर निर्भर भी है।

समकालीन उपन्यास में समाज के इस यथार्थ और सच की खोज है, उसकी गति की पहचान है। यह साहित्य प्रतिरोध की संस्कृति का चेहरा बना है। यह संस्कृति पाठकों को समाज और जीवन के बारे में सोचने की प्रेरणा देती है, उनकी चेतना का विस्तार भी करती है।

एक रचना के संबंध में पाठक की पूर्वधारणाओं को ब्रेक करके, या विस्तार से समझने के लिए साहित्यिक सिद्धांत सहायक हो जाता है। यानी एक कृति ही एक से ज़्यादा विश्लेषण आलोचना का विषय बन जाता है। हरेक साहित्यिक सिद्धांत पाठकों की नज़र और नज़रिए को नया मोड़ देता भी है। ''यह सिद्धांतिकी एकवचनात्मक न होकर बहुवचनात्मक है यानी हम एक नहीं आज बहुत सी सिधांतिकियों के बीच रहते हैं।अपनी साहित्यिक सांस्कृतिक दुनिया को समझने केलिए,जैसा कि हम आगे देखेंगे, साहित्य संस्कृति के क्षेत्रों में आज अनेक प्रकार की सिधांतिकियों का प्रयोग किया जाता है और इसीलिए नयी नयी सिधांतिकियाँ विकसित होती रहती हैं।इसी कारण हमें हमेशा नये से नये केलिए जागृत रहना होता है'' ।2

रूसी आलोचक मिखायल बख्तिन ने औपन्यासिक संरचना में दृष्टियों और स्वरों की अनेकता पर विचार किया है। उनके आधार पर दृष्टियों और स्वरों की अनेकता है तो उपन्यास लोकतंत्र की गरिमा प्राप्त होता है। कहने का मतलब यह है कि केवल रचनाकार की दृष्टि और स्वर की निर्णायक भूमिका नहीं होती, प्रत्येक पात्र की दृष्टि और स्वर की स्वतंत्र सत्ता होती है। बख्तिन ने यह भी कहा है कि उपन्यास की औपन्यासिकता उसकी संवाद धर्मिता में निहित होती है।गीतांजलि श्री के ''रेत समाधि'' उपन्यास का विश्लेषण भी चिंतन

के उक्त विचारों के आधार पर संभव है।

उपन्यास के तीन खंड हैं। पीठ ,धूप और हद – सरहद।इसके केंद्र में दो औरतें हैं। अस्सी साल की माँ और उनकी बेटी है। उपन्यास के बहुत देर बाद पता चलता है कि माँ का नाम चंद्र प्रभा देवी है ।संपूर्ण उपन्यास में अम्मा ही कहा गया है। अपने पति के निधन के बाद वह अपनी ज़िंदगी से ऊब गयी और पलंग पकड़ रखा है। जीवन की और जिंदगी के हरेक के साथ खुशी मनाने केलिए बेटे, पोते, बहू और बेटी परिश्रम करते हैं। लेकिन वह सामाजिक लगावों से पीठ दिखाकर दीवार से चिपक जाती है।उनका बड़ा बेटा बड़े अफ़सर हैं।पिता के समान पितृसत्तात्मक समाज का प्रतिनिधि है।''चिल्लाना परंपरा है।बड़े बेटों का चिल्लाने का पुराना रिवाज़ है । मालिकाना ढंक से। रिवाज़ मुलम्मा है।कोई दिल में खूंखार हो न हो , लिबाज़ उसी का ओढ़ना पड़ता है।कहा जाता है कि बड़े के पिता दिल से चिल्लाते थे जबकि बड़े का दिल ज़्यादा खौलन नहीं मारता।पर ज़बान दोनों की एक सी है। रिटायरमेंट तक पिता चिल्लाते थे,फिर चिल्लाना बेटे को सौंप कुछ शांत हो चले।बड़े ने और ज़ोरों से चिल्लाने की शान ओढ़ी और चमकने दमकने लगे।अब कुछेक महीनों में अवकाश प्राप्ति होगी ,तब चिल्लाना सिड की झोली में गिरेगा,पर अभी तो बड़े में जोश मारता है।''3 एक दिन अचानक वह गायब हो गयी। एक छड़ी के सहारे वह निकल जाती है,जो अपना पोता सिद्धार्थ विदेश से लाय़ा था, उपहार के रूप में नानी को दिया था। खोज खबर से पुलिस थाने से मिलती है। वह अपनी बेटी के साथ बाकी ज़िंदगी बिताने के लिए गयी। बेटी शादी-शुदा नहीं लेकिन किसी के साथ सहजीवन बिताती है। बेटी के घर में कोई दीवार नहीं है ना कोई बंधन, यहाँ बेटी की बनाई दुनिया है। धूप खंड में पुनर्जन्म लेती माँ को देख सकते

हैं।अवचेतन मन में अपनी इच्छाओं को दबाकर रखी थी।सामाजिक व्यवस्था बुजुर्ग महिलाओं की इच्छाओं को दबाकर रखने केलिए अभिशप्त है।हमारी सामाजिक व्यवस्था इस प्रकार मजबूर बनाती लेकिन ट्रांसजेंडर रोज़ी के संपर्क से अम्मा की ज़िंदगी बदल जाती है। उनमें अपने पहनावे ओढ़ावे से लेकर दैनिक दिनचर्या भी बदल जाती है। नयी ऊर्जा,मोह, सपने , आशा और इच्छाएँ आदि उनपर जाग उठीं।बेटी को भी समझ में न आया कि ऐसे कैसे हो रहा है। वह घबराती है लेकिन अम्मा आत्मविश्वास की जीवित मूर्ति बन गई है।अम्मा नई नवेली बनी हैं।बेटी बड़ी होती है।माँ छोटी होती जा रही है। माँ की स्मृतियाँ ताज़ी है।बाद में अम्मा से कायाकल्प होने लगा। वहाँ रोज़ी, ट्रांसजेंडर है, उनके संपर्क से अम्मा की ज़िंदगी बदल जाती है। ''और माँ सुंदर कढ़े अबा या गाउन,जो चाहो कहो, पहनने लगी। घर में फिरती तो हवा का लहरा चलता फिरता लगता। आगे चलकर वो नीचे भी उतरने लगी। और कभी तो पड़ोसियों के साथ लॉन में बैठ जाती पर सबसे अच्छा उसे रोज़ी के संग सड़क पार ग्रीन बेल्ट के मध्यकालीन मज़ार की सीढ़ियों पर बैठने में लगता''4 ।इसके बाद जो घटनाएँ घटित होती हैं वे सब अकल्पनीय हैं। तीसरे खंड हद -सरहद में विभाजन की त्रासदी है। वर्जनाओं और निषेध के समाज ने स्त्री जीवन पर जो कुछ थोप दिया था, उन सब को अतिक्रमण करके अपनी दबी हुई इच्छाओं की पूर्ति करनेवाली चंद्रप्रभा का चरित्र इस खंड में खुल जाता है।माँ और बेटी बिना विज़ा के पाकिस्तान पहुँचती है। पाकिस्तान जाने के बाद वहाँ अम्मा का चरित्र खुलता है। चंद्रा से चन्द्र प्रभा देवी बनी अम्मा का रहस्य खुल गया। अम्मा यानी चंद्रा का जन्म अविभाजित भारत में हुआ था। हिंदू परिवार की चंद्रा की शादी भी हुई थी, अनवर के साथ। 1870 के मैरेज आक्ट के अनुसार शादी दोनों के परिवार की

सहमति से हुई। भारत का विभाजन हुआ। सांप्रदायिक उन्माद के कारण दंगे हुए, बड़े पैमाने पर जनता अपनी ज़मीन से उजड़कर दूसरी जगह बसने के लिए मज़बूर हो गयी। चंद्रा भारत आयी। खैबर पाकिस्तान का हिस्सा छोड़कर अन्य हिंदुस्तानी औरतों के साथ वे तो सरहद के इस पार चली आईं। हिंदुस्तान आकर चंद्रा, चंद्रप्रभादेवी नाम से नई और दूसरी ज़िंदगी शुरू करती। पहले पति अनवर की स्मृतियाँ उनपर ताज़ी थीं। अनवर से मिलने की इच्छा उनपर जलती रही।रोज़ी के संपर्क से दबी हुई इच्छाएँ जाग उठीं। उस इच्छा ने उन्हें खैबर देश पहुँचायी। पाकिस्तान जाकर वहाँ सुरक्षा कर्मियों द्वारा गिरफ्तार किया गया । पुलिसवाले उन्हें वापस भेजने केलिये तैयार हैं। अंत में माँ अपनी इच्छा पुलिस अफ़सर से खुलकर कहती हैं। वह पुलिस अफ़सर अनवर से मिलने की अनुमति नहीं देता है, कि वह अनवर उनका पिता है। लकवाग्रस्त होकर बिस्तर पर पडे अनवर से उनका प्रेम सच्चा है,निर्मल है। उस रात ही किसी की सहायता से दोनों की मुलाकात होती है।अंधेरे में पुलिस अफ़सर के घर में छुपी औरत पर सुरक्षा कर्मचारी गोली चलाता है और उनकी मृत्यु हुई। यह औरत की लड़ाई है।पीठ खंड में दुनिया को पीठ दिखाकर बिस्तर पर पड़ी अम्मा नहीं है।बिना वीज़ा सुरक्षा कर्मियों के सभी प्रश्नों का मुकाबला किए भी अनवर से मिलने की इच्छा रखनेवाली चंद्रा है।अपने अंतिम दिन में अनवर की छाती के संगीत का ताल सुनने की इच्छा रखनेवाली चंद्रा है।इस उपन्यास की मुख्य कथा के साथ कई आनुषांगिक कथाएँ हैं।उपन्यास की जो काव्यात्मकता है वह कथा संदर्भ को रोचक बनाती है। मलयालम भाषा के कथाकार पॉल ज़करिया की 'एक दिवस का काम' कहानी को कथा संदर्भ के अनुकूल उपन्यास में सूचित किया है।''जिसपर जिन्होंने पढ़ा हो पॉल ज़करिया की कहानी याद कर सकते थे। कि कितनी

छोटी - छोटी चीज़ों का दूर बैठे बेटे को खयाल था कि अकेली पड़ी उसकी बूढ़ी माँ का ध्यान रखा जाए।जिस लेडी ने नर्स की पोस्ट केलिए इश्तिहार का जवाब दिया था, उसे पॉल के पात्र ने पत्र में सब समझाया। सुविधाएँ तनख्वाह आदि बताने के बाद। और ये बताने के बाद कि बाकी भाई -बहन अपने ठिकानों पे आसीन हैं,प्यारी अम्मा की ज़िम्मेदारी मैं उठाता हूँ और दो वर्ष में एक बार उनके पास सपरिवार आता हूँ। तो नर्स, तुम साथ रहेगी। नौ बजे माँ को धीमे स्वर से उठाओगी । उन्हें हिलाके नहीं हल्के से हथेलियाँ सहला के, और पेशानी।वो उठ के तुम्हें पहचान ले तब भीना मुस्कुराना, ना पहचाने तो मुस्कुराके अपनी याद दिलाना।फिर बेड का सिरहाना उठाके उन्हें तकिए का सहारा देकर बिठलाना, उनके धड़ को ज़रा आगे करते, पीठ और कंधों को नरमी से पर पूरी तरह मलते।फिर उसे सोसम्मा- जो कहानी में एक ओर पात्र है-की मदद से कमोड पे बिठाना ।पर पूरे वक्त मुस्कुराना क्योंकि अम्मा को उठने पर खुशहाली और प्यार का एहसास मिलना चाहिए, ये उसकी सेहत, मानसिक शारीरिक दोनों , केलिए मुफ़ीद है। माँ जब कमोड पर हो तो नर्स उनके दोनों हाथ थपथपाती रहे या एक हाथ से उनकी पीठ । नौ बीस पे माँ को स्पंज करे। उस दौरान याद से माँ से बात करती रहे। कुछ मधुर विषयों पर। नर्स के जीवन के सुखी अनुभवों से साझा कराये। या हम बच्चों के बारे में , यानी माँ के बच्चों ,या हमारे बच्चों के बारे में मीठी बातें करती रहे।''5

आनुषंगिक कहानी में एल जी बी टी रोज़ी मुख्य पात्र है। टेलर के माध्यम से इस समुदाय के अभिशप्त जीवन का चित्रण दिया है।केके जो उपन्यास का पात्र है वह माँ की बेटी का पुरुष मित्र है उनके साथ बेटी सहजीवन बिताती है। पुरुष प्रधान समाज में केके की आवाज़ इस समाज का प्रतिनिधि की नहीं बल्कि न्यायपूर्ण समाज की निर्मिति में मानव के

अधिकार की समानता की है चाहे वह स्त्री हो,पुरुष हो क्वीर हो।'' केके ने समान मानव अधिकार को शब्द, संविधान में सबके बराबर हक में आदमी और औरत के अलावा कोई लिंग के न होने पे लिखे थे, और ये कि अब न्यायालय ने इजाज़त दी है कि आप अपने को तीसरा लिंग घोषित करके पहचान पायें पर अमल में कम होता है और समाजिक स्वीकार्य और कम, उनको एडिटर ने पाठक दिलचस्पी के लिहाज़ से बेकार माना और कहा लंबा लेख अकादमिक पत्रिका में लिखो। जितना उसने अख़बार में डाला वहाँ तक आकर पाठक खबर से ऊब चुकता। सो बस, जिसने पढ़ा, जितना पढ़ा, मामला रफ़ा दफा। '' 6 स्पष्ट किया है कि कानून बदले, धाराएँ हुईं लेकिन इस समाज के विषय में सत्ता -शासन और आमजन की सोच में कोई बदलाव नहीं हुआ है। लिंग अस्मिता के संघर्ष से जूझती रोज़ी के संपर्क में आकर ही अम्मा ने अपनी ज़िंदगी को बदल दिया है, दबी हुई इच्छाओं की पूर्ति केलिए तैयार भी हो गईं। अम्मा में पति के निधन के बाद आध्यात्मिक जीवन बिताने की इच्छा नहीं थी। उन्होंने ज़िंदगी से दूर जाने का प्रयास मात्र किया है। वो प्रयास दमनात्मक समाज के खिलाफ उनकी प्रतिक्रिया है। जागृत इच्छाएँ उनके भीतर थीं। इसीलिए पोते द्वारा दी गई छड़ी से अपनी ज़िंदगी को संवारती है। ''खुद चलती फिरती है छड़ी को छड़ी के अलावा हर इस्तेमाल में लाकर,जैसे तकत के नीचे से चप्पल खोजना, ठेल कर खिड़की का पल्ला उढ़काना , दीवार से छिपकली को ठकठक बाहर भगाना, तलवे खुजाना, छड़ी से पॉवर प्रेजेंटेशन की तरह इशारे करके अपनी बात समझाना ,घर की दीवारों और फर्श को बजाना जैसे यहूदी मेन्युहिन हो, उलट गए पावदान चटाई दरियों को बिना झुके सीधा सलटाना, चींटियों, को गुदगुदाना इत्यादि'' ।7 यह छड़ी ने यह प्रश्न उभारा है कि वैश्वीकरण की जादुई छड़ी किसके हाथ में है?

सबके हाथों में यह छड़ी है तो यहाँ कोई सरहद नहीं होगा। ग्लोबल गाँव ही ग्लोबल जीवन है।ग्लोबल जीवन का स्वागत करनेवालों केलिए उपन्यास की स्वतंत्र दुनिया आकर्षित करती है वैश्वीकरण की दमन नीति की चोट सहने वालों केलिए सब कहीं सरहद है। '' ये जो सरहद है, हमारे तुम्हारे ज़माने के फर्क की बात है। तब हम इस तरह नहीं डरते थे। हर चीज़ में बम नहीं छिपा था। इस छड़ी में, उस गमले में, मेरे नाखून में। कि सारा वक्त इसी में जाया करो, बम स्क्वाड, सुंघाई, ठोंक ठोंक जाँच जाँच। दुनिया ऐसी नहीं थी कि जहाँ देखो वहाँ हम अजनबी, हम विदेशी। हवा साफ़ थी और ज़र्रा -ज़र्रा चमकता था। सीधे सरल दिन। धूल धूल थी न कि अदृश्य, अनजान, ज़हरीला रसायन। हमें अपने जज़्बात मालूम थे। शोहरत पैसा मुकाबला ताकत के डंक मारते बर्रे नहीं थे। आसमान ये आधी मुट्ठी नहीं था जो तुम कंजूसों ने ऊपर तान दिया है। ये दीवारें नहीं थीं जो घर को बंदीघर बना दें। हमारे दरवाजे खुले रहते। उनमें आँख जितनी झिर्री नहीं थी और वो भी ऐसी बेहया नहीं कि उसमें आँख डाल के देखने के बजाय बंदूक की नली जा बैठे।''8 ये सारी सरहदें नई नहीं पुरानी भी नहीं। दमनात्मक समाज की देन है। सरहदें लांघने की मानसिक शक्ति का निर्माण भी यह समाज द्वारा ही हुआ है।सरहदें लांघते भी हैं।लेकिन अधिकांश अपने राष्ट्र, राज्य, समाज और परिवार पर सीमाबद्ध हैं, वे दमित इच्छाओं के शिकार हैं। सरहद का निर्णय कौन करता है? सरहद माने क्या है? क्यों सरहद का निर्णय होता है? दो देशों के बीच सरहद क्यों हुआ है? क्या चिड़ियों तथा तितलियों के समान सरहदों को लांघ सकते हैं? लांघना है, चाहे वह सरहद, विभाजन का हो, इच्छाओं को दमन करनेवाले समाज का हो। उपन्यास पर इसका ज़िक्र है '' सरहद, माँ कहती हैं। सरहद? जानते हो सरहद क्या होती है? बॉर्डर। क्या होता है बॉर्डर? वजूद का

घेरा होता है, किसी शख्सियत की टेक होता है। कितनी ही बड़ी कितनी ही छोटी। रुमाल की किनारी, मेजपोश का बॉर्डर, मेरी दोहर को समेटती कढ़ाई। आसमान की सरहद। इस बगिया की क्यारी। खेतों की मेड। इस छत की मुंडेर।तस्वीर का फ्रेम।सरहद तो हर चीज़ की है।''9

उपन्यासकार ने सब्जेक्टिविटी के निर्माण तथा इससे वंचित समाज पर नज़र डाला है। इन्होंने इसकेलिए उपन्यास में पक्षियों की दुनिया का सृजन किया है। इसमें प्रमुख पात्र कौवे हैं। ''और तुम फेमिनिस्ट कौवी ने ढीठ कौवी को तरेरा, ये हर बात पर हिंसा क्यों तुममें फड़कती है? रोज़ बारिश में नहाया करो कि थोड़ी ठंड पड़े।इतनी आसानी से फटक जाते हो, बिगड़ जाते हो विवेक खो बैठते हो। यह सब इसलिए की तुममें कौवाधिकार से बढकर उड़ने की तमन्ना है। तुम्हारे जैसों को ही कल कोई पकड़ेगा कि यह लो पेटी बांध लो और जाओ मेले महफिल में और बटन दबा दो, रोज़ तुम्हारा थोपड़ा फ्रेंड पेज पर आयेगा।बिना सोचे बूझे तुम चले भी जाते हो और उड़ जाते हो, बस अख़बार में थोपडा ही रह जाता है, जो तुम देख भी नहीं सकते। कौवा हो, गधे मत बनो। न चील बाज़ सारस। धैर्य बच्चे, उसके झुके सर पे हाथ फेरती वो बोलीं। उनकी वाणी सुनके सारे कौवे धैर्यवान हो गए और सब्र से खडे।''10 गीतांजलि श्री पितृ सत्तात्मक समाज पर प्रश्न उठाती है,लेकिन इन तीनों औरतें तो कहीं न कहीं अपने को खो गई हैं।समाधि की रेत से माँ मुक्ति पाई है, बेटी की इच्छाएँ माँ के साथ पाकिस्तान आते ही दमित हो गयीं। समाधि के रेत पर वह फंस गईं। ये दोनों औरतें साम्प्रदायिकता के शिकार हैं । रोज़ी के चरित्र ने लिंग के सरहद को उल्लंघन किया है लेकिन सफलता की अंतिम मंज़िल तक पहुँच नहीं पायी है । रेतसमाधि उपन्यास में इन सब का सम्मिश्रण है- फैंटेसी से युक्त स्वतंत्र चिंतन से संपन्न स्त्री विमर्श ,वृद्ध विर्मश और

सांप्रदायिकता सबको स्पर्श करके चेतना का प्रवाह करता है।दमनात्मक समाज का प्रतिरोध करके इच्छापूर्ति के सपनें या सोच को आलोकित करता है, वृध्द जीवन में भी नयी ज़िन्दगी खोजने की ताकत पैदा करता है।'' कोई भी साहित्यिक रचना मानवीय कृति होती है और उसका उद्देश्य मनुष्य तक पहुँचना है।दूसरे शब्दों में एक साहित्यिक रचना मनुष्य द्वारा मनुष्य केलिए और मनुष्य के बारे में होती है वह रचनाकार और पाठक के बीच मानवीय संबंध का माध्यम बनती ।''11

मानव समाज और मानव स्वभाव परिवर्तनशील है। इसकी पहचान की अभिव्यक्ति है 'रेत समाधि'। इसके कारण ही उपन्यास इतिहास और ऐतिहासिक चिंतन से जुड़ा हुआ है। यही भावना ने उपन्यास को यथार्थवादी बनाया है। उपन्यास की संरचना के भीतर अनेक प्रकार का संबंध क्रियाशील है, चाहे वह ऐतिहासिक, सामाजिक और वैयक्तिक है, उन सब ने उपन्यास के पाठ से जुड़कर परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया करते हुए उपन्यास के ढांचे का निर्माण किया है। हरेक पात्र का स्वतंत्र अस्तित्व है, दूसरे पात्रों से संवाद करता है। उस संवाद में खुलापन है। जीवन की निरंतरता है। जो उपन्यासों के आरंभ से लेकर अंत तक है। स्वरों की अनेकता के समान सामाजिक भाषाओं की अनेकता भी है, विभिन्न सामाजिक समूहों और वर्गों के जीवन के अनुभवों, स्थितियों और वास्तविकताओं की अभिव्यक्ति हुई है। संवाद धर्मिता, स्वरों की अनेकता और सामूहिक भाषाओं की अनेकता का रचनात्मक रूप है 'रेत समाधि'।

संदर्भ ग्रन्थ-

संचार बाज़ार और भूमंडलीकरण- अजय तिवारी- पृष्ट 78

नयी साहित्यिक सांस्कृतिक सिद्धांतिकियाँ - सुधीश पचौरी- पृष्ठ 20

रेत समाधि- गीतांजलि श्री- पृष्ठ- 24

रेत समाधि- गीतांजलि श्री- पृष्ठ- 154

रेत समाधि- गीतांजलि श्री- पृष्ठ-258

रेत समाधि- गीतांजलि श्री- पृष्ठ-251

रेत समाधि- गीतांजलि श्री- पृष्ठ-174

रेत समाधि- गीतांजलि श्री- पृष्ठ-332

रेत समाधि- गीतांजलि श्री- पृष्ठ-331

रेत समाधि- गीतांजलि श्री- पृष्ठ-186

11-साहित्य और इतिहास दृष्टि- मैनेजर पाण्डेय- पृष्ठ -65

प्रो. एस.आर जयश्री

हिंदी विभाग

केरल विश्वविद्यालय

****

6

'काला पादरी' और आदिवासी जन जीवन का नब्ज़

डॉ. लीना बी.एल

भारत की सांस्कृतिक धारा में आदिवासी समाज का अपना अस्तित्व है । आदिवासी शब्द से अर्थ झलकता है - 'उस प्रान्त के मूल निवासी' । इन मानव समूहों का वनों, मरूस्थलों उंचे पर्वतों आदि सभी जगहों पर अधिकार था। लगभग भारत की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा वनवासियों का है । संसार के समस्त देशों में आदिवासी निवास करते हैं। प्रकृति को अपना धर्म एवं कर्म मानने वाले आदिवासियों को प्रकृति पूजक भी कहा जाता है। आदिवासियों की अपनी स्वतंत्र बोली, स्वतंत्र संस्कृति है। आदिवासी की चिन्ता जल, जंगल, ज़मीन, भाषा और संस्कृति की है जो आदिवासी अस्मिता के लिए आवश्यक है। आदिवासी लोगों को अपने जीवन में विविधरंगी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उनका संघर्ष जटिलताओं से भरा हुआ है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में एकदम नये विषयवस्तु को लेकर उपस्थित औपन्यासिक कलाकृति है - 'काला पादरी ' । इस उपन्यास में मध्य प्रदेश के आदिवासी बहुल क्षेत्र सरगुजा जिले के बाशिन्दे उरांव आदिवासियों के जीवन की संघर्षगाथा का लेखा - जोखा प्रस्तुत किया गया है। अतः इस उपन्यास में लेखक ने उरांव गाँव की परम्परागत सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं को उजागर किया है।

आदिवासी समूह को आज अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इस समूह के लोगों को एक ही समय पर इतनी अधिक समस्याओं ने घेर लिया है। पुलिस, ठेकेदार, साहूकार, सरकार या विदेशी कंपनियां जमकर इनके शोषण कर रहे हैं। गरीबी से ये लोग काफी पीड़ित है। आदिवासियों की समस्याओं को कलमबद्ध करने का अधिक प्रयास साहित्यकार करते आये हैं। जैसे- आदिवासियों की शिक्षा, अकाल, गरीबी, भूख, नशाखोरी, अस्मिता, शोषण, दमन का खुलकर चित्रण हुआ। ये आदिवासी अपनी संस्कृति का विकास स्वंय करते हैं, और अपने प्रतीकों की पूजा करते हैं। आदिवासी - साहित्य में विद्रोह व वेदना की एक खास प्रकृति दिखाई देती है।

हिन्दी के आदिवासी जीवन से सम्बन्धित विविध पक्षों को अपनी लेखनी से तेजिंदर ने साहित्य में प्रतिबिम्बित किया है। संस्कृति, समाज एवं साहित्य एक दूसरे से संबंधित है। हिन्दी के कई बड़े हस्ताक्षरों ने जल, जंगल, ज़मीन के लिए संघर्षरत समाज की कथा को मूल में रखकर आदिवासी समाज की संघर्षगाथा को विभिन्न रूपों में चित्रित किया है। तेजिन्दर का उपन्यास 'काला पादरी ' सन् 2002 धर्म परिवर्तन पर लिखा गया राजनीतिक उपन्यास है, इसमें उरांव आदिवासियों का चित्रण है।

महेशपुर और उसके आसपास के गांव में आदिवासी अत्यन्त दरिद्रता में जी रहे हैं । इन लोगों को चॉकलेट, दूध, दवाइयाँ देने के साथ-साथ इनके प्रति सहानुभूति जताते हुए उन्हें ईसाई धर्म की ओर आकर्षित किया जाता है। इस उपन्यास में आदिवासियों की समस्या 'भूख' का दर्दनाक चित्रण हुआ है। वास्तव में आदिवासियों की मृत्यु किसी बीमारी के कारण नहीं

अपितु भूख के कारण होती है। भरहरा गाँव का आदिवासी जब भूख से अस्वस्थ होता है तो यही समझा जाता है कि उसे किसी भी भूत-प्रेत ने पकड़ लिया है तब ओझा को बुलाकर झाड़ -फूँक की जाती है। समग्रतः उपन्यास में आदिवासी परिवेश उनकी गरीबी, उनका अज्ञान,उनके अन्धविश्वास, भूख के लिए उनका संघर्ष तथा धर्म परिवर्तन की व्यवस्था को चित्रित किया गया है। अतः इस उपन्यास की कथा में सांस्कृतिक , सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक समस्याओं का बारीकी से चित्रित किया है और उनमें चेतना जागृत करने की पूरी कोशिश हुई है।

तेजिंदर जी के उपन्यास में सांस्कृतिक शैलियाँ स्पष्ट हैं। सामान्यतः अधिकांश उरांवों ने ईसाइयत को अंगीकार कर लिया है। इसके बावजूद भी उन्होंने परम्परागत जीवनशैली को तिलांजलि नहीं दी है। उरांव आदिवासी जातीय अस्मिता से लैस है। भारत के अन्य आदिवासियों की तरह उरांव संस्कृति में अतिथि का बडा आदर होता है , सम्मान होता है। अतिथि देवता समान होता है। उरांव अतिथि सत्कार के दौरान हाथ मिलाते हैं। पुरुष और औरतें भी हाथ मिलाकर अतिथि का स्वागत करती है । इस उपन्यास में अतिथि सत्कार स्पष्ट है - "आओ , भीतर आओ" उसने मुझसे कहा । " उपन्यास में अतिथि-सत्कार के तरीकों पर विमर्श और आगे बढ़ता है।

उरांव आदिवासी किसी अतिथि के घर आने पर अपनी परंपरा से हटकर काली चाय पिलाते हैं ।अंग्रेज भी काली चाय अर्थात् 'ब्लेक टी ' पीते थे। सामान्यतः आदिवासियों में अतिथि सत्कार में शराब का इस्तेमाल होता है । इस प्रथा में कहीं-न-कहीं ईसाइयत का प्रभाव

है, "काली चाय का रिश्ता यहाँ इनकी गरीबी के साथ है या पिछले कुछ वर्षों में धारण की हुई इनकी नयी धार्मिक, सांस्कृतिक, मान्यताओं के साथ मैं नहीं समझ पा रहा था । हो सकता है कि इनके पादरी भी काली चाय पीते हों।" उरांव आदिवासियों में मृतक के अंतिम संस्कार की परम्परागत व्यवस्था कायम है। वे मृतक का सम्मान करते हैं। उरांव के अंतिम संस्कारों में शवदाह नहीं, शव को गाड़ा जाता है। उपन्यास में विरई लडके की मृत्यु के सम्बन्ध में यह विमर्श बड़े विस्तार के साथ विन्यस्त हुआ है ।

उरांव आदिवासी बड़े अंधविश्वासी होते हैं । वे भूत-प्रेत, जादू-टोना, चुडैल-डायन प्रथा इत्यादि में अत्यधिक यकीन करते हैं। इन दुष्ट ताकतों से बचने के लिए वे ओझा की शरण लेते हैं। ओझा गाँव का सबसे सम्माननीय व्यक्ति होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो वह सब कुछ होता है। किसी सामान्य बीमारी से लेकर जानलेवा बीमारी में उरांव ओझा के पास आज भी इलाज करवाते है।

मध्य प्रदेश के आदिवासी समाज की संस्कृति का वर्णन इस उपन्यास में एक नवीन ढंग से हुआ है । जेम्स खाखा और सिस्टर अनास्तारिसा दोनों भाई - बहन है। उपन्यास में इन दोनों के संवाद द्वारा आदिवासी की शहर में किस प्रकार की स्थिति है, उसका वर्णन उपन्यास में इस प्रकार हुआ है -" देखो, इस तरह की 'पापुलिस्ट ' बातें करना बहुत आसान होता हैं , लेकिन इन ए रियल सैंस तुम बताओ कि अपने से बाहर की सोसायटी में कौन हमें एक्सेप्ट हैं उनमें आज भी हम सिर्फ आदिवासी ,कन्वर्टेड हैं, उनका हमारी ओर देखने का ढंग एक तरह से जंगलियों की तरह देखने का ढंग है।" 'काला पादरी' उपन्यास में मध्य प्रदेश में रहने वाले आदिवासी समाज की स्थिति को बड़ी कलात्मक ढंग से वर्णित किया है।

उरांव आदिवासी शराब सेवन भी करते हैं । वे अधिकतर' हंडिया' का इस्तेमाल करते हैं। पर्व-उत्सव या अतिथि के आगमन के समय वे हंडिया का खूब सेवन करते हैं उरांव अन्य आदिवासियों की तरह उत्सवप्रिय है । पर्व-उत्सव एवं गीत - संगीत-नृत्य उरांवो की सांस्कृतिक पहचान के प्रतीक है। लेकिन 'काला पादरी' में पर्व - उत्सव को लेकर विमर्श नहीं हुआ है, यह उनकी सबसे बड़ी कमजोरी है। गीत- संगीत- नृत्य के बिना उरांवों का जीवन आधा है, अधूरा है ।

धर्मान्तरण की मुसीबत उपन्यास में काफी गहराई से झलकते हैं । वे पेड़-पौधों और अपने पूर्वजों की पूजा करते हैं। प्रकृति के पुजारी है, लेकिन इनको धर्म से दूर किया जा रहा है। धर्मांतरण की समस्या आदिवासी अंग्रेजों के आने के समय से जूझ रहे हैं। ईसाई धर्म अपनाने के लिए उन्हें बाध्य किया गया। आदिवासी लोग धर्म बदलते ही अपने रीति- रिवाज तो छोड़ ही रहे है साथ ही साथ अपने देवी-देवताओं को भी भुला देते हैं। जब धर्म परिवर्तन किया जाता है तो उनका नाम भी धर्म के अनुसार ही रख दिया जाता है। आज इनका धार्मिक जीवन संकट की स्थिति में है।

भारत में गरीब से लेकर धनी एवं गांव से लेकर महानगरों तक रहने वाले धर्म पर विश्वास रखते हैं। इसी प्रकार दूर-दराज के जंगलों में रहने वाले आदिवासियों का भी धर्म पर विश्वास होता है। इनके भी देवी - देवता है । इनका भी पूजा-विधान का अपना ढंग होता है। आदिवासियों की विशेषता यह है कि वे अलौकिक तत्वों को महत्व देते हैं इसी कारण मंत्र - तंत्र, भूतप्रेत, बलि देना आदि को मानते हैं। तेजिन्दर द्वारा लिखित ' काला पादरी ' उपन्यास

में धर्म के सम्बन्धों पर चर्चा की गयी है। इस उपन्यास में कतिपय आदिवासियों द्वारा इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने का उल्लेख हुआ है।

मध्य प्रदेश का ' सरगुजा ' जिले के आदिवासी पर लेखक ने अपना दृष्टिकोण रखा है। उनके जीवन के अनेक प्रसंगों को इस उपन्यास में उभारा गया है। इस उपन्यास के सभी पात्र आदिवासी जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं उसमें अनेक विशेषताएँ दिखाई देती है। मध्य प्रदेश में 'सरगुजा ' जिले में रहने वाले आदिवासी में जो हिम्मत है उसे लेखक ने गिरिजाघर के साथ जोड़कर निडर रूप में वर्णन किया है। 'माइकल टोप्पो' इस उपन्यास में एक ही पात्र है । उनकी लडकी का नाम ' लुईसा टोप्पो ' है । माईकल टोप्पो प्रभु यीशु के मंदिर में प्रार्थना करवाते हैं। उपन्यास में आदिवासियों में जो मछली पकड़ने का काम करते हैं, उन्हें टोप्पो कहा है। इस चरित्र 'महेशपुर ' गाँव के साथ जुड़ा हुआ है। महेशपुर गाँव में एक पादरी और सिस्टर ने उरांव आदिवासियों को धर्म परिवर्तन कराने की बात की है, ये कथन- " अभी कुछ दिन पहले ही अंबिकापुर के मुख्य न्यायिक अधिकारी ने इस गांव में उरांव आदिवासियों को बहला फसलाकर धर्मांतरण करवाने का आरोप पादरी और सिस्टर पर लगाया और दोषी सिद्ध होने पर सजा दी थी।...पादरी की उम्र सत्तर वर्ष से अधिक की तथा सिस्टर की आयु पैंतीस वर्ष के आसपास थी। "

भारत के सभी आदिवासियों के समान उरांव आदिवासी भी अन्धविश्वास से अत्यंत प्रभावित है। जब आदमी भूख से अस्वस्थ हो जाता है तब वे बैगा को बुलाते हैं। बैगा के हाथ में झाडू हैं। उसने माथे पर राख मल रखी है। उसके कंधा पर मोर पंख लटक रहे हैं । वह बार-

बार नीचे बिठाए गये आदमी के इर्द गिर्द चक्कर काटता है और चीखता है -" शायद वह यह कहना चाह रहा है कि इस आदमी के शरीर में कोई प्रेतात्मा है, जिसे वह अपने मंत्रों के प्रभाव से बाहर निकाल देगा और यह व्यक्ति उसके प्रभाव से पूरी तरह मुक्त हो जायेगा । "

उरांव आदिवासी मृतकों को दफनाते हैं। इसके पूर्व वे शव को नहलाकर उसे अर्थी पर सजाकर अन्तिम संस्कार के लिए ले जाते हैं। प्राचीन काल में वे मृतकों को जलाते थे । परन्तु अब पिछले कुछ वर्षों से वे मृतकों को दफनाने लगे हैं । उपन्यासकार के शब्द में- " वे यह विश्वास करते हैं कि उनके मृतक शोक की अवधि और दाह संस्कार के पूरा हो जाने पर अपने पूर्वजों से जा मिलते हैं। गर्मी की अवधि में पूर्वजों को सूअर और हंडिया का तर्पण करने की भी रीति है।

उरांव आदिवासी दो पाटो के बीच फंसे हुए हैं। एक ओर हिन्दू है तो दूसरी ओर ईसाई है। उरांव क्षेत्र में हिन्दुओं द्वारा यह प्रचार किया जा रहा था कि - " गर्व से कहो - हम हिन्दू हैं, यह नारा तो उसके लिए नया नहीं था। पिछले कई दिनों से यह शब्द शहर की हवा में घुले मिले थे, लेकिन यह जो भाषा आज इन दीवारों पर लिखी गयी थी, वह उसके लिए नयी थी ।' विदेशी धन पर अपना धर्म बेचने वाले गदारों , वापस आ जाओ और ' यहाँ रहना है तो हिन्दू बनकर रहना होगा ' जैसे वाक्यों से पूरी दीवार रंगी हुई थी । "

समाज की विभिन्न समस्याओं का साथ में लेकर चलनेवाले लोगों का वर्णन आदित्य नामक पात्र के द्वारा मिलता है। उपन्यास में सिस्टर अनास्तासिया के प्रतिनिधित्व से जीवन में जीने की सीख भी मिलती है। ' काला पादरी ' उपन्यास में आदिवासी का जो धर्म

परिवर्तन होता है उसका वर्णन सिस्टर अनास्तासिया से मिलता है। उपन्यास में इस बात का उल्लेख दूसरे लोगों तक पहुंचाने हेतु रखा गया है। धर्म सम्बन्ध बात का एक सन्दर्भ उपन्यास में है -" अभी कल ही बात है , एक टी.वी चैनल पर वाई . एस . नायपाल का इंटरव्यू आ रहा था। इसी बात पर कि धर्म परिवर्तन क्यों होता है । नायपाल का कहना था कि पहले हम अपना धर्म रिजेकट करते हैं , उसे नकार देते हैं हम दूसरा धर्म स्वीकार करते हैं। पर आदित्य , हमने तो किसी धर्म को खारिज नहीं किया , हम तो आदिवासी थे, आदिवासी है और आदिवासी ही रहेंगे । "

आदिवासी लोगों को भूख तथा अकाल की समस्या से जूझना पड़ता है। अल्पवृष्टि या बिल्कुल बारिश न होने की वजह से आदिवासी खाने के लिए कुछ नहीं उगा पाते और ऐसे समय में उन्हें भूखे या अधपेट रहने के लिए विवश होना पड़ता है। ' काला पादरी ' उपन्यास में आदिवासी उरांव की दैनिक आर्थिक स्थिति की अभिव्यक्ति हुई है। मध्य प्रदेश में इन आदिवासियों की आर्थिक स्थिति बड़ी भयानक और दर्दनाक है । अकालग्रस्त इस क्षेत्र में आदिवासी और उसके दो बच्चे की मृत्यु के कारण भूख है। सत्तर साल के एक बूढे आदिवासी को जिला अस्पताल में भर्ती करवाया गया था। यह बूढ़ा उस महिला के श्वसुर था, जो भूख से मर गयी थी। उसके एक लडकी की मृत्यु भी कुछ दिन पहले भूख से हुई थी। यह बूढ़ा भी भूखा था और मर जाना चाहता था। परन्तु लोग उसे जबरदस्ती अस्पताल ले आये थे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'भूख' आदिवासियों की सबसे प्रमुख समस्या है कि यह आदिवासी अपने भूख को मिटाने के लिए पिछले कई दिनों से जहरीली जंगली बूटियाँ खा रहे हैं और जिले के भीतरी इलाके में तो कुछ आदिवासी अपनी भूख मिटाने के लिए बिल्लियों और बन्दर का शिकार कर, उनका माँस तक खा रहे हैं।

उपन्यास में जेम्स खाखा एक बैंक के बारे में चर्चा करते हैं जिसका सम्बन्ध आदिवासी लोगों की आर्थिक परिस्थिति के साथ जोड़ा जाता है। उपन्यास में ' भटहरा ' गाँव का वर्णन है जो सूखी और नंगी पहाड़ी के ऊपर तीस घर का ही गाँव है। इस गांव की आर्थिक परिस्थिति के सन्दर्भ में कहा है कि - " एक आदमी भूखा है और भूख की वजह से बीमार है । भूख एक, भूख दो, भूख तीन, भूख चार, भूख पाँच, और भूख छह । उसने भूख छह तक का एक रिकॉर्ड बनाया है। एक ऐसा रिकार्ड जिसे दस्तावेजों में दर्ज करने वाला कोई नहीं। कोई गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड नहीं, कोई लिम्का नहीं, कोई थम्स अप नहीं।" उरांवों की स्थिति बड़ी दारुण है। प्रशासन की ओर से उनकी घोर उपेक्षा हो रही है। घर में खाने के लिए खाद्यान्न नहीं है, अतएव वे जंगल जाकर अखाद्य जहरीली जड़ी बूटियाँ खा रहे हैं । उपन्यास में उपन्यासकार ने यह स्पष्ट किया है कि एक ओर आदिवासी भूख से मर रहे हैं तो दूसरी ओर गोदामों में माल भरा हुआ है । इस स्थिति निश्चित ही आर्थिक विषमता की भयानकता को व्यक्त करती हैं।

उरांव आदिवासी मूलतः किसान है। उनकी आय का प्रमुख स्रोत कृषि है। सरगुजा क्षेत्र अकालग्रस्त इलाका है , बरसात बड़ी अनियमित रहती है। इस साल का अकाल भी भयावह होगा उसने आसपास की सूखी जमीन देखकर कहा -" हाँ अगस्त लगभग बीत गया और अभी तक बोआयी नहीं हुई।" आदिवासी समाज का शिक्षा न होना बहुत बड़ी समस्या है। आदिवासी समाज का शिक्षा से कम सरोकार प्रकट करने के पीछे कई समस्याएं हैं। ऋणग्रस्तत, भूमि हस्तांतरण, गरीबी, बेरोज़गारी, स्वास्थ्य आदि कई समस्यायें हैं जो शिक्षा

प्राप्त करने से उनको वंचित रखते हैं। आदिवासी समाज को शिक्षा के माध्यम से ही विकसित किया जा सकता है।

जनजाति के विकास में सबसे बड़ी समस्या है भाषा। भाषा ही हमारी भावनाओं और विचारों के वाहक होती है। आदिवासी साहित्य का अमूल्य भंडार इन भाषाओं के लोकगीतों में है, जिनमें संघर्ष गाथा, इतिहास विचार, भावना आदि सुरक्षित हैं। हमारी मूल संस्कृति को जीवित रखने के लिए आदिवासियों की भाषा को जीवित रखना आवश्यक है। उपन्यासकार अपने कथ्य, पात्र, परिवेश को दृष्टिकेन्द्र में रखकर अलग-अलग शैलियों को अपनाता है । 'काला पादरी' नामक उपन्यास में सामान्यतः आत्मकथात्मक शैली एवं धारा प्रवाह शैली प्रयुक्त होती है।

आदिवासियों को समाज में उपेक्षितों के रूप में देखा जाता है ।जनजाति समुदाय के रूप में वे जंगल में रहती है। ये सामूहिक रूप से काम करती है। अन्य समाज के लोग इन्हें घृणा भाव से देखते हैं। सरकारी कर्मचारी एवं अधिकारी भी उनकी उपेक्षा करते हैं। आदिवासी लोग भी समाज का अंग है। उन्हें समाज में उपेक्षितों के रूप में देखने की जरूरत नहीं। जनजाति जीवन की वर्तमान स्थिति में निरन्तर परिवर्तन आ रहा है। अब वहाँ शिक्षा केन्द्र खोले जा रहे हैं , ताकि अधिक से अधिक लोग शिक्षित होकर अपनी स्थिति को सुधार सकें। आदिवासी समाज में फैली बेरोजगारी की समस्या पर नियंत्रण पाने के प्रयास किए जा रहे है। आज जंगलों को विकास के नाम पर उजाडा जा रहा है , कंक्रीट के जंगल बन रहे हैं,

नये-नये कारखाने खुलवा रहे है ,औद्योगिक संक्रमण से आदिवासी मजदूरों में उनके जीवन में परिवर्तन होने लगा है तो दूसरी तरफ अनियंत्रित धन के प्रवाह में मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है। विकास के नाम पर चल रहे अविकास का त्रासद सन्दर्भ को आदिवासी भोग रहे हैं।

उपन्यासकार ने आदिवासी औरत की सामाजिक समस्याओं का चित्रण अलग-अलग समस्याओं के साथ जोड़ा है। इस उपन्यास में सोजेलिन मिज़ तथा जेम्स खाखा प्रमुख नारी पात्रों के रूप में भूमिका निभाते है। इसमें मिज़ ने यहाँ आदिवासी औरत की सामाजिक समस्या को निम्न रूप से उभारा है - " कुछ नहीं, मैं उस औरत के बारे में सोच रही हूँ जो उस आदमी की पत्नी थी, जिसे जिन्दा जला दिया गया । मैं इस औरत के बारे में सोच रही हूँ जो दो बच्चो की माँ थी। तुम बताओं कि आखिर उनकी गलती क्या थी? वह समय के इस खालीपन को अपने भीतर कैसे महसूस करती होगी ? " ये आदिवासी, सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त दीन है। समस्त सुविधाओं से वंचित है। इनके रहन-सहन के सन्दर्भ में उपन्यासकार ने लिखा है कि -"गाँव की पुरुष और स्त्रियां दोनों ही एक जैसी धोतियाँ पहना करते । बच्चे नंगे रहते,थोडा बड़े होते तो माँ-बाप की पिछले साल की धोतियाँ वे भी अपने ऊपर ओढ लेते। इस गांव में कुछ भी नहीं था । न बिजली, न स्कूल,न तलाब,न मंदिर और न ही कोई गिरजाघर। कुछ बकरियां थी और कुछ मुर्गियां "। मध्य प्रदेश के आदिवासी समाज की संस्कृति का वर्णन इस उपन्यास में एक नवीन ढंग से हुआ है ।

तेजिन्दर का उपन्यास 'काला पादरी' यथार्थ उभरनेवाला अनूठा उपन्यास है । मध्यप्रदेश के गहन आदिवासी क्षेत्रों में घटित होती घटनाओं का इतना विवरणात्मक , संवेदनशील और सूक्ष्म आकलन समकालीन कथा साहित्य की एक विरल उपलब्धि है ।

उपन्यास में संस्कृति की विशेषता , गुण - दोष आदि बताकर उन्हें जागृत करने का उद्देश्य रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

काला पादरी – तेजिंदर सिंह गगन ,नेशनल पपेरबैक्स 2005

हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवन – डॉ. इश्वर सिंह राठवा ,माया प्रकाशन 2018

समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श , डॉ.शिवाजी देवर,विद्या प्रकाशन 2016

आदिवासी समाज एवं संस्कृति डॉ. शैला चौहाण कदम ,रौशनी पब्लिकेशन 2014

डॉ. लीना बी.एल

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
कार्यवट्टम कैंपस
तिरुवनंतपुरम

****

7

वैश्वीकरण की दौर में "दौड"

डॉ. एस. हरिप्रिया

हिन्दी के बहु पठित बहुचर्चित लेखिका ममता कालिया जी का आधुनिक उपन्यास है "दौड"। ममता कालिया जी की रचनाओं के विषय नितांत आधुनिक रहे हैं। दौड में आधुनिक जीवन की नयी आलोचना है। जिन्दगी बड़ी तेज़ी से चलती है साथ ही साथ उसकी अवश्यकताओं के ढंग भी बदलते रहते हैं। इस रचना को हम लघु उपन्यास भी कह सकते हैं और लंबी कहानी भी। इसमें वैश्वीकरण बाजारी करण आदि से बुरी तरह पीडित नयी पीढी का चित्रण है। आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण से होकर वैश्वीकरण तक के नये जीवन शैलियो का चित्रण इसमें है।

पूरी कथा इलाहाबाद एवं अहमदाबाद में चलती है। शिक्षा में पूर्व का ऑक्सफोर्ड कहे जानेवाले इलाहाबाद में जन्मे पवन, शिक्षा के बाद अहमदाबाद में काम के सिलसिले में जीवन व्यतीत करने लगता है। भूमण्डलीकरण, वैश्वीकरण का न्यूनतम नमूना वहाँ प्रस्तुत होते हैं जहाँ नेशनल इंस्टिट्यूटों में अपने भविष्य उजागर करने केलिए बच्चे भर्ती होते हैं। वे अपनी ख्याति को विश्व स्तर पर प्रचारित करना चाहते हैं। उनके सामने नौकरी की खोज करते, नौकरी छोडते या बदलते वक्त पैसों का ही फिक्र हैं। आधुनिक युवा पीढी के सामने "टाइम इज़ मनी" है। उनके आगे नैतिकता आदि शब्द भारी लगते हैं। एक अवसर पर अपने दोस्त राजुल से पवन का कथान है ""दर असल बाजार के अर्थशास्त्र में नैतिकता जैसा शब्द

लाकर, राजुल, तुम सिर्फ कन्फ्यूज़न फैला रही हो। मैनें अब तक पाँच सौ किताबें तो मैनेजमेंट और मार्केटिंग पर पढी होंगी। उनमें नैतिकता पर कोई चैप्टर नहीं है।""1 वे लोग अपनी सफलता इसपर मानते हैं कि एक मरा चूहा भी बेच सकते हैं।

भारतीय युवा लोगों के जीवन के प्रति दृष्टिकोण विश्वस्तरीय हो गया है। उनके लिए पैसा ही सब कुछ है। भारतीय माँ बाप जिसे परम्परा या संस्कृति के नाम पर अपनाते है युवाओं के सामने कुछ भी नहीं है। अपनी तरक्की केलिए कहीं भी जाने केलिए वे तैयार हैं। माँ -बाप की भावुकता उनके सामने तमाशा है। भारतीयता के वसुधैव कुटुम्बकम् का सिद्धांत का फैला व्यावहारिक रूप है वैश्वीकरण। विश्व एक इकाई बनकर प्रस्तुत है इसमें। विश्व या ढ़थ्दृडड्ढ का मतलब है एक बडा सा मार्केट और इसमें ""एक एक उत्पाद की टक्कर में बीस-बीस वैकस्लिक उत्पाद है।""2

जीवन, परिवार आदि के प्रति लोगों के दृष्टिकोण बदल गये हैं। सभी युवा लोग सिद्धि या सफलता की होड में है। ""सिद्धि, इस दुनिया में एक चार पहिया दौड है जिसमें स्टियरिंग आपके हाथ में है, पर बाकी सारे कंन्ट्रोल्स कम्पनी के हाथ में। वही तय करती है कि आपको किस रफ्तार से दौडना है और कब तक।""3 दुनिया मतलबी हो गयी है यहाँ पूर्व पीढियों के प्रति और आगामी पीढियों के प्रति वर्तमान युवा पीढी के विचार ही अलग है। अपनों जीवन में सफलता पाने के दौड में प्रथम आने केलिए वे बुजुर्गों को छोड सकते हैं, परिवार कल्याण के नये मुद्दे प्रस्तुत करते है। वह है डिंक्सा "क़्दृद्वडथ्ड्ढ क्ष्दड़दृथ्ड्ढ ग़्दृ त्त्ड्डुद्म माने दोहरी आमदनी बच्चे नहीं।""4 यह विश्वभर का आधुनिक मुद्दा है। वैसे ही वैश्वीकरण का शाब्दिक अर्थ स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं का घटनाओं के विश्व स्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया है। इसके

द्वारा विश्व भर की जनता मिलकर एक समाज बनते हैं। भारतीय परम्परा के वसुधैवकुटुबकम् का सिद्धांत भी इसमें चरितार्थ है। यह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, तकनीकी क्षेत्रों में हावी होते हैं।

इलाहाबाद के एक मामूली पत्रकार एवं अध्यापक दम्पतियों के पुत्र पवन और सधन विदेश एवं स्वदेश के दूरी इलाकों में काम करने के विकल्प लिये हैं। लेकिन ये युवा इसे कोरी आवश्यकता समझते है और हालातों से समझौता करने केलिए खुले दिल से तैयार होते हैं। पवन की शादी कंप्यूटर एक्स्पेर्ट से जब संपन्न होती है तब माँ-बाप की समझ में नहीं आती कि यह कैसे संभव होगा। पवन चेन्नै में नयी नौकरी केलिए जाता है तो स्टैला अपने व्यापार की देखभाल के लिए राजकोट जाती है। इनका विवाह दिल्ली में सरल मार्ग मिशन के शिबिर में इकट्ठे हुए लोगों के सामने सामूहिक विवाह के रूप में संपन्न हुआ है।

पवन शादी को "डील" ही मानता है। पवन अपनी पत्नी स्टैला की खूबियों को पहचानने और माननेवाला है। वह उसकेलिए माँ को समझाती है कि वह बडा कंम्प्यूटर विजर्ड है। उसके पास बिल गेट्स के हस्ताक्षर के चिट्ठी आती है। स्टेला में स्त्रियोचित गुण बनाने की मश्विरा करती माँ को पवन समझाता है ""अरे माँ आज के जमाने में स्त्री और पुरुष का उचित अलग-अलग नहीं रहा है। आप तो पढी लिखी हो माँ, समय की दस्तक पहचानो। इक्कीसवीं सदी में ये सडे-गले विचार नहीं चलता है। इनका तर्पण कर डालो।""5 इलाहाबाद के मामूली जीवन जीनेवाले माँ बाप को अच्छी जिन्दगी की तरफ आगे बढाने में स्टैला सफल

होती है। कंप्यूटर की सीमातीत लाभ के बारे में रेखा और राकेश को समझाती है। दोनों को टेक्नोलजी के तौर पर बढावा देती है।

कहानी में समानांतर रूप से कई बुजुर्गों की कथा भी चलती है और नौजवानों की कथा भी। बच्चे नौकरी की तलाश में शहरों में जा बसते हैं और माँ बाप घर पर अकेले रह जाते हैं। पूरा कस्बा सीनियर सिटिसन कॉलनी बनती जा रही है। "हर घर में, समझो एक बूढा, एक बूढी एक कुत्ता और एक कार बस रह गया है।'' पिता के अपने साथ रहने केलिए जबरदस्ती करने पर पवन बताता है —''पापा मेरे लिए शहर महत्वपूर्ण नहीं है, कैरियर है।"6 और "मैं ऐसे शहर में रहना चाहता हूँ जहाँ कल्चर हो न हो कांज़्यूमर कल्पर जरूर हो। मुझे संस्कृति नहीं उपभोक्ता संस्कृति चाहिए, तभी मै कामयाब रहूँगा।"7 वैश्वीकरण के जमाने के दो प्रमुख मुद्दे हैं जगह अप्रधान होना और कामयाबी अनिवार्य होना।

बाज़ारीकरण एवं आधुनिकता की होड में आपसी व्यवहार सब बनावटी होने लगा है। जब नौकरी पेशा वाले पवन अपनी माँ से जन्मदिन के ग्रीटिंग कार्ड न मिलने की शिकायत करता है। तब माँ को लगता है ""उन्हें अपने बेटे को प्यार करने का नया तरीका सीखना पडेगा-और तरीका है बाज़ारीकरण का तरीका। वैश्वीकरण का एक और अनिवार्य शर्त है आधुनिकता की रफ्तार पकडना। इलाहाबाद में गंगाजल पीकर बडे हुए पवन को मिनरल वाटर खरीदकर पीते देख माँ बाप को लगते हैं कि बेटा देस में ही परदेसी हो गया है। इस उपन्यास में वैश्विकता के ऊपर आधुनिकीकरण एव बाजारी करण का प्रभाव अधिक हैं।

पवन के माँ-बाप रेखा और राकेश आधुनिक दृष्टिकोण रखनेवाले तो लेकिन हैं पुत्र पवन, सघन और बहु स्टैला की रफ्तार पकडने में उनको कुछ समय लगता है। कॉलोनी के

एक सीनियर सिटिसन सोनी साहब हैं जिनका पुत्र न्यूयोर्क में काम करता है। अचानक सोनी साहब की मृत्यू हो जाती है तो पुत्र सिद्धार्थ उनके अंतिम कर्म देने केलिए आने में अपनी असमर्थता व्यक्त करता है और माँ से दूसरे किसी को पुत्र के रूप में स्वीकार करने का मश्विरा करता है। पूरे कॉलोनी में इसकी चर्चा होती है लेकिन रेखा और राकेश इस से अलग खडे हो जाते हैं। उनके सामने अब सैटेलाइट और इटरनेट से दाम्पत्य तक चलाने का नमूना पुत्र ने प्रस्तुत कर रखा है। बहू स्टैला के कैरियर वुमन की भूमिका तक को वे अब पचा सकाने की स्थिति में है। बाजारीकृत समाज के आधुनिक युवाओं के दृष्टिकोण है - मंजिलों केलिए संघर्ष तो करना ही पडेगा। उनकी दृष्टि में चलते रहना ही तरक्की है।

विश्व भर को एक बाजार माननेवाले आधुनिक दुनिया एथिक्स या नैतिकता की जगह पर प्रोफेशनल एथिक्स को अपनाती है। उनकी दृष्टि में सामाजिकता एवं अकेलापन व्यक्ति सापेक्ष है। वह भीड में भी अकेलेपन का एहसास सकता है और दूर रहकर भी इटंरनेट सैटलैट के माध्यम से पास होने का एहसास दिला सकता है। इलाहाबाद जैसे धार्मिक नगरी में जन्म लेने के बावजूद पवन सरल मार्ग मिशन के अनुयायी एवं हिमायती बनता है और माँ बाप को भी स्बामीजी के शिबिर में ले चलता है। उसकी राय में सभी बातों केलिए नये शब्दकोश बने हैं - माँ को आध्यात्मिक हाँलिडे के बारे में समझाते वह हिचकता नहीं है।

वैश्विक स्तर पर जीने केलिए युवालोगो को बहुत प्रयत्न करना पडता है। पवन का छोटा भाई सघन जो सोफ्टवेयर सीखने दिल्ली चला गया था भोजन और व्यक्तिगत जरूरतों को काटकर उन पैसों से हार्डवेयर भी सीखता है जिसका पता बहुत देर बाद में पिता जी को

चलता है। वे इस बात को समझने केलिए बाध्य हो गये हैं कि ""हम अपने बच्चों को कितना कम जानते हैं। उनके इरादे, उनका गंतव्य उनका संघर्ष पथ सब एकाकी होता है।""8 आधुनिक नवयुवक केलिए देस परदेस की कल्पना ही अन्य है। अब वे विश्वनागरिक बन गये हैं। उनको किसी अजनबी नगर जाने या बसने में कोई भय या शंका नहीं है।

वैश्विकता के शब्दकोश भी नया है। उसमें भावुकता की कोई जगह है ही नहीं। समधियों से विवाह के अवसर पर भी मिल नहीं पा रहे हैं। पवन और स्टैला दोनो के माँ-बाप को किसी हॉलिडे सिसोर्ट में मिलाने का इन्तज़ाम करते हैं। उनके सामने घर, परिवार, शहर का अर्थ एवं परिभाषा ही अलग हो गया है। पवन का छोटा भाई सघन विदेश जाकर वहाँ की राजनीति में भाग लेता है जो स्वतरनाक कार्य है। यह जानकर पवन पिताजी को सघन की हालन के बारे में जताता है। पिताजी के उसकी बचाव की योजना के बारे में कहते वक्त वह साफ बताता है ऐसे लोगों को चेता सकता हूँ उसे बचाना न मेरा कार्य है और उस के लिए काफी समय भी नही है मेरे पास। सघन को वापस बुलाने पर वह पिताजी से कहता है तीस पैतीस लाख रुपयों का इन्तज़ाम कर सकते हैं तो बात करना, नहीं तो इस विषय पर चर्चा छेडने से कोई फायदा नहीं है।

इस उपन्यास में वैश्वीकरण के पूर्व के आधुनिकीकरण एवं पाश्चात्यवत्करण ही अधिक मिलता है। वैश्वीकरण जो नये जीवन मूल्यों को प्रस्तुत करते हैं उन्हें पवन, सघन, अभिषेक, राजुल, स्टेला, सिद्धार्थ आदि की मानसिकता के माध्यम से प्रस्तुत करने का परिश्रम हुआ है। इसमें कुछ आधुनिक मुद्दों पर चर्चा जरूर हैं। वे मुद्दे हैं नारी विमर्श/नारी की

स्वतंत्रता जो स्टैला के माध्यम से दिखायी गयी है। नौकरी एवं उत्पादों के यथेष्ट और स्वतंत्र व्यापन और उसके प्रति स्वीकारात्मक मनोवृत्ति पवन में पा सकते है। बाजारीकरण से खुले वैश्वीकरण के माध्यम से ऊंची वित्तीय स्थिति की ओर होड लगाने वालों के प्रतिनिधि के रूप में सघन को हम देख सकते हैं।

ममता कालिया ने इस उपन्यास में वैश्वीकरण के ज़माने के एक परिवार की कथा के माध्यम से औदयोगिक क्रांति के अनुगमिनी वैश्वीकरण के पूर्व पद्धति आधुनिकीकरण, बाजारीकरण, पश्चिमीकरण के चित्रण अधिक किया है। विश्व स्तर के बाज़ारीकरण के प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव जिन्दगी को जिस प्रकार परिवर्तित या परिवर्द्धित करता है यही दौड उपन्यास का विषय है। ममता कालिया जी ने वैश्वीकरण को विषय बनाने का ज़बरदस्त परिश्रम इस उपन्यास में किया है। इसमें यही साबित हुआ है कि वैश्वीकरण के कारण जीवन में उत्पन्न संकट या विकल्पहीनता आधुनिक मानव के सामने नहीं है।

संदर्भ सूची

1. दौड ममता कालिया, पृ.39
2. दौड ममता कालिया, पृ.22
3. दौड ममता कालिया, पृ.20
4. दौड ममता कालिया, पृ.28
5. दौड ममता कालिया, पृ.63
6. दौड ममता कालिया, पृ.40
7. दौड ममता कालिया, पृ.41
8. दौड ममता कालिया, पृ.71

डॉ. एस. हरिप्रिया
असिस्टेंट प्रोफसर, हिन्दी विभाग
सरकारी आर्रस एण्ड साइंस कॉलेज, चेलक्करा

****

8

वैश्वीकृत समाज में पारिवारिक संबंध: 'दौड' उपन्यास के

हरिता कुमारी.जे

इक्कीसवीं सदी के भारतीय समाज एवं संस्कृति में अनेक बदलाव परिलक्षित है । यही बदलाव साहित्य में भी मुखरित हुआ है । साहित्य समाज का दर्पण होता है इसलिए समाज में होनेवाली सभी घटनाएँ एवं बदलाव साहित्य में दृष्टिगोचर होता है । इस बदलाव का प्रमुख कारण है उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण से पनपी बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद । इन सब के प्रभाव ने पूरी दुनिया को बाज़ार के रूप में परिवर्तित किया । समकालीन हिंदी उपन्यास मानव की सूक्ष्म संवेदना को अतीव गहराई और विस्तार से परखता है और साथ ही देश समाज और व्यक्ति पर पडने वाले प्रभावों का सजीव चित्रण करते हैं ।

वैश्वीकरण भारतीय सभ्यता व संस्कृति पर तीव्र हमले कर उसे मूल्यहीन बना रहा है । भारतीय संस्कृति परिवार को बहुत अधिक महत्त्व देता है । परिवार के हर सदस्य एक दूसरे के साथ बहुत सुदृढ़ संबंध रखता है , सब आपस में स्नेह करते हैं । परिवार में किसी एक का दुःख सबका होता है और खुशी सबकी होती है । लेकिन वैश्वीकरण के प्रभाव उद्भूत संस्कृति मूल्य एवं भावनाओं को नष्ट कर रहा है । कोई परिवार को महत्त्व नहीं देते , वे सिर्फ पैसा कमाने और अपना स्टेटस बढाने में उत्सुक रहते हैं । वैश्वीकृत समाज में परिवार एवं रिश्तों में आये बदलाव ममता कालिया द्वारा लिखित 'दौड़' उपन्यास में परिलक्षित है ।

'दौड़' उपन्यास में महानगरीय मानसिकता का सूक्ष्मता से चित्रण किया है । उपन्यास

के हर पात्र शिक्षित एवं रोज़गार प्राप्त है । उपन्यास के प्रमुख पात्र है पवन जो भाईलाल कंपनी के एल.पी.जी. यूनिट में सहायक मैनेजर का काम करता है । उन्हें पद और वेतन में उच्चतर ग्रेड की अति आकांक्षा है । वह अपने स्टैटस बनाये रखने के लिए अपने माँ-बाप को छोडकर काम करने के लिए दूसरी कंपनी में जाता है । बाज़ारवाद से वशीभूत होकर युवक रिश्तों को तोड़ता है । पवन अपनी नयी नौकरी के लिए दूर जाने की बात अपने माँ-बाप से बताता है तब वे नाराज़ हो जाते हैं । हर माता-पिता की तरह वे अपने बेटे के साथ रहना चाहते हैं । वे चाहते थे कि पवन पास रहकर काम करे । तब पवन कहता है :- ''यहाँ मेरे लायक सर्वीस कहाँ? यहाँ तो बेरोज़गारों का शहर है । ज्यादा से ज्यादा नूरानी तेल की मार्केटिंग मिल जायेगी''[1] । पवन के इस बात से पता चलता है कि वे अपने परिवार से अधिक पैसा कमाने में और अपना स्टेटस बढाने में उत्सुक है । उन्हें अधिक वेतन मिलने वाले काम चाहिए । उनमें परिवार से ज़्यादा सम्पत्ति की चाह है ।

बीसवीं शताब्दी के तीन अक्षरवाले कोर्स एम.बी.ए. ने नौजवान के जीवन में जादूई परिवर्तन लाया है । आज की पीढ़ी अपने करियर बनाने के दौड़ में फँसे हैं कि वे रिश्तें एवं जिम्मेदारियों को भूल जाते हैं । पवन अपने पापा से कहता है :- ''पापा मेरेलिए शहर महत्वपूर्ण नहीं, करियर है । अब कलकत्ते को ही लीजिए कहने को महानगर है पर मार्केटिंग

की दृष्टि से एक दम लद्धड है..... मुझे संस्कृति नहीं उपभोक्ता संस्कृति चाहिए, तभी मैं कामयाब रहूँगा''[2] । पवन के इस विचार से यह स्पष्ट होता है कि बाज़ारवाद का कुप्रभाव युवा पीढ़ी को अपने चंगुल में फँसा दिया है ।

पवन जैसे अनेक नौजवान अपनी संस्कृति को छोडकर उपभोक्तृ संस्कृति का शिकार बनते हैं । वे न अपने परिवार और न अपने समाज के बारे में सोचते हैं । बाज़ारवाद के चकाचौंध में युवक आसानी से आकर्षित होते हैं पर उस माया जाल से बाहर नहीं निकल पाते हैं । इस बाजारवादी संस्कृति में युवक अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ निभाने में कठिनाई महसूस करते है । इस उपन्यास के अन्य पात्र है अभिषेक शुक्ला । उनके नज़रों में शादी एक बडा बंधन है । उनका विचार है कि शादी करने से कैरियर समाप्त होता है । वह अपने ही मन में कहता है :- ''हिन्दुस्तानी मर्द को शादी के सारे सुख चाहिए बस जिम्मेदारी नहीं चाहिए । मेरा कितना हर्ज हुआ । अच्छी भाली सर्वीस छोडनी पडी ..... आज कल नो डिंक्स का ज़माना है । डबल इनकम नो किड्स । मैं सेंटिमेंट के चक्कर में फँस गई''[3] ।

पवन एंटरप्रैस कार्परेशन की पार्टनर स्टैला डिमैलो से शादी करता है । अपने माता पिता से स्टैला का परिचय करते हुए पवन कहता है :- ''माँ स्टैला मेरा बिजनेस पार्टनर, लाइफ पार्टनर, रूम पार्टनर तीनों है''[4] । पूँजीवाद किस तरह मनुष्यता की मर्यादाओं को तोडता है इसका उदाहरण है 'दौड' उपन्यास । मानव में भावात्मक आत्मीयता नष्ट होने के

कारण मन में अस्थिरता पनपने लगता । बढती व्यवसायिकता से आजीविकवाद पैदा हुआ और इसी ने पारिवारिक संबंधों की भावात्मकता नष्ट कर दिया है । आज युवा पीढी हर कार्य कम्प्यूटर के माध्यम से करना चाहते हैं । उनके पास किसी भी कार्य के लिए समय नहीं है । पिता की मृत्यु होने पर न्यूयार्क में बसे बेटे सिद्धार्थ के पास अपने पिता के अन्तिम संस्कार करने के लिए देश आने तक समय नहीं है । वे अपनी माँ से कहते है :- ''आप ऐसा कीजिए, इस काम के लिए किसी को बेटा बनाकर दाह संस्कार करवाईए । मेरे लिए तेरह दिन रुकना मुश्किल होगा । आप सब पूरा करवा लीजिए''[5] । जिस माता पिता ने बच्चों को पाल पोसकर बडा किया, जिसने अपना सारा समय अपने बच्चों की खुशी के लिए न्योछावर कर दिया उसी माँ-बाप के लिए बच्चों के पास समय नहीं है । जाते वक्त अपनी माँ के पास बीस हज़ार का चेक देते हुए पवन कहता है :- ''माँ हमारे आने से आपका बहुत खर्च हुआ यह मैं आपको पहली किस्त दे रहा हूँ । वेतन मिलने पर और दूँगा''[6] । आज के युवा पीढी सब पैसे के नज़रिए से देखता है । वे रिश्तों को नहीं मानते हैं ।

आज के जीवन की वास्तविकता का खुला चित्रण है 'दौड' उपन्यास । नई संस्कृति का प्रभाव और मूल संस्कृति की आवश्यकता, विज्ञापन में चित्रित विरोधाभास, छल-कपट, वैश्वीकरण की खोखली मानसिकता, पारिवारिक विघटन, मूल च्युति, आधुनिकता का प्रभाव, रिश्तों में आए बदलाव आदि का खुला चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में किया है । समकालीन बाज़ार व्यापक होकर मनुष्यता का हनन कर रहा है । बाज़ारवाद की अन्धी दौड का विस्तृत वर्णन ममता जी ने इस उपन्यास में किया है ।

संदर्भ ग्रंथ

दौड़ , ममता कालिया – पृ.सं. 11

वही , पृ.सं – 40 - 41

वही , पृ.सं – 28

वही , पृ.सं – 51

वही , पृ.सं – 89

वही , पृ.सं – 68

हरिता कुमारी जे

शोध छात्रा

हिंदी विभाग

कार्यवट्टम कैंपस

****

9

समाधि की हद सरहद

हिमा एम.एन

साहित्य अपने आप में एक एक्सपेरिमेंट है। उसकी दागे पकड़ने और उसको आकार देने की कोशिश में रचनाकार अनोखी भाषा गठती हैं। वैश्विक स्तर पर हिंदी साहित्य के पाठक वर्ग को बरक़रार रखने का एक प्रयास है 'रेत समाधि' । हिंदी की विविध रूपों और, शैलियों से सजा इसकी विस्तृत कथानक को पढ़कर मन अटक जाता है कि हिंदी के उन शब्द कहीं तो अनसुने है कहीं परिस्थिति के मुताबिक नए गठे हुए है।यह उपन्यास शब्दों का मायाजाल बुनने का नायाब नमूना है।इसे पढ़कर ताज्जुब होता है कि इन हिंदी शब्दों का ठीक अंग्रेजी अनुवाद कितना मुश्किल रहा होगा ।पढ़ते वक्त यह सोचना मुश्किल हो जाता है कि क्या इसका अंग्रेजी अनुवाद संभव है? लेकिन डेज़ी रॉक्वेल ने विश्व पटल पर अनुवाद का महत्व उजागर करते हुए 'Tomb of sand' प्रस्तुत किए हैं।

उपन्यास का शीर्षक है ' रेत समाधि'।यह शीर्षक उपन्यास में चित्रित कथा की कई बातों से बारीकी संबंध रखता है।वह नश्वरता का दर्शन बन जाती है।जिसमे कुछ भी कब्र नही बनती ,बल्कि बनती है समाधि। "फिर भी समाधि का अस्तित्व मिटाना दुर्लभ।"1" डायनमाइट परेशान।मतलब सदियां उन्हें खाए या जीव-जंतु और चाहे धूर्त धूर्तता पर उतर आए ये कहानियां, ये समाधियां ये मूर्तियां मरती नहीं न हमेशा के लिए दफ़न रहती ।ये तो बस बैठ रहती, ध्यान मुद्रा में, और धीरे-धीरे उन्हें रेत प्रपात ढकते जाते और वह ढकी रहती है

।जब तक ढके रहना होता है ।"2

जब हल्की सी हवा में रेत उड़ती है तब समाधियों में से कहानियाँ निकलेगी।जैसे इस उपन्यास की बूढ़ी औरत की तरह।वह संयुक्त परिवार की दादी है,माँ है।शुरू में ऐसा लगता है कि उसका जीवन दब गई है।मगर फिर उसकी भी कहानी उस रेत से उभरती है।तरह तरह की औरत की कहानी उन में से बनती हैं।उपन्यास में एक वाक्य दृष्टव्य है " उसने हजार गायों के दूध का अर्क उनके मुंह में डाला इस कारण बुद्ध लौट पाए और न रेत,न जल वरण मध्यमार्ग को सर्वोच्च घोषित कर गए। मगर जल समाधि और रेत समाधि के आध्यात्मिक प्रकाश पुंज ने उनके चेहरे को हर उनकी छवि ,उनके बुत, उनकी स्मृति को उज्ज्वल किया।"3। किताब का असर सूफ़ियाना से भी है और बौद्ध दर्शन के मध्यमार्ग से भी ।

रेत समाधि की भाषा पर कृष्णा सोबती ने एक ऐसे तथ्यात्मक टिप्पणी दी है जो बिल्कुल शुद्ध है।वह लिखती है "भारतीय स्थापत्य और समय काल की सीमाओं को प्रस्तुत करता है रेत समाधि का पाठ ;जो कभी उद्वेलित करता है और कभी दोनों के साँझेपन में एक ऐसी स्थिति प्रस्तुत करता है जो एक साथ नए और पुराने विन्यास का प्रतिबिंब है-यह अद्भुत है। इस पाठ की मानवीय विविधता ऐसी कि वह पाठक को न मात्र नई लगती है और न निरी प्राचीन ।रेत समाधि का प्रतीक और आत्मिक भाषा विकास अनजाने में ही एक दूसरे की स्थापनाओं का आधार बनते हैं।"4

यहां अम्मू के जीवन का एक बड़ा हिस्सा खोलता है और अम्मू को जानने समझने की एक व्यापक फलक मिलती है।मोह,जीवन,सरहदें,समाधि,स्वत्व, आदि की परिभाषाओं को तलाशने के क्रम में यह उपन्यास ज़िन्दगी के भीतर से गुज़रता हुआ दिखाई पड़ती हैं।दो

पीढ़ियों के मानसिक संघर्ष के आड़ में एक दूसरे को मानने से कहीं ज्यादा जानने की कहानी बन जाती है।"समय कैसे काल बन जाता है।एक दौर में सीढ़ियाँ चढ़ी जाती हैं।दूसरे में उतरी जाती हैं।ऐसा कोई नही जो हमेशा एक सा दमकता रहे"।5 यह तो कुदरत का नियम है।गीतांजलि श्री ने जीवन की इस साधारण दर्शन को असाधारण मोड़ देकर साधारण में असाधारण को प्रतिध्वनित करती है।

संयुक्त परिवार की कहानी ,साधारण मध्यम वर्ग के किरदार,जिसमें मां है बेटी है बड़े बेटे है, भाई है।हरीश त्रिवेदी ने ठीक ही लिखा है "मितभाषी अफसर बेटा, स्वछन्द मूखर बेटी,सेवा करती पर कुढ़ती रहती बहू और उनके पारस्परिक बोल बर्ताव रेशे रेशे का ऐसा सूक्षम मनोवैज्ञानिक पर साथ ही व्यंग विनोदपूर्ण और मनोरंचक चित्रण हिंदी में ही क्या अन्यत्र भी दुर्लभ है।जिस तरह समाज में बुर्जुआ वर्ग ने सर्वहारा को अधीनस्थ कर दिया उसी प्रकार परिवार में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती पितृसत्ता ने ऊंच-नीच को ताज की तरह कायम कर दिया।"6 चिल्लाना परंपरा है। बड़े बेटों का चिल्लाने का पुराना रिवाज है ।मालिकाना ढंग से। रिटेनमेंट तक पिता चिल्लाते थे, फिर चिल्लाना बेटे को सौंप कुछ शांत हो चले।"मित्रों से पार्च्ड तक की सफर तय करके भी सतही तौर पर देखा जाए तो लगता है स्त्री और मुक्ति आज भी नदी के दो किनारे की तरह है जो कभी मिल नहीं पाती।अंततः उस बूढ़ी औरत परिवार को भी लाँघती है।

"रिश्ते अब अदल बदल हो गए है।बेटी होकर तुम मेरी माँ बनी हो और मैं..."7इस अधूरी आवाज़ को पकड़ कर गीतांजलि श्री ने नई सरहदे बनाई।जिसमे उन्होंने कहा "टूटी फूटी बेचारी अम्मा ।बेटी ने अम्मा बन कर सोचा।गाला रुंधा।"8"बेटी ने माँ बनकर माँ को

बेटी बनाया और उनके माथे पर हाथ फेरा।"9" मनोवैज्ञानिकों ने कहा है कि कमरे में और महफिल में घुसते ही जो प्रकृति कारगर होती है वही व्यक्ति रच देती है। आने वाले पल का रंग अब तय । कमरे में घुसते ही मां बिस्तर पर सो गई और बेटी मां बन गई। आब नींद से उठेगी तो एक और जीवन होगा ।एक और का जीवन ।बाकी तो हर किसी की अपनी दौड़ आमीन।"10 जिस तरह प्रेमचंद की अमीना हामिद के सामने छोटी होकर सारे अनुभवों को एक साथ महसूस कर पाने की स्थिति में रोती है ठीक वैसे ही अम्मा और अम्मू के अन्तःकरण भी उसी अनुभव पा कर एक साथ रोती है।

अनुभव में समग्रता है।क्रोचे के अनुसार "महान कलाकार सामाजिक को उसका अपना ही अन्तः दर्शन करवाते हैं।"11 अनुभव की दृष्टि से सामाजिक यथार्थ को समग्रता से अभिव्यक्ति देने के लिये रचनाकार कवित्व का अन्वेषण करता है ।जिससे उसका सम्प्रेषण अधिक दक्ष होता है।रेत समाधि को कई बार कविता की तरह पढ़ना पड़ता है ।पढ़ते पढ़ते ऐसे लगते हैं कि कविता पढ़ रहे हैं ।जब कहानी का मोड लेकर कथा आगे बढ़ती है तो फिर उसकी काव्यात्मकता भी बढ़ती जा रही है। "चूर चूर होते जाने के चूरे में व्यस्त ,जीवन्त। खीजती, ख़फ़ाती, संभालती, फाफाती ,साँस पर साँस पर साँस चलाती। क्योंकि सभी की साँस उसी में चलती सभी की साँस वो चलाती।"यह गद्य ,पद्य की गति पकड़कर बहती है।गद्य में पद्य और पद्य में गद्य रचने की कारीगरी उसे कृष्णा जी से मिली होगी।जहँ कृष्णा जी ने जो कुछ बाकी छोड़ कर चली उसी की नब्ज़ पकड़ कर गीतांजलि जी रफ़्तार को आगे बढ़ाने के प्रयत्न में तल्लीन रहती है।

उपन्यास में रूपक अलंकार का बेमिसाल संयोजन हुआ है।दो पीढ़ियों के बीच का

असमंजस को पीठ, दरवाज़े, खिड़की से बखूबी दर्शाया है।घर के बड़े इस बात से वाकिफ है कि बूढ़ों के लिए न घर मे जगह, न मन में।एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी से उदासी होती है।दो पीढ़ियां दरवाज़े के उस पार और इस पार खड़े है।'खिड़की 'से लेखिका पाठक को बूढ़ी औरत की जवानी की और ले जाते हैं जब वह तितली की तरह खिड़की से बाहर आने जाने में स्वछन्द रही थी।"तो अपनी अम्मा की कही कह देती है,चिल्ला जाड़ा दिन चालीस,फूस के पंद्रह,माघ पचीस।चुपकी के बाद बोलो और लयदार मुहावरा बोलो तो आवाज़ गा जाती है।कुछ पी पी पिपियाती।कुछ लहरिल लहराती।कि च्च चिलल्ला ज्ञजाड़ादिन चचालीस,फूस के पपन्द्रह म्माघ पपचीस।"12 भाषा के स्तर से उपन्यास में मुहावरे और पुरानी कहावतों को ढूढ़ निकालकर थोपने की प्रक्रिया नही बल्कि स्वाभाविक विकास की कला को दर्शाता है।

दरवाज़ा,पीठ, खिड़की,पशु-पक्षी,पेड़ आदि रूपक में प्रचुर मात्रा में इस्तेमाल करने के साथ साथ लेखिका ने रिबॉक का जिक्र करते हुए पाठक को विस्मित करता है।"यह कौन सी उल्टी गंगा रिबॉक बहता है ? ऐसा भी लग सकता था कि एक को अपराध बोध है कि मैंने नहीं निभाया और इसलिए अब पलट के आती हैं और दूसरी को आश्वस्ति है कि मैंने खूब निभाया और इसलिए आब निकल जाती है । पर दरवाजे को या किसी और को ऐसा लगा, इसके कोई चिह्न पहचान में नहीं आए हैं। अभी तक।"13

समय की गति को पकड़ना आसान नही है।रिबॉक वक्त का प्रतिबिंब है।रिबॉक को अगर औरत के संदर्भ में समझे तो समय को पकड़ने की भाग दौड़ में वह रिबॉक शूज़ पहनते

हैं।"जैसे रिबॉक पहचाने लगते हैं मगर कभी रेस में तो कभी साड़ी के नीचे उन्हें देखकर बुद्धि का बल्ब फ्यूज़ हो जाता है।"14 कालान्तर में परिवर्तित होती जा रही स्त्री की मनोदशा को रिबॉक के माध्यम से उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत किया है।

सरहद इस उपन्यास के मूल में है। वह बेजोड़ तब बन जाती है जब व्यक्ति परिवार और समाज द्वारा बनी-बनायी सत्ता संरचना को तोड़ती है।साधारण मध्यम वर्गीय परिवार के किरदार के माध्यम से आधुनिकता और देशज आधुनिकता का अतिक्रमण करते हुए यथा कथित आधुनिक समाज के सामंती मानसिकता को उपन्यास ज़ाहिर करता है।

उपन्यास जितना शास्त्रीय है उतना ही रुमानी भी।काल और भौगोलिक सीमाओं को लांघ कर प्रकृति अपने अनूठे रूप में उभरती है।पेड़,झील,जीव जंतु आदि अम्मा के साझेदार बन कर उपस्थित है।बेजान वस्तुओं में जान देने का सारा परिश्रम इसमें प्रतिफलित है।स्वच्छन्दवादियों की तरह प्रकृति के एकाधिक रूपों के उन्मुक्त सौंदर्य के प्रति उनका अनवेक्षण सुगम दृष्टिगत है।

उधर काँव काँव काँव शोर मचा कर जिन कौव्वों ने अम्मू को तंग करती थी, उनमें संवेदना भरा कर गीतांजलि जी ने नई जान दिलाई।इधर कौवे की फड़फड़ाहट को लब्जों में पिरोया है।"विज्ञान के नाम पर प्रदूषण फैलाने वाली तरक्की।"15 "पैन्ट की ज़िप खोली और प्रदूषण में इज़ाफ़ा किया"16 "कौन यहाँ आया है गन्दा करने?"17 स्वछ भारत अभियान 18 आदि कहकर कौव्वों की मुँह से वर्तमान समय की असलियत निकलता है,,कभी कभार भविष्यवाणी भी।कौवों में मनुष्य समाज के हर तब्के के प्राधिनिधि शामिल है।चाहे वह युवा हो,बुजुर्ग हो,राजनीतिज्ञ हो या फेमिनिस्ट।

स्त्री और पुरुष का तत्व हर व्यक्ति में मौजूद है।अंतरूनी अनवेक्षण में शायद कुछ लोग लिंग की डांवाडोल में उलझ जाता है।अस्मिता को खोने पाने की जद्दोजहद में अवतरित अन्य किरदारों के साथ बेहद प्रभावशाली है रोज़ी।रोज़ी या रजा?वह जीवन संग्राम में संघर्षरत होकर अपनी मौजूदगी को असरदार ढंग से रेखांकित करती है।" हम सब एक है से ,बस कपड़ा ,चाल ,ढब,तनना या झुकना,पंगे पाँव चलना या सतर सिपाहिया गश्त,हाथ नचाना कि ऊँचा खम्बा उठान ,इसी में अलग नजर आते हैं?"19 तथाकथित सभ्य समाज ने अन्य हाशियकृतो के समान ट्रांसजेंडर को भी सामाजिक तौर पर बहिष्कृत कर दिया है।

सेक्स को निर्धारित करने की समस्या स्त्री और पुरुष से ज़्यादा 'अन्य 'को होता है।'अन्य जेंडर' की" ललित कलाओं लोक संस्कृति में एक अलग जिस्म है ।सीमाओं को पार करता ।सीमा जहां पर होती वहां संगम होता है। आदमी औरत एक मेक ।बिरजू महाराज और कत्थक ,जयशंकर और सुंदरी। शंकर और पार्वती। इनके मिलन जादू रचते है, अन्य बनकर ,अन्य को अपना बनाकर ।गांधी औरताना पालथी में बैठकर सीमा लाँघते है।लछु चाचा रसोई लाँघ के सब दिल जीतते हैं ।"20

इस कृति किसी वाद या विचारधारा से ऊपर उड़कर अपनी निजी विचारो से आगे बढ़ते हुए कृत्रिमता और रूढ़ियों से विद्रोह कर वैयक्तिकता, आत्म सृजन और कल्पना शीलता की मुक्त आकाश में विराजते है।

हद सरहद तक पहुंचते-पहुंचते अतीत के उस भयावह सच्चाई खुलता है ,जहां पाठक वर्ग एक बार फिर उन शख्सियतों से रूबरू होते हैं जिन्होंने विभाजन की त्रासदी को लेकर हमें भयभीत कराया था।श्रृंखला की वे कड़ियाँ एक के बाद एक होकर पाठक के स्मृति कुंज को

झकझोरती है। यहां आकर कुछ तथ्यों का भी पोल खोलता है। अस्सी के आस पास की बूढ़ी औरत अपने हकीकत के साथ खरे उतरती है। चंदा से चंद्रप्रभा तक। 'यशोदा शर्मा' को 'वर्षा वशिष्ठ' बनाने की वहीं नियति ने चंदा को चंद्रप्रभा बनाई है।इसमें किसी को शक नहीं है कि रेत समाधि वर्तमान समय की रचना है। लेकिन इसके शुरुआती दौर तभी जाकर पता चलता है जब पाठक विभाजन रेखाओं से मुठभेड़ करते हैं। उनके लिए सरहद के कई मायने होते है।"क्या होता है बॉर्डर? वजूद का घेरा होता है ,किसी शख्सियत की टेक होता है ।कितनी ही बड़ी ,कितनी ही छोटी। रुमाल की किनारी ,मेजपोश का बॉर्डर ,मेरी दोहर को समेटती कढ़ाई ।आसमान की सरहद ।इस बगिया की क्यारी। खेतों की मेड़ ।इस छत की मंडेर। तस्वीर का फ्रेम। सरहद तो हर चीज की है ।"21

चंदा ने देह से व्यक्ति ,व्यक्ति से परिवार ,परिवार से समाज ,समाज से भौगोलिक सीमाओं को लांघ कर' खुद को स्थापित करने का सफर तय कर लिया था ।इसका प्रतीक रहा शुरुआत के पीठ। इस लंबी सफर में मां के अधूरी इच्छापूर्ति कर बेटी भी साथ दी।"बॉर्डर मिलन की रेखा है" ।22 हल्की फुल्की सी एक प्रेम कथा, उस फ्लैशबैक में डूबकर पाठक के मन लहना सिंह और सूबेरदारनी की याद में तड़पते रहेगे।

लेखिका की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रश्नचिन्ह लगाकर 'रेत समाधि' में अश्लीलता पर काफ़ी बहस चलाई थी।मैनेजर पांडे ने ठीक ही लिखा है "साहित्य में अश्लीलता का सवाल सामाजिक स्तर पर सदाचार की अवधारणा से जुड़ा है।लेकिन इस मे कठिनाई यह है कि स्त्री - पुरुष के लिए सदाचार के नियम और उसकी सीमाएँ अलग अलग

है।"23 स्त्री समाज मे या साहित्य में क्या करना या कहना है इसे पुरुष वर्चस्ववादी समाज ने तय कर के रखा है।

नई पीठी से लेखिका यह आह्वान करना चाहती है कि 'श्रृंखला की कड़ियाँ' बनकर अतीत वर्तमान और भविष्य की लकीरो को पार करने की लंबी दौड़ में रिबॉक पहन कर भाग लेना है।उस दौड़ में फिर भी रेत उड़ेगी।हम में से नई कहानियाँ जन्म लेगी।हद सरहद को लाँघ कर ,अनूठी कहानियाँ।

संदर्भ सूची

1 गीतांजलि श्री, रेत समाधि,पृ.सं. 85

2 वही,पृ.85

3 वही,पृ.85

4 रेत समाधि कवर पेज

5 ऐ लड़की ,कृष्णा सोबती, पृ.50

6 रेत समाधि ,गीतांजलि श्री, पृ.24

7 ऐ लड़की, कृष्णा सोबती,पृ.9

8 रेत समाधि, गीतांजलि श्री,पृ.125

9 वही,पृ.125

10 वही,पृ.126

11 सौन्दर्य विमर्श और सार,बेनेदेत्तो क्रोचे, पृ.19

12 वही,पृ.15

13 वही,पृ.35

14 वही,पृ.181

15 वही,पृ.182

16 वही,पृ.182

17 वही,पृ.183

18 वही,पृ.225

19 वही,पृ.207

20 वही,पृ.331

21 वही,पृ.331

22 वही,पृ.331

23 आलोचना की सामाजिकता, मैनेजर पाण्डेय, पृ.140

हिमा एम.एन.

शोध छात्रा

केरल विश्वविद्यालय

कार्यवट्टम

तिरुवनंतपुरम

****

10

सांप्रदायिकता के बदलते चेहरे: 'गूँगी रुलाई का कोरस' उपन्यास के परिप्रेक्ष में

प्रधान लेखक : अंजिता जे. एम

अनुरूपी लेखक : विष्णु मोहन

शोध निदेशक: डॉ. एस. आर. जयश्री

"अब कहीं कोई इन्साँ को इन्सों की नजर से नहीं देखता। वह हिन्दू है या मुसलमाँ, कैथोलिक या प्रोटेस्टेंट या यहूदी या शिया अहमदिया कुर्द- सूफ़ी, मैक्सिकन ब्लैक-ब्राउन... न जाने क्या-क्या...। एक कभी न खत्म होनेवाली लिस्ट, जो यह बतलाती थी कि सामनेवाला हमारा नहीं है। हमारे 'हम' में शामिल नहीं है। वह कोई और है, दूसरा है, 'अन्य' है। एक अजनबी है, जिससे अलग रहना है। जिसमें कमियाँ ढूँढनी हैं। अभी नहीं तो इतिहास के पन्नों में ढूंढ-ढूँढ़कर उससे चिढ़ना है— उससे घृणा करनी है। क़िस्से-कहानियों के राक्षस की शक्ल में उसे ढालना है। मौका मिलते ही इस राक्षस को, पैदाइशी दुश्मन को ख़त्म कर देना है।"1

वर्तमान हिंदी के वरिष्ठ लेखक रणेन्द्र द्वारा लिखित 'गूंगी रुलाई का कोरस' उपन्यास का प्रस्तुत संदर्भ सांप्रदायिक चक्रव्यूह में फंसे भारत का सच्चा चित्र प्रस्तुत करता है । सांप्रदायिकता आज एक गंभीर सामाजिक और राजनीतिक समस्या बन गई है। सांप्रदायिकता की मनोवृति राष्ट्रीय एकीकरण में अवरोधक भूमिका निभाती है । भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता मूलतः ब्रिटिश शासन द्वारा अपनाई गई 'फूट डालो और शासन

करो' की नीति का परिणाम है ।

"In India, the basis of communa l po litics, that is, the notion of re ligion serving as the basis for the new po litica l process based on popu lar participation, was something new, though re ligious distinction and re ligion as one princip le for socia l grouping had previous ly existed. But medieva l po litics were not communa l, though re ligious suppression and oppression occurred during the medieva l as a lso the ancient period. Communa lism was a modern phenomenon that arose as a resu lt of British co lonia l impact and the response of different Indian socia l c lasses, strata and groups."2

वर्तमान भारत में सांप्रदायिक चेतना अथवा विचारधारा का जन्म औपनिवेशिक प्रभाव के अंतर्गत भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था तथा राजनीति के रूपांतरण के फलस्वरुप हुआ। खासतौर से देश के कुछ भागों में तथा जनता के कुछ वर्गों में धार्मिक चेतना ने सांप्रदायिक चेतना का रूप ले लिया। ऐसा इसलिए हुआ कि इससे समाज के प्रत्येक वर्गों और प्रत्येक सामाजिक और राजनीतिक शक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी।दो हज़ार दस के बाद देश की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में तेज़ी से बदलाव आया है, वे पुरानी मूल्यों व संरचनाओं को तोड़ना चाहते हैं । भारत की महान मतनिरपेक्ष भावनाओं पर घाव पहुंचाना चाहता है । इन सब के पीछे एक तेज षड्यंत्र रचा हुआ है, जाने-अनजाने में भारत के आम जनता भी उस षड्यंत्र का हिस्सा बनकर भारत की आत्मा पर चोट पहुंचा रही है। इसका मूल कारण सांप्रदायिक सोच ही है ।

"आज साम्प्रदायिक भावनाओं को भड़काने, उभाड़ने पर कहीं कोई रोक-टोक नहीं है। आज उन साम्प्रदायिक शक्तियों का आदर किया जाता है जो महात्मा गांधी की हत्या की जिम्मेदार थीं।"3

सांप्रदायिकता एक ऐसी विचारधारा है जिसमें राजनीतिक हितों की पूर्ति सांप्रदायिकता के आधार पर होती है और परिणाम के रूप में सांप्रदायिक हिंसा की घटनाएँ होती हैं, इससे अन्य समूहों से अलग एक धार्मिक पहचान निर्माण पर ज़ोर देता है । व्यापक अर्थों में, यह एक संकीर्ण मानसिकता है जो अपने समूह को श्रेष्ठ मानती है और अपने हितों को बढ़ावा देने की कोशिश करती है ।

रणेद्र का उपन्यास 'गूंगी रुलाई का कोरस' केवल उस्ताद महताबुद्दीन खान की चार पीढ़ियों की कथा या भारत की समृद्ध संगीत परंपरा का चित्रण नहीं है, बल्कि वर्तमान राजनीति के खोखलेपन और सामाजिक जीवन की सच्चाइयों को प्रस्तुत करता है ।

गूंगी रुलाई का कोरस उपन्यास के बारे में इसकी भूमिका में रविभूषण इस प्रकार कहता है- " 'गूंगी रुलाई का कोरस' अपने समय और समाज की गहरी, बेचैन, मानवीय, नैतिक, रचनात्मक सृजनात्मक चिन्ताओं के तहत लिखा गया हमारे समय का एक जरूरी उपन्यास है जिसके सरोकार कहीं अधिक व्यापक हैं।" हिंदुस्तानी संगीत को आधार बनाकर लिखा गया इस उपन्यास में रचनाकार की राजनीतिक मीमांसा साफ झलकती मिलती हैं । एकता और मतनिरपेक्षता में सदियों से विकसित हुई भारतीय परंपरा, वर्तमान समय में उसे सिरे से तोड़ने की सुनियोजित कोशिशें हो रहे हैं । प्रस्तुत उपन्यास में इस तरह की घटनाएं और उसके परिणामों का पर्दाफाश करने का जी तोड़ प्रयास देख सकते हैं । राजनीति हमेशा

ऐसा रहा है कि जब भी वह व्यवस्था का मुकुट धारण करता है तब अधिकार लिप्सा और सत्ता के मोह में अंधे होकर इंसानियत को दूर कर देती है और अपना वृद्धि के लिए अमानवीय एवं हिंसा का रास्ता अपना लेते हैं । जब धर्म, जाति जैसे चीज़े वोट बैंक बन जाते तो दृश्य और भी बदल जाते हैं । धर्मांध एवं स्वार्थी नेता गण धर्म का अपना एक अर्थ लगाकर इंसान को इंसान से अलग रहने की और हिंसा करने की प्रेरणा देते हैं । ऐसे लोगों से मानव कल्याण की उम्मीद कैसे कर सकते हैं? इस प्रकार धर्म के नाम पर संघर्ष और हत्याएं होती रहती है ।

"तुम्हारे नानू और उनके साथी का क़त्ल कोई एकाएक घटी घटना नहीं है। इन्हीं सिलसिलों का एक छोटा-सा हिस्सा है। इन्साँ का ज्यादा पाक, ज्यादा मजहबी, ज्यादा सच्चा होने का झूठा ग़रूर कब उसे इनसान से दरिन्दा बना देता है, उसे पता भी नहीं चलता। नफ़रत के हल से नफ़रत की मिट्टी तैयार कर, नफ़रत का ही बीज बो, नफ़रत की फ़सल काटनेवाले सियासतदाँ-पंडित मुल्ला- पादरी, गुरु-पीर- मुर्शिद, स्वामी-बाबा-औलिया लोगों ने जन्नत-सी धरती को धधकता हुआ जहन्नुम बना रखा है।"4

उपन्यास की शुरुआत अम्मू यानी सुर-सरस्वती रागेश्वरी देवी की रुलाई से होती है और अंत भी । पूरे उपन्यास में यही अंतहीन रुलाई ही है । मौसिकी-मंजिल, यानी संगीत का घर, जो पूरे उपन्यास के केंद्र में है । यह घराना उस्ताद महताबुद्दीन खान और उनके चार पीढ़ियों का है, महताबुद्दीन से लेकर बाउल कमोल कबीर तक एक कहानी फैली-पसरी पड़ी है । उपन्यास मौसिकी मंजिल के धीरे-धीरे उजड़ने की करुण गाथा है । कमोल कबीर की लाश रेल की पटरियों के किनारे पड़ी है । 'नानू, अब्बू, फिर कमोल- बाबा, अब कौन?' अम्मू

की रुलाई कभी ख़त्म नहीं हो रही है । उन्हें पता नहीं चल रहा है कि मौसिकी मंजिल को आखिर किसकी 'नजर' लग गई है ।

''देखिए मोहतरमा ! हमारे यहाँ हर कोई हिन्दु या मुसलमाँ नहीं होता। हम जोगी हैं और हमारे ये समधी और अजीत मदन साहब बाउल। हम हिन्दू भी हैं और मुसलमाँ भी या दोनों नहीं य दोनों की ख़ासियतों को समेटनेवाले... न जाने क्या साफ़-साफ़ खाँचे में हमें बाँटा नहीं जा सकता। हाँ! आज कल नफ़रत की लाठी हमें भी बाँटने की कोशिश कर रही है ।"5

मौसिकीकारों की परंपरा बहुत ही लंबी है । उस परंपरा से जुडी हर व्यक्ति अपनी प्रतिभा से हिंदुस्तानी संगीत के क्षेत्र में खुद का जगह भी बनायी थी । उनके लिए धर्म और आस्था सब संगीत ही है । वे अपने संगीत से ईश्वर और अल्लाह की पूजा करते हैं । इन लोगों को निजामुद्दीन औलिया और मैहर की शारदा देवी से अपनी तकलीफों की गुहार लगाने में एक तरह का संतोष मिलता था । लेकिन हिन्दू या मुसलमान की जगह हिंदुस्तानी होना इतना आसान भी नहीं है । उन्हें बार-बार अपना विश्वास और देशप्रेम का सफाई देना पड़ता है । उपन्यास के कई जगहों पर इस तरह के सन्दर्भ मिलते हैं । उन्हें हिन्दू और इस्लाम दोनों धर्म अपना नहीं स्वीकार करते । हिन्दूवादियों ने उनके संगीत में हिन्दू देवताओं की स्तुति, बाउल-जोगियों के पहनावे आदि को नकली और उनके गलत इरादे समझते थे दूसरी तरफ इन सब कारणों से मुसलमान लोग भी उन्हें अपना नहीं मानते थे ।

नफरत और सांप्रदायिकता से भरे सत्ता ढांचे से हम अकेले नहीं लड़ सकते । जीवित रहना है तो इस सत्ता द्वारा निर्धारित शर्तों और परिस्थितियों को स्वीकार कर आत्म समर्पण करना होगा । नहीं तो उनके साथ भी वैसा ही होगा जैसा एम एम कलबुर्गी, गौरी

लंकेश, गोविंद पानसरे आदि के साथ हुआ था।

"दिक़्क़त है कि इस देश में आजादी की लड़ाई और आजादी मिलने के बाद उसके गढ़ने के जुनून में इस नजरिये को कुछ खास तवज्ञो नहीं मिली। विदेशी पौधा इस देश की मिट्टी पकड़ नहीं पा रहा था। किन्तु अब वक़्त बदल गया है। वह जहरीला पौधा छतनार गाछ में तब्दील हो गया है। ये तरक्कीपसन्द, गंगा जमुनी तहजीब को जीनेवाले एक्टिविस्टों, लेखकों -शायरों-अफ़सानानिगारों के क़त्ल में भी गुरेज नहीं कर रहे। ये लोग पुणे में खान साहब और उनके साथी की हत्या करने के पहले महाराष्ट्र और कर्नाटक में कई हत्याओं को अंजाम दे चुके थे।"6

वैश्वीकरण के इस दौर में भी साम्प्रदायिक चाल में फंसे भारतीय समाज को उपन्यास के इन संदर्भों में देख सकते हैं । खास बात यह है कि ये साम्प्रदायिक ताकतें भी आधुनिक सुविधाओं का लाभ उठा रही हैं। ये सुविधाऐं इन शक्तियों के कार्य को भी आसान बनाती हैं । मीडिया, सोशल मीडिया, ट्रॉल्स, आदि मिलकर आग में घी डालने की काम में लगे रहते हैं । वह देश में सांप्रदायिकता और एक दूसरे के खिलाफ घृणा फैला रहे हैं , आम लोग इनके चाल में फस जाते और हथियार उठाकर न्याय प्रणाली का मजाक उड़ाते हैं । "2014 के आसपास से ज्यादातर न्यूज़ चैनलों पर जो 'नेशनल सिलेबस' वाला प्रोजेक्ट चल रहा है, उसके लॉन्च होने के समय से ही स्पष्ट था कि आपको दर्शक नहीं होने देना है । आपके भीतर के दर्शक को मारना है, तभी लोकतंत्र को बिना मारे उसे हथियाने की प्रक्रिया पूरी हो पाएगी । यह और बात है कि इस प्रक्रिया में सड़कों पर खून बह गया । भीड़ ने सुबोध कुमार सिंह से लेकर मोहम्मद अख़लाक़ तक को मार दिया । मीडिया और आईटी सेल के

नेशनल सिलेबस का असर हुआ तो है । मैं इस प्रोजेक्ट को कामयाब मानता हूँ । हालांकि यह हमारे लोकतंत्र की हार है, फिर भी राष्ट्रवादी मीडिया पाठ्यक्रम का यह प्रोजेक्ट सफल रहा है ।" 7

आज कल रोज़-रोज़ भारत की गलियों में निर्दोष लोग उनके खान-पान, वेश-भूषा, धर्म, जाती, क्षेत्र आदि के नाम पर मॉब लिंचिंग का शिकार बनते हैं। संविधान द्वारा इस देश के नागरिकों को प्रदत्त सुविधाओं को अधिकार और बल के सहारे तोडना चाहते हैं । सत्ता में खड़े धार्मिक शक्तियाँ अन्य छोटे-छोटे धर्म और जाती के लोगों पर अपना हुक्म चलाना चाहते हैं। उनके खिलाफ हो रहे अन्यायों पर अपनी आँख मूँद लेती है । सत्ता के अनुयायी लोग सडकों पर अल्प संख्यक लोगों से ज़बरदस्ती जय श्रीराम बुलवा रहे हैं , गऊ माता के नाम पर लोगों को मरवा रहे हैं, अन्याय के खिलाफ अपनी आवाज़ उठाने वाले और कलम चलाने वाले साहित्यकारों, कलाकारों व पत्रकारों का क़त्ल कर रहे हैं । छोटे छोटे बातों को घुमा फिराकर और उन पर आग लगाकर सोशल मीडिया भी इन लोगों को बढ़ावा दे रहे हैं । उपन्यास में मौसिकीकारों के साथ इस तरह के घटनाएँ बार - बार होते नज़र आते हैं । उपन्यास के सुआरयन सेना, भगवान कच्छप महाराज, नानू और डॉ.मांजरेकर की मृत्यु आदि वर्तमान भारत में हो रहे घटनाओं की ओर संकेत कर रहे हैं ।

"अब और नहीं... बस और नहीं... भगवान् कच्छप महाराज पर अत्याचार और नहीं। जगह-जगह मछली-वैन, ट्रक, जीप, टोकरियों की जाँच में कच्छप रक्षक संघ के जाग्रत युवा संलग्न हो गए। दुर्घटना से सावधानी भली की तर्ज पर जाँच में कच्छप महाराज मिलें या न मिलें दुष्टों को दंडित किया जाना अपरिहार्य कर्तव्यों में सम्मिलित था। प्रथम चरण में दंड

की मात्रा नियंत्रित रखी गई। यह ख़ास ध्यान रखा गया कि ऐसे हर ऐक्शन की वीडियोग्राफी की जाए और उसे सोशल मीडिया पर वायरल किया जाए।"8

उपन्यास के इस सन्दर्भ वर्तमान भारतीय समाज में गौरक्षा के नाम पर अल्पसंख्यक समाज के साथ हो रहे अत्याचारों पर व्यंग्य कर रहे हैं । आज विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा अपने राजनीतिक लाभों की पूर्ति के लिये सांप्रदायिकता का सहारा लेते हैं । इतिहासकार विपिनचन्द्र का मानना है कि- "धर्म और धार्मिक मतभेद साम्प्रदायिकता के आधार नहीं हैं और वे इसके लिए जिम्मेदार भी नहीं हैं। भारत जैसे बहुधर्मी देश में जहां धार्मिक मतभेद होना स्वाभाविक है, इन मतभेदों या सांप्रदायिकता को राजनीतिक संगठन और राजनीतिक कदमों का कारण मानना न निहित है और न अनिवार्य । यह भी गलत है कि सांप्रदायिकों का उद्देश्य अपने धर्म की रक्षा और उसका विकास करना होता है। वे न धर्म से प्रेरित होते हैं और न धर्म उनकी सांप्रदायिक राजनीति का साध्य होता है। दूसरे शब्दों में धर्म सांप्रदायिकता का अंतर्निहित कारण नहीं है।"9 लेकिन सांप्रदायिकतावादी आपस में दुश्मनी पैदा करने के लिए धर्म का सहारा लेते हैं क्योंकि धर्म लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है और इस तरह आबादी के एक बड़े हिस्से में सांप्रदायिकता फैला सकता है। वर्तमान में धर्म और राजनीति एक दूसरे से अपना नाता मज़बूत किया है जिसके कारण धर्म अपना मूल मर्म खो रहे हैं।

भारतीय संस्कृति में खासकर हिन्दू समाज गऊ माता को बहुत सम्मान करते हैं, उसे कामधेनु कहते हैं , जो सभी कामनाओं को पूरा करते हैं । वर्तमान में रची राजनैतिक षडयंत्र में उसे राजनैतिक प्रतीक मानकर वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल करते हैं । यह भारतीय

जनता को एक दूसरे से अलग कर देते हैं और उनमें धार्मिक भेदभाव और घृणा पैदा करते हैं । देश की आंतरिक सुरक्षा के लिये सांप्रदायिकता एक चुनौती बन जाती है क्योंकि सांप्रदायिक हिंसा को भड़काने वाले एवं उससे पीड़ित होने वाले दोनों ही पक्षों में देश के ही नागरिक शामिल होते हैं। सरकार को अपने सभी नागरिकों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए और सभी के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा उसकी ज़िम्मेदारी है । भारत में अधिकार प्राप्त करने के बाद सब राजनैतिक दलों का रंग बदल जाती है । सब अपनी मनमानी करते हैं । जो इसके खिलाफ आवाज़ उठाता है, विरोध करते हैं उसे देशद्रोही का मुद्रा भी लगाया जाता है। अब्बू, कमोल, मयंक आदि पात्रों के साथ भी ऐसे होते उपन्यास में मिलते हैं । धर्म और सत्ता के ठेकेदारों बातों को टेढ़े करके मीडिया ट्रॉल्स के सहारे किस प्रकार लोगों को उनके खिलाफ भड़काते यहाँ देख सकते हैं I

निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि वर्तमान भारत की सांप्रदायिक और राजनैतिक चेहरे का असली चित्र देने में रणेन्द्र कृत 'गूँगी रुलाई का कोरस' उपन्यास सक्षम है । दिमाग और कलम न चलाने के लिए साहित्य कला क्षेत्र के लोगों का, जो सच्चाई को मुँह देखे बिना बोलने वाले हैं, उनके क़त्ल होने वाली इस समय में रणेन्द्र का यह उपन्यास साहित्य गुणों के साथ उनके साहसिकता के लिए याद किए जांएंगे ।

सन्दर्भ

1. गूँगी रुलाई का कोरस - रणेन्द्र, पृ. 21, राजकमल पेपरबैक्स, 8 जनवरी 2021

2. Communa lism in modern india- Bipan Chandra, p.8, vani Educationa l books, 1954

3. हंस के विमर्श 1- राजेंद्र यादव, पृ.14, वाणी प्रकाशन, 2012

4. गूँगी रुलाई का कोरस - रणेन्द्र, पृ. 93, राजकमल पेपरबैक्स, 8 जनवरी 2021

5. वही, पृ.146

6. वही, पृ.113

7.बोलना ही है: लोकतंत्र, संस्कृति और राष्ट्र के बारे में- रवीश कुमार, पृ. 177, राजकमल पेपरबैक्स, 2019

8.गूँगी रुलाई का कोरस - रणेन्द्र, पृ. 119, राजकमल पेपरबैक्स, 8 जनवरी 2021

9. सांप्रदायिकता: एक अध्ययन- बिपिन चन्द्र, पृ.39, अनामिका पब्लिशर्स ऐंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2004

शोधार्थी

हिंदी विभाग

केरल विश्वविद्यालय

anjithajagan007@gmai l.com

vishnuu liyanadu1729@gmai l.com

****

11

वैशिविकता के परिप्रेक्ष्य में 'शब्द पखेरू'

डॉ इन्दू के वी

वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण को एक नए आर्थिक युग की परिभाषा में गणनीय स्थान प्राप्त हैं। अल्प विकसित और विकासशील राष्ट्रों के आर्थिक दोहन के लिए बनाया गया षड्यंत्र है विश्वग्राम की संकल्पना जिसमें कमज़ोर देश फंसते जा रहे हैं। वैश्वीकरण की नयी अवधारणा ने मनुष्य को केवल उपभोक्ता बना दिया हैं। यह मानव को विश्व मानव का पद देने का वादा कर उनसे उनकी अपनी भाषा एवं संस्कृति को छीन लेता है। भारतीय संस्कृति में 'लोका समस्ता सुखिनो भवन्तु' का भाव निहित है लेकिन यह भूमंडलीकृत संस्कृति के विश्वमानव की अवधारणा से भिन्न हैं।

आज इन्टरनेट ने पूरे विश्व को एक साथ खड़ा कर दिया हैं या अपने कब्जे में कर लिया है। इन्टरनेट को सूचनाओं और जानकारियों का विशाल संग्रहालय कहा जा सकता है। समकालीन सन्दर्भ में घर घर में और नगरों में ही नहीं गाँवों में भी यह अपनी जगह बना चुकी है और सब कुछ ऑनलाइन के माध्यम से हो रहा है। सोशियल मीडिया का प्रभाव भी बहुत है। सोशिअल मीडिया का सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव है। कार्यालयों, शिक्षा केन्द्रों और अनेक स्थानों में आजकल लोग सोशल मीडिया का इस्तेमाल करते हैं। लेकिन इसका सबसे बड़ा उपयोग मनोरंजन के लिए करता है। 'आज का मीडिया' नामक पुस्तक में शम्भूनाथ ने बताया है कि ''आज की युवा माताएं लोरी को ढकियानूसी मानती है उनकी

सलोनी संतानों की नींद लोरी से टूट जाती है। उनके बच्चे रैप सुनकर सोते हैं। युवाओं को आज शास्त्रीय संगीत से वितृष्णा है। मईकिल जैक्सन की चीख और ऊधम उन्हें पसंद है। वे दिन भर न जाने कौन कौन से टी वी चैनलों और इन्टरनेट पर नंगी तस्वीरें, नंगे ब्लू फ़िल्में देखते है।''[1] इसप्रकार आजकल लोग विशेषकर युवा पीढी सोशल मीडिया के गुलाम बन रहे है। जिससे मनुष्य ओर आत्मकेंद्रित होते जा रहे है। सामाजिक दृष्टि से मनुष्य के लिए बहुत बड़ा खतरा है यह। बिना मतलब के किसी भी कार्य को आदत बना देना विनाशकारी प्रवृत्ति हैं। पर यही प्रवृत्ति आजकल हो रहा है।

महानगरीय सुख-सुविधा में पले –बढे युवा वर्ग केवल अपने बारे में सोचते हैं, अपने ही भविष्य का स्वार्थ मोह रखता है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों में दिन रात कठिन मेहनत करना और फिर ऐशो आराम की ज़िंदगी जीना यही अधिकांश युवा पीढी का जीवन धर्म बन गया है। वे घर में हो या समाज में किसी भी प्रतिकूल वातावरण से बच निकलना चाहते है। वे अपने घरवालों, सगे संबधियों और दोस्तों के प्रति भी संवेदनहीन होते हैं। नासिरा शर्मा के 'शब्द पखेरू' उपन्यास में भी नयी पीढी के दो बहिनों का चित्रण हैं जो भूमंडलीकरण के चंगुल में फंसे है।

'शब्द पखेरू' में नासिराजी ने मनीषा और शैलजा नामक दो लड़कियों का मिसाल देकर नयी पीढी की सोच को, उनपर पड़ी मीडिया के प्रभाव को दिखाना चाहती है। शैलजा अपनी उच्च शिक्षा अमेरिका की किसी विश्व विद्यालय में करना चाहती है। उनकी सोच इसप्रकार है कि अमेरिका के किसी संपन्न युवा से प्रेम करके फिर शादी कर अपने भविष्य को उज्ज्वल बनायें। इसलिए वह फेसबुक पर आनेवाली हर एक फ्रेंड रिकुएस्ट को कनफर्म कर

देती हैं।

शैलजा को उसकी बड़ी बहिन मनीषा इन्टरनेट बेबी कहकर पुकारती हैं। वह ऐसी ही है। हमेशा वह सोशल मीडिया के चारों ओर घूमती रहती है। उनके किताब सामने ही खुली रखती हैं और पढ़ाई के बहाने लैपटॉप में ही फंसी रहती है, किसी से चैट करती रहती है। आजकल के छात्रों के प्रतीक के रूप में शैलजा हमारे सामने प्रस्तुत है। आजकल के बच्चे ऐसे ही है कि पढ़ाई का बहाना करके सोशल मीडिया में डूब जाते हैं। छोटे बच्चे ज्यादात्तर इन्टरनेट गेम्स के पीछे पड़े रहते हैं। कुछ गड़बड़ होने पर ही माता पिता को इसकी खबर मिलती है।

शैलजा अपने गूगल को 'ग्रांट पा' का नाम रखा है। इन्टरनेट के माध्यम से वह दुनिया के दूर दूर के कोने से भी लोगों का परिचय प्राप्त कर लेती है। इसप्रकार एक बार शैलजा का परिचय यू के फ्रेंक जॉन के साथ होता है। उनकी पत्नी तीन साल पहले एक दुर्घटना में मर गयी थी। इसलिए वह दूसरी शादी करना चाहती है। फ्रेंक जॉन इकसठ साल का है। उनकी बेटी स्कूल में पढ़ रही है। लेकिन शैलजा किसी न प्रकार उनसे स्वयं मुक्त हुआ। कहा कि उसके दो जवान बेटे हैं और उनसे बारह साल छोटी है। यह भी कहा कि ''मैं इंडियन हूँ, सात समुद्र पारवाले से शादी नहीं कर सकती। मैं तुम्हारी भावना को समझती हूँ।''[2]

शैलजा की बड़ी बहिन हमेशा उसे याद दिलाती है कि आधुनिक नेटवर्क का उपयोग ही करना चाहिए मिसयूज़ नहीं। अनजाने लोगों से मेलमिलाप बढ़ाना उचित नहीं। शैलजा से वह कहती हैं कि इन्टरनेट पर जो उससे चाटिंग कर रहे हैं वह सही व्यक्ति है कि नहीं। जो तस्वीर फेसबुक वगैरह में लगाये जाते हैं उस तस्वीर के पीछे कौन है और वह क्या चाहता है

वही जानता है। आजकल ऐसे अनेक खबरें भी बखूब देखने को मिलते हैं। कितनी लड़कियां और लड़के धोखा खाकर आत्महत्या कर डालते है। यू के फ्रैंक जॉन के जाल से उनके द्वारा बनाये गए साइबर क्राइम से शैलजा बाल बाल बच गयी। जॉन अचानक एक दिन मुबई एयरपोर्ट आकर शैलजा को फ़ोन किया कि उसे कस्टम्स वाले ने रोक रखा है। तब ही शैलजा समझ गयी कि वह साइबर क्राइम में फंस चुकी है। कुछ दिनों के लिए वह न लैपटॉप खोला और न फ़ोन उठाया। वह डर गयी थी।

शैलजा उत्तराधुनिक लड़कियों का वास्तविक प्रतीक है। वे अनुभव से पाठ नहीं पढ़ते। बार बार विपत्तियों में फंस जाते है। इन्टरनेट के इंद्रजाल में फंसकर वे अपने भविष्य के बारे में भी सोचते नहीं। शैलजा आगे भी अपना चाटिंग जारी रखती है। वह अमेरिका के एक युवक क्रिस्ट एलेन जो अब पाकिस्तान में सिपाही हैं उनसे छह माह से चाटिंग करती है। वह पोलिटिक्स में एम् ए पास भी हैं। वह शैलजा को शब्द –पखेरू के द्वारा अपने वश में कर लिया था। अनेक सुन्दर सपने दिखाकर शैलजा को अपने प्रेम पाश में बाँध दिया था। क्रिस्ट एलेन के बल पर वह आगे की पढ़ाई किसी अमेरिकन विश्वविद्यालय में करना चाहती थी। यह जानते ही क्रिस्ट उसका फीस जमा करने के लिए तैयार हो जाता है। लेकिन सही वक्त पर शैलजा को खोश आया और इस बात को टाल दिया।

शब्द पखेरू उपन्यास की कहानी दिल्ली में घटित है। दिल्ली एक महानगर हैं। सबसे अधिक अपराध, धोखेबाज़ी, सामाजिक विसंगतियां, आर्थिक घोटाले और सांप्रदायिक दंगे महानगर में घटित होता है। महानगर में लोगों की भीड़ हैं फिर भी व्यक्ति अकलेपन की समस्या से सबसे अधिक पीढित है। महानगर के लोगों में सबसे अधिक मध्यवर्ग के हैं जो

हमेशा उच्च वर्ग की और ताकते रहते हैं। मध्यवर्ग के लोगों में दिखावा अधिक है। उनकी ख्वाहिशें हमेशा ऊपर उठने के लिए तैयार होकर रहते हैं। इसलिए उत्तराधुनिकता के जाल में महानगरों के मध्य वर्गीय लोग सबसे पहले फंस जाते हैं।

शब्द पखेरू में ऐसी अनेक बातों का चित्रण किया है जो वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण की समस्या के रूप में आज समाज के सम्मुख उपस्थित है। महानगरों में काम करनेवाले अधिकांश लोग ऐसे हैं जो परिवार के लिए जीवन भर मेहनत करते हैं, अपने उत्तरदायित्वों को निभाते हैं लेकिन जीवन को जीना भूल जाते हैं। एक ही ताल में एक ही तान में आगे बढ़नेवाली ज़िंदगी में होनेवाले एक छोटे करवट भी उनके पारिवारिक जीवन को कष्टदायक बना देता है। इस उपन्यास के केन्द्रपात्र सूर्यकांत की पत्नी एकाएक बीमार हो गयी, तब सारा परिवार निराशा में डूब गया। अपनी निराशा को दूर करने के कठिन परिश्रम में सूर्यकांत यह भूल गया कि पारिवारिक जीवन में उत्तरदायित्व का ही नहीं प्रेम की भी अहम् भूमिका होती है। इसी प्रेम की कमी से सूर्यकांत वर्मा की बीमार पत्नी साधना मौत के अँधेरे में गुम होना चाहती है। उनकी बेटियाँ मनीषा और शैलजा घर के घुटन भरे वातावरण से बचकर रहना चाहती हैं। शैलजा इन्टरनेट बेबी बन जाती है। वह अपने अकेलेपन से बचने के लिए तथा अमेरिका जैसे राष्ट्रों के बाहरी चमक धमक देखकर वहां जाने के लिए उत्सुक रहती है। इसकेलिए वहां के लोगों से इन्टरनेट के माध्यम से दोस्ती करते हैं। अंत में धोखा खाती है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि शब्द पखेरू उपन्यास में महानगर के एक परिवार के माध्यम से भूमंडलीकरण की वर्तमान परिस्थिति में होनेवाली समस्याओं का यथार्थपरक चित्रण मिलता है। शैलजा के ज़रिए साइबर क्राइम जैसे वर्तमान युवा पीढी की ज्वलंत

समस्या को पाठक के सम्मुख लाया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आज का मीडिया —शम्भूनाथ , पृ सं -१३४

शब्द पखेरू —नासिरा शर्मा , पृ. सं -७८

डॉ इंदु के वी

सहायक आचार्या , हिन्दी विभाग

दूरशिक्षा संस्थान, केरल

विश्वविद्यालय

तिरुवनंतपुरम, केरला, भारत

Mob. No: +919497457004

E-mail: in-dukvku@gmail.com

****

12

वैश्वीकरण के दौर में 'छिन्नमूल'

डॉ. जयश्री.एस.टी

आज भूमण्डलीकरण की परिकल्पना के कारण विदेश का अर्थ बदलकर प्रवास और विदेशी का अर्थ बदलकर प्रवासी हो गया है अर्थात् वह भारतवंशी जो विदेशों में किसी प्रयोजन हेतु स्वेच्छा से या फिर बलपूर्वक जाकर बस गये, 'प्रवासी कहलाए। इन प्रवासियों में प्रमुख रूप से तीन वर्ग के लोग हैं। एक वर्ग जो अंग्रेजों द्वारा उनके नए उपनिवेशों में मजदूरी करवाने के लिए गुलामों की तरह बलपूर्वक ले जाए गए जिसमें मॉरीशस, त्रिनिदाद, दक्षिणी अफ्रीका, गयाना, सूरीनाम, फिजी आदि देशों में जाकर बस गये और गिरमिटिया मजदूर के रूप में विख्यात हो गये। ये भारतवंशी हिन्दी व हिन्दुस्तानी जीवन मूल्यों को बचाने के लिए समस्त अनुष्ठान क्रिया-कर्म व दैनिक गतिविधियाँ हिन्दी भाषा में करने लगे। चूँकि इस वर्ग के लोग अधिकांशतः अशिक्षित थे तथा उपनिवेशों के अधीनस्थ मजदूरी करके जीवन यापन करते थे। अतः इनको देश वापस लौटने न दिया गया। दूसरे वर्ग में 80 के दशक में खाड़ी देशों में गए अशिक्षित अर्द्धशिक्षित, कुशल अर्द्धकुशल मजदूर आते हैं जिन्होंने भारतीय संस्कृति, सभ्यता व अपने संस्कारों को हिंदी भाषा के माध्यम से जीवित रखा। तीसरा वर्ग शिक्षित व सभ्य वर्ग था जो किसी प्रयोजन हेतु विदेशों में जाकर बस गया किन्तु भारत से मेलजोल बनाए रहे। इस वर्ग में अमेरिका, कनाडा, यू.के., इटली, रूस, नार्वे, स्वीडन, नीदरलैण्ड, फ्रांस, डेनमार्क आदि जगहों के भारतवंशी आते हैं जो इतर देशों में हो रहे

भारतवंशियों पर सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, वैमनस्य, संघर्ष, भेदभावयुक्त यातनाओं को होते देखते या भोगते हैं। इन्हीं चुनौतीपूर्ण यातनाओं के दम्भ के कारण प्रवासी लेखक प्रवास के दुःख-दर्द को संवेदनाओं के साथ अपने देश संस्कारों को जोड़कर उनमें व्याप्त पारिवेशिक विषमताओं कागज पर उतार देता है और यही संवेदनाएँ सहज ही सबसे जुड़ सबकी संवेदनाएँ बन जाती हैं।

भारत के साहित्य का वैश्वीकरण करने में प्रवासी साहित्यकारों की अहम भूमिका हैा भारत और भारतीयों के द्वारा जो रचा जा रहा है, आज वह वैशिवक मंचों पर भी अपनी-अपनी व्याख्या के साथ प्रस्तुत है। विदेशी भूमि पर रहकर हिंदी साहित्य का सृजन करनेवाले रचनाकारों को प्रवासी रचनाकार एवं उस साहित्य को प्रवासी साहित्य माना जाता है। प्रवासी साहित्य और साहित्यकार को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जाता है, प्रथम विदेशों में रहनेवाले भारतीय मूल के हिंदी रचनाकारों द्वारा लिखित साहित्य, द्वितीय विदेश में बसे प्रवासी भारतीयों द्वारा रचित साहित्य तथा तृतीय विदेशी परिवंश और प्रवासी जीवन को रेखांकित करता साहित्य ।

प्रवासी हिंदी रचनाकारों ने न केवल विदेशों में रहे भारतीय समाज के जीवन शैली को अभिव्यक्त किया है, बल्कि उनके जीवन संघर्षों और सुख- दुःख पर भी लेखनी चलाई है। ऐसे रचनाकारों में योगेश कुमार, मीनाक्षी पुरी, दिव्या माथुर, सुषम बेदी, उषा राजे सक्सेना, तेजेंद्र शर्मा, विजया माथुर जैसे लेखकों ने प्रवास और प्रवासी जीवन को केंद्र में रखकर हिंदी रचनाकारों का सृजन कर रहे हैं। इन रचनाओं में नॉस्टेल्जिया तो है ही साथ ही युगीन सत्य समाहित है। वहीं रिश्तों में अकेलेपन के साथ जीवन में शून्यता, प्रवासियों की

टूटती-बिखरती ज़िंदगी की तस्वीरों के साथ क्षणिक संबंधों के विच्छेदन से पैदा हुई मानसिक पीड़ा भी है। उषा राजे सक्सेना के अनुसार- "आज विदेशों में में रहनेवाले भारतीय मूल के रचनाकार प्रवासी जीवन' के विभिन्न पहलुओं पर लिख रहे हैं, ये रचनाकार हिंदी साहित्य को नए विषय वस्तु के साथ, नए मुहावरे, नई शब्दावली और शैली के साथ ईमानदारी के साथ पश्चिमी जगत के बोल्ड और यथार्थपरक परिवेश से भी जोड़ रहे हैं।''1

पुष्पिता अवस्थी का सूरीनाम के सृजनात्मक साहित्य में विशेष योगदान रहा है। आपने सूरीनाम के साहित्य का संपादन और अनुवाद भी किया है। आपके द्वारा सृजित एवं संपादिक पुस्तकें हैं - कथा सूरीनाम, कविता सूरीनाम, सूरीनाम का सृजनात्मक साहित्य (2012) भारतवंशी भाषा एवं संस्कृति (2015)। विदेश में हिंदी भाषा के शिक्षण हेतु उनकी रचनात्मक पुस्तकें हैं कैरिबियाई देशों में हिंदी शिक्षण तथा देवनागरी स्क्रिप्ट फॉर बिगनर्स। आपके दो कहानीसंग्रह गोखरू एवं जन्म और उपन्यास छिन्नमूल (2016) में प्रकाशित हुए हैं। अनेक भाषाओं में एक दर्जन से अधिक कविता संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं।

पुष्पिता अवस्थी का छिलमूल' उपन्यास भारतीयों के अस्मिता संघर्ष की गाथा है। सूरीनाम में बसें भारतीयों के अस्मिता संकट के बहाने लेखिका ने पूरे सूरीनाम को उपन्यास का विषय बनाया है।1873 ई. के बाद बस्ती और फैजाबाद के गाँवों से सूरीनाम आकर बसें एक परिवार के माध्यम से प्रवासी भारतीयों के इतिहास के साथ ही उनकी वर्तमान अवस्था का चित्रण उपन्यास में हुआ है। विदेशों में बसे भारतीयों की अपने मूल की खोज जारी है। उसी का परिणाम है कि विदेशों में भारतीय संस्कृति जीवित है। प्रवास में रहते हुए लेखिका ने प्रवासी भारतीयों के दुख-दर्द को न केवल महसूस किया, बल्कि उसे मर्मस्पर्शी

ढंग से उकेरा है- ''अतीत के इतिहास में बंद पड़ा है अतीत के एक सौ चौवालीस वर्षों का इतिहास। अहर्निश होनेवाली वर्षा ने धोया है बहाया है दुख-दर्द का इतिहास । लेकिन पानी के धोने और बहाने से नहीं खत्म होता है- ऐताहिक दर्द । जिसे पीढ़ियाँ जीती हैं, भोगती हैं। भारतभूमि का मानव धन एक समय में ब्रिटिश फ्रेंच और डच सत्ताधारियों का धन बना । भारतभूमि के मानव ईख की तरह जल जहाजों पर पैसे के लिए कैरेबियाई देशों में लाए गये।"2.

पुष्पिता अवस्थी ने उपन्यास में सूरीनाम की सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक, धार्मिक एवं भौगोलिक स्थिति के माध्यम से भारतीयों की पहचान के संकट को उजागर किया है। इसमें सूरीनाम में बसने वाले प्रवासी भारतीयों के संपूर्ण इतिहास को सामने ले आती है।.. सूरीनाम में बसे भारतीयों की युवा पीढ़ी में न केवल भारतीय मूल्यों छीजते हुए महसूस करती हैं, बल्कि इन मूल्यों के माध्यम से वर्तमान पीटी के अस्तित्व और अस्मिता संकट को भी रेखांकित करती हैं। वह खेती-किसानी को ही भारतीयों की पहचान के रूप में देखती हैं। क्योंकि जब भारतीय सूरीनाम आये तो उन्होंने धान और गन्ने की खेती तथा पशुपालन के द्वारा ही जीवन यापन किया। नई पीढ़ी में कुछ तो अच्छे पदों पर थे, कुछ व्यापार में लगे थे, बाकी के लोग गलत कामों में संलिप्त थें। बिना मेहनत के सब कुछ को पा लेने की चाहत में युवा पीढ़ी सारी नैतिकता और सही-गलत के अंतर को त्याग कर अवैध-गलत कामों में लगी है। ''आज की पीढ़ी को होश नहीं है और वह उपभोक्तावाद के आनंद में पड़ गयी है । वह रंगीनियों के साथ जीने पीने की अभिलाषा में होश खो बैठी है। यहाँ स्त्रियाँ कपड़ा पहनना भूल गयी है। प्राय: एक नहीं तो दोनों कंधे निर्वस्त्र । कटि प्रदेश खुला हुआ।... सब कुछ भोग लेने

की उद्दाम जिजीविषा से छलकता तन मन जिसमें चित्त में भोग से संभोग तक की सारी अदम्य इच्छाएँ देह से चलकती हुई दिखाई देती हैं।''3

उपन्यास की कथा रोहित और ललिता के माध्यम से आगे बढ़ती है। उपन्यास में ऐसी कोई कहानी नहीं है, जो इन दोनों के माध्यम से मुख्य रूप से भारतवंशी रोहित के संघर्ष, शोषण और विषम परिस्थितियों की गाथा के साथ-साथ उसके परिवार के सदस्यों की वर्तमान स्थिति को दिखाते हुए सूरीनाम में रहे प्रवासी भारतीयों के जीवन को बहुत निकट से देखने का सार्थक प्रयास है।

उपन्यास का आरंभ ललिता द्वारा यह बताकर किया है कि 18वीं और 19वीं शताब्दी में हालैंड और अंग्रेजी सरकारों ने एशियन देशों के श्रमिकों को मज़दूरी और बेहतर जिंदगी देने के लालच में सूरीनाम जैसे जंगल से भरे देशों में फेंक दिया, " अठारहवीं - उन्नीसवीं सदी के आसपास हॉलैंड और अंग्रेज़ों की हुकूमत तले मानव श्रम के दलालों ने एशियन देशों के श्रमिकों के व्यवसाय शुरू किया। नौकरी और मजदूरी के लोभ में उन्हें फँसकर उन सबकी मातृभूमि और जीवन राग को छीन लिया। द्वीपों और महाद्वीपों के जंगल उजाडने केलिए बस्ती बसाने के लिए उन्हें जहाँ तहाँ धरती के कोने- अंतर में फेंकते रहे। शरीर मात्र से जीवित मजदूरों के जीवन को उधियाते रहे और खुद उस दरख्त पर फलते-फूलते रहे ।"4

ललिता एक पत्रकार है और कुछ अलग करने के इरादे से सूरीनाम में भारतवंशियों के विषय में जानकारी लेने के लिए यहाँ रही है, ''समय के हाथों वह अलगाकर इस द्वीप के एक्वेरियम में डाल दी गयी है, मछली की तरह। अकेले तड़प रही है। इसे कौन

जान समझ सकता है। कुछ महत्वपूर्ण करने के इरादे से अपना देश छोड़कर निकली है।"5

रोहित नीदरलैंड में व्यवसाय करनेवाला व्यवसायी है। वह जब अपनी मातृभूमि सूरीनाम में अपने पूर्वजों द्वारा स्थापित मंदिर और स्कूल के पुनर्निर्माण का कार्य आरंभ करता है तो उसे यहाँ इनसे जुड़े सभी भारतीयों द्वारा ठगा जाता है। रोहित अपनी पत्नी ललिता से कहता है पैसा हम लोग लगाएँगे... नीदरलैंड की एक सरकारी एन जी ओ संस्था कुछ लगाएगी... जिस पर भी यहाँ के लोगों के इतने नखरे... मैं तो थक गया हूँ... कंस्ट्रक्शन कम्पनी से बात की तो तिगुना दाम वसूलते हैं... सीधे मटीरियल लेनेवाली कम्पनियों से संपर्क किया गया तो वह अपनी तीस प्रतिशत की कमाई से पाँच प्रतिशत भी छोड़ने को तैयार नहीं है, पर यह हिंदुस्तानी व्यवसायी है... मंदिर के नाम पर दस प्रतिशत भी छोड़ने को तैयार नहीं है की छूट देने को तैयार नहीं है... जबकि मंदिर उनके ही देश में बन रहा है... भारत में भगवान हम इसी देश के हिंदुस्तानियों के लिए ला रहे हैं... और यह ऐसा व्यवहार कर रहे हैं। जैसे मंदिर... स्कूल बनवाने की अनुमति देकर हम पर अहसान कर रहे हों।''6 यहीं नहीं यहाँ के मंदिरों की स्थिति तो अत्यंत विकट है। मंदिर के पुजारी भारत से थोक में अगरबत्ती व अन्य पूजा सामग्री मँगवाकर यहाँ के छपे पैक्टरो में भरकर कई गुना लाभ में बेचकर सीधे सीधे हिंदुस्तानियों से हिंदुस्तानियों के पारम्परिक संस्कारों की इमोशनल जरूरतों का धंधा भी करते हैं।

रोहित और ललिता सूरीनाम के बारे में अक्सर बातचीत करते हैं तो महसूस किया है कि सूरीनाम को भारतवंशी मजदूरों ने ही रहने योग्य बनाया। सौ वर्षों से अधिक समय से रहते हुए उनके पुरखों ने अपने श्रम से, इस धरती को विकसित किया लेकिन आज यहाँ मे रह रहे नीग्रो और चायनीज़ लोग उनके साथ उपेक्षित व्यवहार करते हैं। यहाँ के

हिंदुस्तानियों ने भी अपने आपको आधुनिकता की चमक स्वच्छंद जीवन जीने की लत लगा ली है।

सूरीनाम में रह रहे पिछड़ेपन के पीछे खुद उनकी ही चाल है, क्योंकि वे नहीं, चाहते कि अच्छे व योग्य हिंदुस्तानी उनके देश में आएँ। वहाँ की सरकार हिंदुस्तानियों की सदैव उपेक्षा करती है। लेखिका के अनुसार रोहित ने अपने अनुभव से धीरे - धीरे पहचान लिया है कि.. दरअसल सूरीनाम के हिंदुस्तानी भी नहीं चाहते हैं कि भारत देश का डाक्टर . वैद्य... इंजीनियर कृषि विशेषज्ञ नर्तक- गायक पंडित अध्यापक और भारतीय संस्कृति के योग्य कार्यकर्ता पधारे। सूरीनामी हिंदुस्तानियों को इस बात का डर है कि किसी भी क्षेत्र में योग्य भारतीय कार्यकर्ता के आने पर उनकी योग्यता की असलियत खुल जाएगी। उनका महत्व कम हो जाएगा । उनकी कामयाबी पर असर पड़ेगा। उनकी और उनसे आगेवाली नई पीढ़ी की रोजी-रोटी बेवजह भारी जाएगी। इसलिए सूरीनामी के स्वतंत्र राष्ट्र होने के बाद से लगभग उन्नीस सौ पचहत्तर के बाद से प्राय: नहीं के बराबर भारतीय इस देश के नागरिक बन सके हैं।"7

हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के नाम पर भी सूरीनाम में भ्रष्टाचार व्याप्त है। यहाँ सांस्कृतिक समिति के सचिव रंजीत कुमार कुछ इसी तरह के भ्रष्टाचारी हैं। सूरीनाम के मंत्रालय में कार्यरत, सुष्मिता अपनी मामी ललिता को उनकी सच्चाई बताते हुए कहती है – ''हिंदी समिति के भूतपूर्व डायरेक्टर बता रहे थे कि उन्होंने अपने ऑफिस के नाम पर मंत्रालय से ज़मीन ली थी। बाद में हिंदी समिति के भवन में ही अपना कार्यालय खो लिया और तर्क यह दिया कि मेरा कार्यालय सौ अमेरिकन डॉलर प्रतिमाह हिंदी समिति को भरेगा । पर

किराया भरना तो दूर हिंदी समिति के टाइपराइटर, जिराक्स मशीन... अपने कार्यालय में रखवा लिया और कुछ दिन कंप्यूटर सब बाद वह हिंदी समिति का नहीं बल्कि उनके कार्यालय का हो गया और तो और लोग जब पुरानी जमीन को भूल गए तो उसको बेचकर पैसा अपनी जेब में कर लिया।''8 इसी तरह सरकार से हिंदी सेवा के नाम पर हिंदी समिति के भवन निर्माण आदि के नाम पर न केवल पैसा हडपा वरन भवन के बन जाने पर उसे सुपर मार्केट बनाने के लिए चायनीज को बेच भी दिया।

सूरीनाम में कानून व्यवस्था की स्थिति अत्यंत दयनीय है। यहाँ चोरी और डकैती की घटनाएँ आम है। इसलिए लोग अपने घरों और मंदिरों की खिड़कियाँ तक बंद रखते हैं। यहाँ के भारतवंशी सनातनी और आर्य समाजियों में बेटे हैं, किंतु वे मंदिरों में जाकर से हो रहे धर्म और संस्कृति का प्रचार-प्रसार के वर्णन भी इस उपन्यास में किया गया है- ''प्राय: शाम को सात से नौ बज मंदिर खुलता है। भजन कीर्तन- प्रवचन होता है। सबके लाये हुए प्रसाद को चढ़ाया जाता है, भोग लगता है। सब आपस में मिलते हैं। इस तरह मंदिर, भक्ति के साथ-साथ सामाजिक उत्सव के भी स्थल बने हुए हैं। हर मंदिर की अपनी शैली थी और अपनी विशेषता भी। रोहित अपने पिता की स्मृति में पिता द्वारा निर्मित आलोक संस्था का पुनर्गठन करना चाहता है क्योंकि स्कूल और मंदिर के संचालन हेतु बनी समिति तेरह वर्ष प्राचीन है। आलोक संस्था को भ्रष्ट लोगों से मुक्ति दिलाने और शुद्ध पवित्र लोगों के हाथ में सौंपने को रोहित तत्पर रहता है। अपने मित्रों और गाँव - समाज के लोगों के सहयोग से रोहित मंदिर और स्कूल का जीर्णोद्धार करता है, किंतु स्कूल की शिक्षा -व्यवस्था शिक्षकों, निर्देशक आदि के सहयोग से सुचारू ढंग से नहीं चल पाती है।

सूरीनाम की राजनीति में भी भारतवंशी दूसरे स्तर पर है। अपना सर्वस्व समर्पित करनेवाले भारतवंशियों को वहाँ की सरकार ने इतना अवसर ही नहीं दिया है कि वे अपना प्रभाव जमा सकें। इसका कारण बहुत सीमा तक स्वयं हिंदुस्तानियों की स्वार्थपरत दृष्टि भी है। लेखिका के अनुसार, ''राजनीति में भारतवंशी हमेशा दूसरे नंबर पर रहे हैं। पंद्रह-सोलह की संख्या में भारतवंशी के मंत्री होने पर भी असेम्बली में अपनी कोई आवाज़ या पकड़ नहीं बन पाती है, इसलिए हिंदुस्तानी समाज के पक्ष में जल्दी कोई नेशनल पालिसी भी बन नहीं पाती है। हिंदुस्तानी मंत्री से कोई हिंदुस्तानी अपना काम नहीं करवा पाता है लेकिन नीग्रो मिनिस्टर के पास जाने पर झट से उसका काम हो जाता है और उसके बाद तो वह हिंदुस्तानी व्यक्ति नीग्रो पार्टी का कार्यकर्ता भी बन जाता है।''9

इस उपन्यास में सूरीनाम की भौगोलिक स्थिति का भी विस्तार से वर्णन किया है। बाक्साइड और सोने की खदानों से भरे सूरीनाम में प्रकृति के मौलिक रूप के दर्शन होते हैं। इसलिए सूरीनाम को 'वर्जिनलैंड' कहा जाता है। सूरीनाम की धरती न केवल जंगल, पहाड़ों, नदी, झीलों से भरी है बल्कि गन्ने और धान की खेती के लिए भी उपयुक्त है। इतना ही नहीं यहाँ की धूप इतनी तेज़ है कि आसानी से और सौर ऊर्जा का विकल्प बनाया जा सकता है। भौगोलिक स्थिति के निवेचन के बहाने लेखिका ने सूरीनाम में भविष्य की संभावनाओं की ओर भी संकेत किया है। यहाँ तक कि वे 'भारतीयों के लिए खेती को रोजगार का उपयुक्त विकल्प मानती हैं। क्योंकि श्रम व्यक्ति को भोगवादी होने से बचाता है और उसे नैतिकता की राह पर चलने के लिए प्रेरित करता है। रोहित और ललिता का बार-बार सूरीनाम के उन स्थलों पर जाना, जहाँ पुराने प्लांटेशन और चीनी बनाने के कारखाने है, अपने पुरखों के संघर्ष

को याद करना है, इससे जड़ों से जुड़ाव बना रहता है।

इसके अलावा लेखिका ने सूरीनाम की कला, रहन-सहन, सांस्कृतिक उत्सवों के माध्यम से सूरीनामी समाज का यथार्थ चित्रण किया है। यह सूरीनामी समाज नीग्रो, चायनीज, भारतीय आदि कई देशों के निवासियों से मिलकर बना है। ये सभी अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत हैं। सिशिल, हेडरिक आदि पात्रों के माध्यम से नीग्रो समाज की मानवतावादी सोच व्यक्त हुई है। बाहर से देखने में तो सब एक दिखाई देते हैं, किंतु राजनीतिक वर्चस्व के लिए खींचतान लगी रहती है।

छिन्नमूल उपन्यास का शिल्प परिपक्व है। उपन्यास का प्रारंभ सूरीनाम की प्राकृतिक सुषमा, ऐतिहासिक स्थलों, भौगोलिक क्षेत्रों भारतवंशियों के श्रम तथा अन्याय के शोषण की मर्मांतक प्रसंगों, घटनाओं और वर्तमान लोगों की दैनंदिन कार्य व्यापारों को उद्घाटित करती हैं। उपन्यास का मध्य सूरीनाम का बहुसंस्कृति बहुसमाज और बहुजातीय परंपरा का विस्तार करता है। उपन्यास में घटनाक्रम का विस्तार हुआ है। पात्रों के भावों और विचारों को व्यक्त करने हेतु उनकी रोजमर्रा की भाषा प्रयोग हुई है। पात्रों की संवेदना और अनुभूति को व्यापक फलक पर अभिव्यक्त कर सकी है।

इस उपन्यास की भाषा शिक्षित समुदाय की है। सूरीनाम के परिवेश को दिखलाने के लिए अंग्रेज़ी, उच और स्थानीय शब्दों का प्रयोजन करना आवश्यक था। पात्रों की परस्पर भाषा में, बोलचाल का स्वर उभरता है। प्राकृतिक दृश्यों में यह भाषा काव्यात्मक और अलंकृत होती है। भारतवंशियों के संस्कारों और कार्यव्यापारों में डच और हिंदी का मिश्रण हो जाता है। उपन्यास सूरीनाम की धरती, आकाश, सागर, पहाड नदी और पशु-पक्षी

वर्णनात्मक शैली में प्रकट होते हैं। लेखिका ने संवेदानात्मक स्तर पर भाषा को प्रभावशाली एवं गतिमय बनाए रखा है।

'छिन्नमूल' उपन्यास अपने मौलिक कथ्य और शिल्प की दृष्टि से विशिष्ट है। पुष्पिता अवस्थी ने छिन्नमूल उपन्यास के माध्यम से सूरीनाम के भारतवंशियों की सामाजिक सांस्कृतिक स्तर, रहन-सहन भाषा, संस्कार, आचरण-व्यवहार और संघर्ष का जीता-जागता चित्रण किया है। गिरमिटिया मजदूर किन हालतों में सूरीनाम पहुंचे, उनके साथ किये गये दासोंवाले व्यवहार को झेलते हुए अपने अस्तित्व को बचाये रखने वाले सूरीनामी भारतीयों की बेहद रोचक और संवेदनशील आख्यान है-छिन्नमूल। उपन्यास का शीर्षक 'छिन्नमूल' पूरी तरह से सार्थक है, क्योंकि जहाँ एक ओर सूरीनाम में बसे भारतीय, भारत में अपनी जड़ों से छिन्न है वहीं उनकी नयी पीटी भारतीय संस्कृति के मूल संस्कारों से छिन्न हैं। भले ही यह उपन्यास सूरीनाम में बसे प्रवासी भारतीयों पर केंदित है, लेकिन विश्वभर में जहाँ-जहाँ प्रवासी भारतीय रहते हैं, वे सही अर्थों में भारत की भूमि में बहुत गहरे तक जमीन अपनी जड़ों से छिन्न हैं - और और उसका दर्द उनके हृदय में एक शूल की तरह चुभता रहता है। छिन्नमूल वस्तुतः सूरीनाम से हिंदुस्तानी प्रवासियों के हाथों से संस्कृति और सभ्यता के छूटते दामन का जीवन दस्तावेज है।

हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के नाम पर भी सूरीनाम में भ्रष्टाचार व्याप्त है। यहाँ सांस्कृतिक समिति के सचिव रंजीत कुमार कुछ इसी तरह के भ्रष्टाचारी हैं। सूरीनाम के मंत्रालय में कार्यरत, सुष्मिता अपनी मामी ललिता को उनकी सच्चाई बताते हुए कहती है — ''हिंदी समिति के भूतपूर्व डायरेक्टर बता रहे थे कि उन्होंने अपने ऑफिस के नाम पर मंत्रालय

से ज़मीन ली थी। बाद में हिंदी समिति के भवन में ही अपना कार्यालय खो लिया और तर्क यह दिया कि मेरा कार्यालय सौ अमेरिकन डॉलर प्रतिमाह हिंदी समिति को भरेगा । पर किराया भरना तो दूर हिंदी समिति के टाइपराइटर, जिराक्स मशीन... अपने कार्यालय में रखवा लिया और कुछ दिन कंप्यूटर सब बाद वह हिंदी समिति का नहीं बल्कि उनके कार्यालय का हो गया और तो और लोग जब पुरानी जमीन को भूल गए तो उसको बेचकर पैसा अपनी जेब में कर लिया।''8 इसी तरह सरकार से हिंदी सेना के नाम पर हिंदी समिति के भवन निर्माण आदि के नाम पर न केवल पैसा हडपा वरन भवन के बन जाने पर उसे सुपर मार्केट बनाने के लिए चायनीज को बेच भी दिया।

सूरीनाम में कानून व्यवस्था की स्थिति अत्यंत दयनीय है। यहाँ चोरी और डकैती की घटनाएँ आम है। इसलिए लोग अपने घरों और मंदिरों की खिड़कियाँ तक बंद रखते हैं। यहाँ के भारतवंशी सनातनी और आर्य समाजियों में बेटे हैं, किंतु वे मंदिरों में जाकर से हो रहे धर्म और संस्कृति का प्रचार-प्रसार के वर्णन भी इस उपन्यास में किया गया है- ''प्राय: शाम को सात से नौ बज मंदिर खुलता है। भजन कीर्तन- प्रवचन होता है। सबके लाये हुए प्रसाद को चढ़ाया जाता है, भोग लगता है। सब आपस में मिलते हैं। इस तरह मंदिर, भक्ति के साथ-साथ सामाजिक उत्सव के भी स्थल बने हुए हैं। हर मंदिर की अपनी शैली थी और अपनी विशेषता भी। रोहित अपने पिता की स्मृति में पिता द्वारा निर्मित आलोक संस्था का पुनर्गठन करना चाहता है क्योंकि स्कूल और मंदिर के संचालन हेतु बनी समिति तेरह वर्ष प्राचीन है। आलोक संस्था को भ्रष्ट लोगों से मुक्ति दिलाने और शुद्ध पवित्र लोगों के हाथ में सौंपने को रोहित तत्पर रहता है। अपने मित्रों और गाँव - समाज के लोगों के सहयोग से

रोहित मंदिर और स्कूल का जीर्णोद्धार करता है, किंतु स्कूल की शिक्षा -व्यवस्था शिक्षकों, निर्देशक आदि के सहयोग से सुचारू ढंग से नहीं चल पाती है।

सूरीनाम की राजनीति में भी भारतवंशी दूसरे स्तर पर है। अपना सर्वस्व समर्पित करनेवाले भारतवंशियों को वहाँ की सरकार ने इतना अवसर ही नहीं दिया है कि वे अपना प्रभाव जमा सकें। इसका कारण बहुत सीमा तक स्वयं हिंदुस्तानियों की स्वार्थपरत दृष्टि भी है। लेखिका के अनुसार, ''राजनीति में भारतवंशी हमेशा दूसरे नंबर पर रहे हैं। सोलह की संख्या में भारतवंशी के मंत्री होने पर भी असेम्बली में अपनी कोई आवाज़ या पकड़ नहीं बन पाती है, इसलिए हिंदुस्तानी समाज के पक्ष में जल्दी कोई नेशनल पालिसी भी बन नहीं पाती है। हिंदुस्तानी मंत्री से कोई हिंदुस्तानी अपना काम नहीं करवा पाता है लेकिन नीग्रो मिनिस्टर के पास जाने पर झट से उसका काम हो जाता है और उसके बाद तो वह हिंदुस्तानी व्यक्ति नीग्रो पार्टी का कार्यकर्ता भी बन जाता है।''9

इस उपन्यास में सूरीनाम की भौगोलिक स्थिति का भी विस्तार से वर्णन किया है। बाक्साइड और सोने की खदानों से भरे सूरीनाम में प्रकृति के मौलिक कप के दर्शन होते हैं। इसलिए सूरीनाम को 'वर्जिनलेण्ड' कहा जाता है। सूरीनाम की धरती न केवल जंगल, पहाड़ों, नदी, झीलों से भरी है बल्कि गन्ने और धान की खेती के लिए भी उपयुक्त है। इतना ही नहीं यहाँ की धूप इतनी तेज़ है कि आसानी से और सौर ऊर्जा का विकल्प बनाया जा सकता है। भौगोलिक स्थिति के निवेचन के बहाने लेखिका ने सूरीनाम में भविष्य की संभावनाओं की ओर भी संकेत किया है। यहाँ तक कि वे 'भारतीयों के लिए खेती को रोजगार का उपयुक्त विकल्प मानती हैं। क्योंकि श्रम व्यक्ति को भोगवादी होने से बचाता है और उसे नैतिकता की

राह पर चलने के लिए प्रेरित करता है। रोहित और ललिता का बार-बार सूरीनाम के उन स्थलों पर जाना, जहाँ पुराने प्लांटेशन और चीनी बनाने के कारखाने है, अपने पुरखों के संघर्ष को याद करना है, इससे जड़ों से जुड़ाव बना रहता है।

इसके अलावा लेखिका ने सूरीनाम की कला, रहन-सहन, सांस्कृतिक उत्सवों के माध्यम से सूरीनामी समाज का यथार्थ चित्रण किया है। यह सूरीनामी समाज नीग्रो, चायनीज, भारतीय आदि कई देशों के निवासियों से मिलकर बना है। ये सभी अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत हैं। सिशिल, हेडरिक आदि पात्रों के माध्यम से नीग्रो समाज की मानवतावादी सोच व्यक्त हुई है। बाहर से देखने में तो सब एक दिखाई देते हैं, किंतु राजनीतिक वर्चस्व के लिए खींचतान लगी रहती है।

छिन्नमूल उपन्यास का शिल्प परिपात्र है। उपन्यास का प्रारंभ सूरीनाम की प्राकृतिक सुषमा, ऐतिहासिक स्थलों, भौगोलिक क्षेत्रों भारतवंशियों के श्रम तथा अन्याय के शोषण की ममतक प्रसंगों, घटनाओं और वर्तमान लोगों की दैनंदिन कार्य व्यापारों को उद्‌घाटित करती हैं। उपन्यास का मध्य सूरीनाम का बहुसंस्कृति बहुसमाज और बहुजातीय परंपरा का विस्तार करता है। उपन्यास में घटनाक्रम का विस्तार हुआ है। पात्रों के भानों और विचारों को व्यक्त करने हेतु उनकी रोजमर्रा की भाषा प्रयोग हुई है। पात्रों की संवेदना और अनुभूति को व्यापक फलक पर अभिव्यक्त कर सकी है।

इस उपन्यास की भाषा शिक्षित समुदाय की है। सूरीनाम के परिवेश को दिखलाने के लिए अंग्रेज़ी, उच और स्थानीय शब्दों का प्रयोजन करना आवश्यक था। पात्रों की परस्पर भाषा में, बोलचाल का स्वर उभरता है। प्राकृतिक दृश्यों में यह भाषा काव्यात्मक

और अलंकृत होती है। भारतवंशियों के संस्कारों और कार्यव्यापारों में डच और हिंदी का मिश्रण हो जाता है। उपन्यास सूरीनाम की धरती, आकाश, सागर, पहाड नदी और पशु-पक्षी वर्णनात्मक शैली में प्रकट होते हैं। लेखिका ने संवेदानात्मक स्तर पर भाषा को प्रभावशाली एवं गतिमय बनाए रखा है।

'छिन्नमूल' उपन्यास अपने मौलिक कथ्य और शिल्प की दृष्टि से विशिष्ट है। पुष्पिता अवस्थी ने छिन्नमूल उपन्यास के माध्यम से सूरीनाम के भारतवंशियों की सामाजिक सांस्कृतिक स्तर, रहन-सहन भाषा, संस्कार, आचरण-व्यवहार और संघर्ष का जीता-जागता चित्रण किया है। गिरमिटिया मजदूर किन हालतों में सूरीनाम पहुंचे, उनके साथ किये गये दासोंवाले व्यवहार को झेलते हुए अपने अस्तित्व को बचाये रखने वाले सूरीनामी भारतीयों की बेहद रोचक और संवेदनशील आख्यान है-छिन्नमूल। उपन्यास का शीर्षक 'छिन्नमूल' पूरी तरह से सार्थक है, क्योंकि जहाँ एक और सूरीनाम में बसे भारतीय, भारत में अपनी जड़ों से छिन्न है वहीं उनकी नयी पीटी भारतीय संस्कृति के मूल संस्कारों से छिन्न हैं। भले ही यह उपन्यास सूरीनाम में बसे प्रवासी भारतीयों पर केंदित है, लेकिन विश्वभर में जहाँ-जहाँ प्रवासी भारतीय रहते हैं, वे सही अर्थों में भारत की भूमि में बहुत गहरे तक जमीन अपनी जड़ों से छिन्न हैं - और और उसका दर्द उनके हृदय में एक शूल की तरह चुभता रहता है। छिन्नमूल वस्तुतः सूरीनाम से हिंदुस्तानी प्रवासियों के हाथों से संस्कृति और सभ्यता के छूटते दामन का जीवन दस्तावेज है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

वर्तमान साहित्य, जनवरी-फरवरी 2006 पृ सं. 46 -

पुष्पिता अवस्थी, छिन्नमूल, पृ. सं. पृ. में 251.

वही, पृ. से 201

वही, पृ.सं 10

वही, पृ. सं. 16

वही, पृ सं 100

वही, पृ. सं. 68,

वही पृ. सं 14

वही, पृ.सं. 69

डॉ. जयश्री.एस.टी

सहायक प्राध्यापिका,

हिंदी विभाग, एस.एम.डी.बी कॉलेज,

शास्तामकोट्टा, कोल्लम

****

13

कॉर्पोरेट सेक्टर का प्रभाव

किरीट देबनाथ

प्रख्यात विद्वान डॉक्टर रामगोपाल शर्मा लिखते हैं कि ''साहित्य मानव-समाज की भावात्मक स्थिति और गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है''।[1]

इस गद्यांश में वर्णित बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समाज में जिस प्रकार की परिस्थिति होगी उसी प्रकार का वर्णन साहित्य में भी होगा। साहित्य की कोई भी विधा चाहे कविता हो, कहानी हो, नाटक हो, निबंध हो आदि सभी समाज में होने वाली विभिन्न प्रकार की गतिविधियों के वर्णन से अछूते नहीं रह सकते। ठीक यही स्थिति उपन्यास विधा की भी है। कदाचित यही कारण है कि साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है।

आज का युग वैश्वीकरण का युग है और हमारे भारत में भी इस वैश्वीकरण का प्रभाव देखने को मिल रहा है। परिणाम स्वरूप विभिन्न भारतीय भाषाओं में चाहे मलयालम हो, बंगला हो, मराठी हो, तमिल हो आदि की साहित्यिक रचनाओं में उपन्यासों, कहानियों आदि में भारतीय समाज में भूमंडलीकरण के प्रभाव को दिखाया गया है। इन सभी भाषाओं के साथ अगर हिंदी साहित्य की बात की जाए तो हमारा हिंदी साहित्य भी इस मामले में पीछे नहीं है। भारतीय समाज में तीव्र गति से फैल रहे इस वैश्वीकरण को लेकर उपन्यासों की रचना की गई है। उदाहरण हेतु ममता कालिया का 'दौड़', काशीनाथ सिंह का रेहन पर रग्घू'। ठीक इसी प्रकार अलका सारावगीजी का उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' भी भारत में फैल

भूमंडलीकरण के प्रभाव को दर्शाता हुआ एक उपन्यास है। आलोच्य उपन्यास में वैश्वीकरण के कारण हमारे देश में कॉर्पोरेट सेक्टर के प्रभाव को दर्शाने का प्रयास किया है।

इस उपन्यास पर बात रखने से पूर्व वैश्वीकरण की एक छोटी-सी परिभाषा देना चाहूँगा जो इस प्रकार है अपने देश की आर्थिक, सामाजिक आदि नीतियों को विश्व के अन्य देशों की नीतियों और विचारधाराओं के साथ मिला देना वैश्वीकरण कहलाता है। सन 1991 में तत्कालीन भारत सरकार ने यह नीति अपनाई थी।

इस उपन्यास में यह दिखाया गया है कि कॉर्पोरेट सेक्टर के प्रभाव के कारण बहुराष्ट्रीय कंपनी का जो उत्पाद है उसके भयंकर नुकसान को जानते हुए भी हमारे घरों में इन वस्तुओं का उपयोग बढ़ता चला जा रहा है। उपन्यास के पात्र के०वी० शंकर अय्यर की पत्नी उन भारतीय महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं जो इन वस्तुओं का उपयोग करती हैं। उदाहरण हेतु लेखिका अपने पात्र के० वी० शंकर अय्यर से उनकी पत्नी को कहलवाते हैं कि ''मेरी बात का प्वाइंट यह नहीं कि अमन वर्मा झूठ या नहीं। यदि वह झूठ बोल भी रहा था तो तुमने क्या हारपिक इस्तेमाल करना बंद कर दिया''? [2]

इस गद्यांश में वर्णित बातों के आधार पर लेखिका ने यही बताने का प्रयास किया है कि वैशिवकरण के इस दौर में विभिन्न प्रकार के उत्पादों के उपयोग को बढ़ाने में विज्ञापनों की भी बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विभिन्न प्रकार के विज्ञापनों के माध्यम से आज के इस वैश्वीकरण के दौर में भारत की महिलाएँ इतना अधिक आकर्षित हो चुकी हैं कि घरेलू औरतों के पास इन उत्पादों के उपयोग से होने वाले नुकसान के विषय में सोचने का भी अवसर नहीं

है। लेखिका ने अपने उपन्यास के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया कि हमारा बुद्धिजीवी वर्ग इस विषय में समाज को सचेत करता रहता है फिर भी समाज की महिलाएँ इस बात को समझ नहीं पा रही हैं। उदाहरण के लिए लेखिका लिखती हैं कि "टी० वी० पर रामदेव बाबा कह रहा था कि कोकाकोला से कमोड साफ़ करो। हारपिक से सस्ता और ज्यादा कारगर है। ऊपर से फायदा बच्चे कोकाकोला पीना छोड़ देंगे"। [3]

यह तो महिलाओं की बात हो गई। हमारे देश का पुरुष वर्ग भी इस भूमंडलीकण के कारण समाज के लोगों से ऐसे क्रियाकलाप किया करते हैं जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए के०वी० शंकर अय्यर की भार्या उनसे कहती है कि ''तुम जो हमेशा एयर कंडीशंड चेंबर में बैठे लोगों की ऐसी की तैसी करते रहते हो''। [4]

आलोच्य गद्यांश में वर्णित बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आदुनिकता और वैश्वीकरण के कारण हमारा स्त्री-समाज ही आकर्षित नहीं है बल्कि पुरुष वर्ग जो बड़ी-बड़ी कम्पनियों में कार्यरत हैं वे भी आकर्षित होते चले जा रहे हैं। इस आकर्षण के बल पर वे वातनुकूलित कक्ष में बैठकर कभी-कभी ऐसी गतिविधियों को अंजाम देते हैं जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

आज के भूमंडलीकरण के दौर में संसार सिमटकर अत्यंत ही छोटा बन गया है। संसार की समस्त प्रकार की गतिविधियाँ आभासीय हो चुकी हैं। संसार भले छोटा हो गया हो लेकिन लोगों के पास समय का अभाव है। लेखिका लिखती हैं कि ''किसे फ़ुरसत है आदमियों को रखने के लिए कोई शहर-शहर भटके तो कभी बंगलोर जाए। फ़ील्ड सेल्स ऑफिसर की नौकरी के लिए एक दर्जन आदमियों का इंटरव्यू करना है। कंप्यूटर पर वीडियो

कांफ्रेंस से सबको देखो, रखना है तो वही कन्फर्म करो। नहीं तो मामला चलता करो। अब यह दुनिया असली रही कहाँ ? कंप्यूटर की वरचुअल रिएलिटी ही जिंदगी की सच्चाई है''। [5]

आलोच्य गद्यांश में वर्णित बातों के आधार पर यह कहा जा है कि ग्लोबल संसार में समाज का जो वास्तविक परिदृश्य है वह मानो लुप्त ही हो गया है। मनुष्य का जो सम्पूर्ण जीवन है वह एक आभासी मंच बनकर रह गया है। अर्थात् हमें यथार्थ का थोड़ा-सा आभास मात्र हो रहा है परंतु उसे व्यक्ति पकड़ नहीं पा रहा है। इस गद्यांश में लेखिका की यह पंक्ति कि 'कम्प्यूटर की वरचूअल रिएलिटी ही ज़िंदगी की सच्चाई है'। इस बात को अगर समकालीन समय की करुणा कालीन परिस्थिति में देखें तो वास्तव में मनुष्य का जीवन संगणक की आभासी वास्तविकता बनकर रह गई है।

ऐसी बात नहीं है कि आज की ग्लोबल दुनिया केवल संगणक या कम्प्यूटर की दुनिया है बल्कि इसके साथ ही साथ आज का युग मोबाइल का युग भी है। आज की इस ग्लोबल दुनिया में मोबाइल एक अत्यंत ही उपयोगी वस्तु बन चुकी है। आज संसार में कोई भी ऐसा परिवार नहीं है जो इस यंत्र का प्रयोग नहीं करता हो। आज के समय में समाज का कोई भी वर्ग ऐसा नहीं है जो इसका प्रयोग नहीं करता हो। अलकाजी लिखती हैं कि ''अब तो ख़ैर पान वाले, सब्जी वाले और नाई, मोची भी मोबाइल रखने लगे हैं''। [6]

आज के जमाने में निजी कम्पनी या किसी बहुराष्ट्रीय कम्पनी में कार्य करने के लिए या किसी ऊँचे पद पहुँचने के लिए शारीरिक सुंदरता की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस उपन्यास में हम यह देखते हैं कि उपन्यास का पात्र 'गुरुचरण' जो एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी में कार्यरत है एवं वह आज जिस पज़िशन पर कार्यरत है उसमें उसके शारीरिक सौंदर्य की बड़ी

महत्वपूर्ण भूमिका है। अलकाजी लिखती हैं कि ''गोरा-चिट्टा रंग, सुंदर नाक-नक्श, घने बाल, गठा हुआ शरीर और दोषरहित अंग्रेजी बोल पाना इनमें से एक गुण भी कम मात्रा में होता, तो गुरुचरण का बावन-तिरपन के उम्र में कॉरपोरेट कम्युनिकेशन के प्रेजिडेंट के मुकाम तक पहुँचना कम-से-कम हिन्दूस्थान में तो असम्भव था"। [7]

बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ ग्राहकों के मध्य अपने सामानों के विक्रय के लिए ऐसे ही लोगों को माध्यम बनाती हैं। उदाहरण के लिए लेखिका लिखती हैं कि ''कम्पनी की पूरे देश में फैली शाखाओं में हर जगह कम्पनी को सरकार या ग्राहकों के सामने अपनी बात रखनी होती है, वहाँ चेहरा गुरुचरण का होता है और आवाज गुरुचरण की होती है''

आज हम एक ऐसे युग में जी रहे हैं जिसे कॉरपोरेट युग भी कहा जा सकता है। इस युग के प्रभाव के कारण लोगों को यदि भारतवर्ष की उन्नति करनी है तो इस देश को विदेशी कम्पनियों के समान स्वयं को बनाना होगा। हमें स्वयं को प्रतियोगीता में शामिल करना होगा। इसके बिना यह सम्भव नहीं है। उदाहरण के लिए लेखिका लिखती हैं कि ''पुराने उद्योगपतियों को अब विदेशी कम्पनियों की क्वालिटी से होड़ लेनी पड़ेगी। किसानों को सस्ते दामों पर सरकार से जो पानी, बिजली, खाद मिलती आई थी, वह सब्सिडी बंद हो जाएगी"। [9]

आलोच्य गद्यांश में वर्णित बातों के आधार यह कहा जा सकता है कि आज के युग में उन्नति के चरम शिखर तक पहुँचने के लिए होड़ की एक बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका है। वैश्वीकरण के कारण कम्पनियों की क्वालिटी से होड़ लेनी पड़ेगी। कॉरपोरेट सेक्टर के प्रभाव के कारण इस देश के किसानों को अत्यंत ही भयंकर संकटों का सामना करना पड़ रहा है। उद्योगपतियों को प्रगति में शामिल करने के लिए देश के सरकारों को किसानों को तमाम सारी

सुविधाओं से वंचित करना पड़ रहा है। स्थिति यहाँ तक आ गई है कि केवल किसान की बात नहीं है बल्कि इस देश की विभिन्न फैक्टरियों के काम करने वाले जो आम लोग हैं उनके नौकरियों की कोई गारंटी ही नहीं है। किसी भी समय उनकी नौकरी छूट सकती है। यहाँ लेखिका ने एक अत्यंत महत्वपूर्ण बात बताई है जो इस प्रकार है 'गरीबों का सवाल उठाने वाले दरसल आर्थिक सुधार के मुद्दे को भटकाना चाहते हैं'। अपनी इस पंक्ति के माध्यम से लेखिका इस कॉरपोरेट युग में हमारे समाज का जो वास्तविक यथार्थ है उसकी ओर ही संकेत कर रही हैं कि देश के बड़े-बड़े उद्योगपति एवं अर्थशात्र के जानकार आर्थिक सुधारों को लेकर जो चिंतन कर रहे हैं वास्तव में वह देश के दरिद्र जनों के हित में ही नहीं है। यह तो केवल दिखावा है। वास्तविकता यह है कि इसके माध्यम से देश के बड़े-बड़े लोग अपने ही निजी स्वार्थ को सिद्ध करने पर तुले हुए हैं। इनका उद्देश्य देश की सरकारों का ध्यान आर्थिक सुधार के मुद्दे से बहुत दूर ले जाना है इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि विदेशी कम्पनियाँ हमारे देश में अपने सामानों को बेचते हुए भारत के फायदे से भी अधिक अपने फायदे को ही सर्वाधिक महत्व देती हैं। लेखिका लिखती हैं कि "ये विदेशी लोग बड़े जालिम हैं। उन्हें क्या इस देश की भूखी-नंगी जनता को खिलाने-पहनाने की चिंता है, जो ये सब सवाल उठाते हैं ? उन्हें तो सिर्फ अपना माल सस्ते में बनवाने की फ़िक्र है क्योंकि उनके अपने देश में लगभग मुक्त में माल बनाने वाले गुलाम कहाँ मिलेंगे''? [10]

ऊपर लिखित गद्यांश में वर्णित बातों के आधार यह कहा जा सकता है कि हमें सर्वदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए विदेशी कम्पनियाँ किसी देश में व्यापार करते हुए उस देश

की उन्नति को कोई महत्व नहीं देते हैं बल्कि अपने ही देश की प्रगति पर ही ध्यान देते हैं। एक विदेशी संस्था या विदेशी कम्पनी भारत देश की उन्नति किस प्रकार समझ सकती है ? जो इस देश का नहीं है वह इस देश की कमियों को, ज़रूरतों को समझ ही नहीं पाएगा। विदेशी को सर्वदा अपने निजी स्वार्थ की चिंता रहेगी। उदाहरण के लिए हम जानते हैं कि हमारे देश में अंग्रेजों ने जिस अंग्रेजी शिक्षा की शुरुआत की थी उसमें उनका अपना निजी स्वार्थ छुपा हुआ था। भारत के प्रख्यात सन्यासी स्वामी विवेकानंद तत्कालीन 19वीं शताब्दी के भारत में अंग्रेज़ों के इस स्वार्थी चाल को समझ लिया था। उनके अनुसार ''यह नेतिमूलक शिक्षा है। इस शिक्षा की सहायता से किसी स्वतंत्र जाति का गठन नहीं हो सकता, जाति आत्मस्थ होकर दृढ़ पग से उन्नति के मार्ग में आगे नहीं बढ़ सकता''। [11]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अगर कोई व्यक्ति व्यक्ति रोज़गार के लिए किसी विदेशी कम्पनी या कोई बहुराष्ट्रीय कम्पनी से जुड़ना चाहता है या किसी कॉरपोरेट क्षेत्र से जुड़ने से पूर्व अत्यंत सोच-विचार के साथ ही निर्णय लेना चाहिए। साथ ही बच्चों को कृत्रिम विदेशी वस्तुओं के उपयोग के लिए उत्साहित नहीं करना चाहिए। घर की महिलाओं को इस विषय में ध्यान रखना चाहिए। साथ ही देश की प्रबुद्ध जनता एवं सरकार को इस बात का ध्यान रखना चाहिए भारत की उन्नति में किसानों की भी बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका है। आज की इस 21वीं शताब्दी में भी भारत लगभग 65% जनसंख्या कृषि कार्य में लीन हैं। यदि सरकार किसानों की सहायता नहीं करेंगे किसानों की प्रगति रुक जाएगी और यदि कृषकों की प्रगति रुक जाएगी तो देश विकसित नहीं हो पाएगा।

संदर्भ संकेत

1 डॉक्टर नगेंद्र- हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या 54

2 अलका सरावगी- एक ब्रेक के बाद, पृष्ठ संख्या 16

3 अलका सरावगी- एक ब्रेक के बाद, पृष्ठ संख्या 16

4 अलका सरावगी- एक ब्रेक के बाद, पृष्ठ संख्या 16

5 अलका सरावगी- एक ब्रेक के बाद, पृष्ठ संख्या 15

6 अलका सरावगी- एक ब्रेक के बाद, पृष्ठ संख्या 17

7 अलका सरावगी-एक ब्रेक के बाद, पृष्ठ संख्या 18

8 अलका सरावगी- एक ब्रेक के बाद, पृष्ठ संख्या 18

9 अलका सरावगी- एक ब्रेक के बाद, पृष्ठ संख्या 51

10 अलका सरावगी- एक ब्रेक के बाद, पृष्ठ संख्या 51

11 स्वामी गंभीरानंद- युगनायक विवेकानंद प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या 3

किरीट देबनाथ

शोध छात्र

हिंदी विभाग

प्रेसीडेंसी विश्वविद्यालय, कोलकाता-700073

Emai l kirit.presidency@gmai l.com

Mob : 8961573109, 9123330149

****

14

भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में 'रेहन पर रग्घू'

डॉ मजीदा

भूमंडलीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से पूरा विश्व एकीकृत होकर एक बाज़ार में बदल जाता है । इससे प्रत्येक राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से वस्तु, सेवा, पूँजी एवं बौद्धिक संपदा का आदान प्रदान कर सकते हैं। भूमंडलीकरण शब्द से भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि यह संपूर्ण विश्व के लोगों के मंगल के लिए एक साथ जुड़ जाना है। लेकिन वास्तव में यह 'वसुधैव कुटुम्बकम' से भिन्न विश्व के कुछ सशक्त व पूँजीपती राष्टों के हित की रक्षा का माध्यम है। अमित कुमार सिंह ने ''भूमंडलीकरण को अमेरिकीकरण का परिवर्तित चेहरा माना है।''[1] औद्योगिक क्रांति के कारण उत्पादन की मात्रा तेज़ी से बढ़ गया तो वे अपने लिए नए बाज़ार ढूँढना चाहते थे। 'वैश्विक गाँव' जैसे मधुर शब्दों से उन्होंने विकासशील देशों को अपने जाल में फँसाने का प्रयास किया। इसके द्वारा उनका उद्देश्य अपने व्यापारिक हितों की रक्षा थी। भूमंडलीकरण के द्वारा वे उन सारे क्षेत्रों को अपने लिए खोल देना चाहते थे जो अब तक उनके पहुँच के बाहर थे।

हर राज्य की अपनी राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था होती है। साम्राज्यवादी ताकतें इसको मान्यता न देकर अपनी इच्छानुसार बाज़ारों पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास करते हैं। विकासशील देश हमेशा इनके गलत इरादों का शिकार होते रहते हैं। वे अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों पर बदलाव लाने की माँग कर रहे हैं। लेकिन साम्राज्यवादी

ताकतें बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पादों को आसानी से बेचने योग्य अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार व्यवस्था को कायम करने की कोशिश में है। इससे संपन्न राष्ट्र और भी संपन्न बन जाते हैं। लेकिन विकासशील देश असली आज़ादी से वंचित रह जाते हैं। श्रीधरन पालायी की राय में ''जिसकी आर्थिक क्षमता कमज़ोर है उसको सीधा-सीधा खेल के मैदान से बाहर किया जाता है। इस दृष्टि से समाज का गरीब तबका हमेशा साम्राज्यवादी ताकतों की गलत नीतियों का शिकार हुआ करता है।''[2]

साम्राज्यवादी राष्ट्र क्रूरता एवं निर्दयता से अपने माल दूसरे देशों में बेचने का उपाय ढूँढते रहते हैं। इसमें वे मानव मूल्य या हित की चिंता नहीं करते। इतिहास इसका गवाह है। अपने देश के नवयुवकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालने के कारण चीन ने अफीम के व्यापार पर प्रतिबंध लगा दिया था। लेकिन ब्रिटेन ने उनसे दो साल युद्ध करके अफीम के व्यापार का अधिकार वापस पा लिया जो 'अफीम युद्ध' नाम से जाना जाता है। इस प्रकार संसार के संपन्न राष्ट्र अपने व्यावसायिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए सभी प्रकार के कूटनीति अपनाते हैं। विकासशील एवं विकसित राष्ट्र इनकी कूटनीति के आगे घुटने टेकने के बजाय और कुछ नहीं कर सकते। प्रसिद्ध समाजवादी चिंतक सच्चिदानंद सिन्हा ने इस तथ्य को रेखांकित किया है — ''भूमंडलीकरण और उन्मुक्त बाजार व्यवस्था में सारे संसार के कल्याण की कल्पना विशाल औद्योगिक प्रतिष्ठानों का अपने हित को संसार के हित के रूप में देखने के रुझान की ही अभिव्यक्ति है।''[3]

1990 से भारत में भूमंडलीकरण का प्रभाव शुरू हुआ। इसका सबसे अधिक प्रभाव आर्थिक क्षेत्र में पड़ा। 1990 तक भारत में विदेशी वस्तु एवं व्यापार पर प्रतिबंध लगा

दिया था। 1991 में सरकार ने इन अवरोधों को हटा दिया जो उदारीकरण के नाम से जाना जाता है। इससे आयात और निर्यात में सरकार का नियंत्रण कम हो गया और व्यवसायियों को स्वतंत्रता से निर्णय लेने का अवसर मिल गया। आर्थिक उदारीकरण के कारण अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत की ओर आकृष्ट हुए। बढती विदेशी कंपनियों के कारण भारत के अपने उद्योग तहस-नहस हो गए और गाँव परावलंबी बन गए। कृषि प्रधान देश होने के नाते भारत में जो आर्थिक नीति अपनाई जाती है उसमें किसानों को प्रमुखता देना चाहिए था। लेकिन बढ़ती कृषक आत्महत्या से हम इस नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि भूमंडलीकरण से किसानों का कोई सकारात्मक परिवर्तन नहीं हुआ। गरीबी, बेरोज़गारी, महँगाई और अभाव चरम सीमा पर पहुँच गए। आर्थिक विकास के लिए जो योजनाएँ बनाए थे वह नाकामयाब सिद्ध हुए। भूमंडलीकरण ने पूरे विश्व में जिस आर्थिक असमानता को जन्म दिया था उसी आर्थिक असंतुलन का सामना भारत को भी करना पड़ा।

आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक क्षेत्रों में भी भूमंडलीकरण का व्यापक प्रभाव पड़ा। इससे भारतीय समाज और संस्कृति के प्रत्येक पहलू प्रभावित हुए जिसका प्रमाण हम भारतीय महानगरों, शहरों एवं गाँवों में देख सकते हैं। भूमंडलीकरण भारत की पुरानी सांस्कृतिक विरासत को नष्ट कर एक वैश्विक संस्कृति को थोप रहा है, जो पश्चिमीकरण से प्रभावित हैं। पश्चिम के अंधानुकरण से संयुक्त परिवार टूटकर एकल परिवार के रूप में बदल गया, पति पत्नी के बीच के तनाव के कारण तलाक जैसे कदम उठाए जाने लगे, भूमंडलीकरण के कारण देश की सीमा मिट गई तो विस्थापन की समस्या का सामना करना पड़ा तथा लोग ज़्यादा से ज़्यादा रिश्ते बनाने लगे लेकिन संबंधों में पहले जो

ऊष्मा थी वह नष्ट हो गयी। सांस्कृतिक मूल्य अपना महत्व खो दिया। गाँव से शहरों की ओर लोगों का पलायन, निम्न जीवन स्तर, पारिवारिक विघटन, व्यक्तिवादी मनोवृति की ओर झुकाव, सहनशीलता की कमी, वृद्ध लोगों को बोझ समझने की प्रवृत्ति,मासूम लोगों की हत्या, नारी को केवल देह समझने की प्रवृत्ति, उपभोक्तावादी संस्कृति आदि भूमंडलीकरण के परिणाम है।

भूमंडलीकरण के भयानक दौर से गुज़रते भारतीय समाज और उसके बदलते मूल्यों का चित्रण करने वाला उपन्यास है काशीनाथ सिंह का 'रेहन पर रग्घू'। 2011 के साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित इस उपन्यास में मानव संबंध और संवेदना में आए बदलाव को रेखांकित किया है। दरअसल यह नए युग की वास्तविकताओं की गाथा है। पहाड़पुर गाँव के एक मध्यवर्गीय गृहस्थ प्रो. रघुनाथ इस उपन्यास का नायक है जो प्राचीन सभ्यता और संस्कृति को सब कुछ मानता है। उनके लिए अपने गाँव की ज़मीन सबसे अधिक मायने रखता है। उस भूमि को बचाने के लिए उन्हें जिन कठोर परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, वह भूमंडलीकरण का ही उपज है। गाँव में भूमंडलीकरण का जो प्रभाव हुआ है उसी का सजीव चित्रण इस उपन्यास में मिलता है। साथ ही निरंतर एकाकीपन की ओर अग्रसर होने वाले आधुनिक मानव के जीवन की विडंबनाओ का चित्रण भी इसमें मिलता है।

भूमंडलीकरण से उत्पन्न उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण समाज में अर्थ का महत्व बढ़ गया है। उपन्यास की सारी घटनाएँ अर्थकेन्द्रित है। प्रो. रघुनाथ अपनी पत्नी शीला, दो बेटे और एक बेटी के साथ जीवन बिता रहे थे। रघुनाथ अपने बेटे संजय की शादी कॉलेज के

मैनेजर की बेटी के साथ करना चाहता था। लेकिन संजय का मन अपने प्रोफेसर की बेटी सोनल से लगा हुआ था। संजय राँची में सॉफ्टवेयर इंजीनियर था। वह विदेश जाना चाहता था और सोनल से उसकी शादी एक चाल थी जिससे वह कैलिफोर्निया पहुँच पाए। रघुनाथ ने उसे अच्छी तरह पहचाना है। उनके शब्दों में "संजय ने शादी की। वहाँ की, जहाँ चाहा, जहाँ उसे अपना हित दिखा, भविष्य दिखा!"[4] अपनी तरक्की के लिए उसने अपने माता-पिता की रज़ामंदी के बिना ही सोनल से शादी कर ली। इससे रघुनाथ को बहुत बड़ा आघात लगा। लेकिन पैसों से भरा ब्रीफकेस जब उसके हाथ में पहुँचा तो उसका मन खिल उठा। पैसों की शक्ति देखिए- "रघुनाथ ने ब्रीफकेस खोला तो भाव विभोर! बेटे संजय के प्रति सारी नाराज़गी जाती रही! रुपयों की इतनी गड्डियाँ एक साथ एक ब्रीफकेस में अपनी आँखों के सामने पहली बार देख रहे थे और यह कोई फिल्म नहीं, वास्तविकता थी।"[5]

रघुनाथ अपने दूसरे बेटे धनंजय को एम.बी.ए करने के लिए नोएडा भेजा था। लेकिन उसने पढ़ाई में ध्यान देने के बदले विजया नामक महिला और उसकी बच्ची के साथ जीना शुरु कर दिया। वह उस महिला की कमाई पर अपनी ज़िंदगी आराम से बिताना चाहता था ।वह अपनी मस्त ज़िंदगी के लिए धन कमाना चाहता है और उसके लिए किसी भी हद तक गिरने को तैयार था। पिता से वह सब कुछ छिपाकर रखना चाहता है। लेकिन पिता ने उसे ठीक ही पहचाना है- "वह 'शार्टकट' से बड़ा आदमी बनना चाहता है! उसके लिए बड़ा आदमी का मतलब है 'धनवान' आदमी। और वह भी बिना खून पसीना बहाए, बिना मेहनत के। वह महत्वाकांक्षी लड़का है लेकिन लालच को की महत्वाकांक्षा समझता है।"[6]

बेटों के सामान रघुनाथ का भतीजा नरेश से उनका संबंध भी अर्थ केंद्रित है। वह

रघुनाथ का ज़मीन हड़पना चाहता है और उसके लिए वह उनसे अमानवीय बर्ताव करते हैं। यहाँ तक कि गुंडों से उनकी पिटाई भी करता है। इस प्रकार संजय की शादी से लेकर रघुनाथ के अपहरण तक उपन्यास की सारी घटनाएँ अर्थ केंद्रित ही है।

भूमंडलीकरण के कारण सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन और परंपरा को नकारने की प्रवृत्ति की तीव्रता का जीवंत चित्र 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में हमें मिलता है। रघुनाथ अपने बेटे संजय को समझाते हैं "कोई तुम्हारे लिए ज़रा सा भी कुछ करता है तो उसे भूलों मत, याद रखो और अवसर मिले तो उसके लिए जो कुछ कर सकते हो, करो। इसी जन्म में उऋण हो जाओ। इससे बड़ा सुख दूसरा नहीं!''[7] लेकिन बेटे का जवाब है- "आप कृतज्ञ होने के लिए कह रहे हैं कि पैरों में बेड़ी पहनने के लिए!..."[8] इस प्रकार मूल्यों के विघटन से दो पीढ़ियों के बीच एक खाई पैदा हो गई है। पुरानी पीढ़ी प्रेम, विश्वास, आदर, सम्मान आदि पर विश्वास रखते थे तो नयी पीढ़ी स्वार्थ से प्रेरित होकर पैसा, प्रगति आदि के पीछे भागने वाले थे। ''वास्तव में भूमंडलीकरण सभी नैतिक परिकल्पनाओं को तोड़कर पृथ्वी को एक मंडी यानी कि पूंजीपति के लिए एक बिहारभूमि बना रहा है।''[9] इस प्रकार भूमंडलीकरण ने हमारे पुराने मूल्यों को बदल दिया और मूल भारतीय संस्कृति को नष्ट कर दिया।

तरक्की पसंद आधुनिक मानव गाँव से शहर और शहर से विदेशों में जा बासने में ही अपने जीवन की सफलता समझती है। इसके लिए वे जीवन मूल्यों को ताव पर रखते हैं। विदेश जाकर ऊँचे पद हासिल करना उसके जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने इस मनोवृति के पीछे छिपे खतरे से हमें वाकिफ़ कराने का प्रयास किया है। ''परदेश में सब कुछ है, इज्ज़त नहीं है! चाहे जितने कमा लो, रहोगे तो दो नंबर के ही आदमी।

दो नंबर माने दो कौड़ी।''[10]

आज भूमंडलीकरण से मात्र शहर ही प्रभावित नहीं है बल्कि यह गाँवों एवं कस्बों में भी पहुँच चुका है। लोगों के रहन-सहन, खान-पान, आचार विचार शिक्षा सभी क्षेत्रों में हम इसका प्रभाव देख सकते हैं। भारतीय किसान ट्रैक्टर, थ्रेशर जैसे उपकरणों का इस्तेमाल करने लगे हैं। यहाँ तक कि वे रसायनिक खादों का भी उपयोग करते हैं जिसके दुष्परिणामों के बारे में ये अनभिज्ञ हैं। ''बैल सिर दर्द और बोझ है, फालतू है, दुआर गंदा करते हैं, उन्हें हटाओ! उनके गोबर भी किस काम के? उनसे उपजाऊ तो यूरिया है!''[11] इस प्रकार किसान अनजाने ही अपनी मिट्टी को प्रदूषित करता है।

भूमंडलीकरण से उत्पन्न मानसिकता ने मनुष्य को विकृत, विक्षिप्त एवं संवेदनहीन बना दिया है। उसमें कुंठा, निराशा, अकेलापन और अजनबीपन उत्पन्न हुआ है। महानगर ने मनुष्य को कठोर, भवहीन एवं खोखला बना दिया है। संवेदनहीन एवं यांत्रिक जीवन बितानेवाले इनमें इतनी मूल्यच्युति हो चुकी है कि वह हिंसा के मार्ग को अपनाकर भी अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है। रघुनाथ का भतीजा उनका ज़मीन हटपने के लिए दो गुंडों को उनके पास भेजते हैं। गुंडों के हाथ में जो रिवाल्वर है उसे देखकर भी रघुनाथ को डर नहीं लगता। बाहरवालों से लड़ना उनके लिए आसान था लेकिन अपने बेटों की संवेदनहीनता के आगे वे विवश थे। वे यही जानना चाहते थे कि उनके बेटे उन्हें छुड़ाने के लिए आएँगे या नहीं। इस घटना के द्वारा लेखक मानवीय रिश्तो में आए यांत्रिकता और संवेदनहीनता की ओर संकेत कर रहे हैं। शहर से लेकर गाँव तक हर आदमी को भूमंडलीकरण से उत्पन्न समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। आधुनिक मानव भूमंडलीकरण की समस्याओं से

चारों ओर से घिरे हुए हैं। अब हम इन समस्याओं के प्रति सतर्क न रह जाएगा तो हमारी संस्कृति का सर्वनाश सुनिश्चित है।

सहायक ग्रंथ सूची

1.अमित कुमार सिंह- भूमंडलीकरण और भारत परिदृश्य औरविकल्प पृ.25

2.श्रीधरन पालायी -आधुनिक हिंदी कविता से साक्षात्कार पृ.90

3.सच्चिदानंद सिन्हा-भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ पृ.106

4.काशीनाथ सिंह - रेहन पर रग्घू पृ.88

5.काशीनाथ सिंह - रेहन पर रग्घू पृ.26

6.काशीनाथ सिंह - रेहन पर रग्घू पृ.89

7.काशीनाथ सिंह - रेहन पर रग्घू पृ.133

8.काशीनाथ सिंह - रेहन पर रग्घू पृ.133

9.एन मोहनन - समकालीन हिंदी उपन्यास पृ.34

10.काशीनाथ सिंह - रेहन पर रग्घू पृ. 65

11.काशीनाथ सिंह - रेहन पर रग्घू पृ.79

Dr.Majida M
Department of Hindi
Govt. Co l lege for Women
Thiruvananthapuram
Ph:9745524215
majishyam@gmai l.com

****

15

भूमंडलीकरण से ऊसर हुए कृषक मन को उर्वर बनाने का साहित्यक उद्यम- 'फांस'

डां.पूर्णिमा.आर

भूमंडलीकरण की अनुगूंज आज संसार के चारों तरफ सुनाई जा रही है। विश्व की अर्थव्यवस्था भूमंडलीकरण की प्रकिया से गुज़र रही है। आज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक चर्चा का केन्द्र बना हुआ है भूमंडलीकरण। हर तथ्य को इसके सन्दर्भ में देखना आज सहज है।

भूमंडलीकरण शब्द का संबन्ध वाणिज्य, व्यापार से जुडा हुआ है। यह संचार और प्रौद्योगिकी एवं पूंजी के क्षेत्र से आया हुआ शब्द है। इसमें विश्व बाज़ार को एक ही क्षेत्र में देखा जाता है। भूमंडलीकरण में प्रत्येक देश का अन्य देशों के साथ वस्तु, सेवा,पूंजी और बौद्धिक संपदा का बिना किसी प्रतिबन्ध का आदान-प्रदान है। 1991 में तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिंहराव सरकार में वित्तमंत्री मनमोहन सिंह ने भूमंडलीकरण को स्वीकार किया। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक असमानता बढने लगी। विदेशी पूँजी का प्रवाह होने लगा। नवीन से नवीनतम बनने की कोशिश में लोग अंधाधुंध कर्ज लेने लगे।

भूमंडलीकरण से इनसान के व्यवहार में बदलाव आया,साथ ही साथ उनके विचार भी बदले। आज का इंसान वैश्विक इन्सान बन चुका है। भूमंडलीकरण ने इनसान को बाज़ार के तौर पर देखना सिखा दिया है। इसके परिणामस्वरूप मुनाफा पहले और इनसान बाद में

विचारधारा का ज़ोर होने लगा। समाजवादी विचारों के बदले बाज़ारीकरण का माहौल भूमंडलीकरण ने तैयार किया।भूमंडलीकरण की प्रतिक्रिया स्वरूप इनसान के समक्ष अपनी अस्मिता की रक्षा एक प्रश्नचिह्न बन गई।

भूमंडलीकरण के समय की तमाम विसंगतियों और जटिलताओं की अभिव्यक्ति उस दौर हिन्दी में लिखी रचनाओं में हुई है। हिन्दी उपन्यासों पर दृष्टि डाले तो हम पाते हैं कि समाज के बदले हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति इस विधा में हरेक युग में बखूबी ढंग से हुई है। असत्य का ध्वंस और सत्य का अनवरत खोज उपन्यास विधा की पहचान है। न्याय और जनपक्षधरता से यह विधा काफी जुडा हुआ है। इस दृष्टि से देखे तो हिन्दी में 2015 प्रकाशित संजीव द्वारा लिखा 'फांस' उपन्यास काफी महत्वपूर्ण है।

आर्थिक दृष्टि से वैश्वीकरण ने एक साथ संपन्नता और विपन्नता के दो वर्गों को पैदा किया। दुनिया के लोग दो खेमों में बंटे। जिनको इससे काफी मुनाफा हुए, वे इनका जयजयकार करने लगे,दूसरे वर्ग इसके दबाव से अपने को पराजित महसूस करने लगे। किसान वर्ग इस तरह की परेशानी को भोगनेवाले थे। संजीव का 'फांस' उपन्यास भूमंडलीकरण से दबे हुए किसान की परेशानी और व्यथा को प्रस्तुत करता है।

भारत की आत्मा गाँवों में बसती है तो यहाँ की जनता का अन्नदाता है किसान। देश की अर्थव्यवस्था में किसानों का अहम योगदान है। खुद किसान नंगा था,भूखा था,फिर भी देश की अर्थव्यवस्था उनके हाथों में सुरक्षित रही थी। वैश्वीकरण का चेहरा अपनी तमाम क्रूरता के साथ किसान के सम्मुख खुल उठता है। उनके सामाजिक,आर्थिक और पारिवारिक जीवन को इसने विद्रूप कर दिया। देश की अर्थव्यवस्था के कर्णधार किसान कर्जदार बने तो

उनके सामने रक्षा का कोई उपाय न रहा। उसने मृत्यु का आसरा लिया। उनकी मृत्यू के बुनियादी कारणों की छानबीन करने का प्रयास इस उपन्यास में हो रहा है।

संजीव की लेखकीय प्रतिबद्धता का स्पष्ट निशान है 'फांस' उपन्यास। जिस विषय पर वे लिखना चाहते हैं,शोधार्थी की भाँति शोध करते हैं, उसकी पडताल करते हैं,समाधान ढूंढते हैं। फिर लिखने बैठ जाते हैं। भूमंडलीकरण का दौर किसानों की आत्महत्या का दौर था। भूमंडलीकरण के बाद देश भर में सबसे ज्यादा आत्महत्याएँ विदर्भ से रिपोर्ट की गई। हिन्दी भाषी संजीव मराठी क्षेत्र में आये, वे विदर्भ में रहे, आत्महत्या करते किसानों के परिवारों के दुख में शामिल हुए,किसानों की समस्याओं को समझे। बेचैनी के कारण रात भर वे सो नहीं पाते, लगातार रोते रहे। उसके बाद इन समस्याओं को उपन्यास का रूप दे दिया। यह है 'फांस'।

फांस उपन्यास में महाराष्ट्र के यवतमाल जिले के बनगाँव के किसानों की ज़िन्दगी चित्रित है। देश भर पिछले दो दशकों से बढ रही किसानों की आत्महत्याएं इस उपन्यास की पृष्ठभूमि है। आन्ध्राप्रेदेश और कर्णाटक के किसानों सहित भारत के सभी किसानों की कहानियाँ इसमें शामिल है। कृषक जीवन की भयावह सच्चाई को उन्होंने इस उपन्यास में मुखर किया।

फाँस उपन्यास किसानों की फांस की बात करता है। लेखक ने कहा है कि 1997 से लेकर 2006 के बीच यहाँ 15000 किसानो ने आत्महत्या की। समूचे देश में यह संख्या ढाई लाख तक पहूँच गई थी। केवल विदर्भ के 11 जिलों में 30,000 किसानों ने आत्महत्या की।

परंपरागत उपन्यासों की तरह यह एक पात्रकेन्द्रित उपन्यास नहीं, बल्कि समस्याएँ

इसमें बडी भूमिका अदा करती है। विदर्भ एवं वहाँ के जनजीवन इसमें पूरी तरह उभरकर आए है। विदर्भ विशेषकर बनगाँव का समाज,वहाँ के लोगों की मानसिकता,उनकी जीवनदृष्टि,क्षेत्रीय संस्कृति,सरकारी नीतियां और उनके परिणाम आदि की विशेष चर्चा उपन्यास में है।

किसान के लिए कृषि जीवनोपाधि मात्र न है,जीने का तरीका है। उपन्यास में किसानों की जिंन्दगी का कडवा यथार्थ समग्रता से चित्रित है। यद्यपि उपन्यास के केन्द्र में शिबु का परिवार है, अनेक प्रभावी चरित्र भी हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं— शकुन, कलावति, विजयेन्द्र, सुनिल काका, मोहनदास बाधमारे, महिला किसान आशाबाई आदि। शिबु का गाँव यवतमाल जिले का बनगाँव है। यहाँ की आबादी में ब्राह्मण, राजपूत, मराठा तथा मामूली जोत के दलित और पिछडे है। बनगाँव के लोगों का प्रमुख व्यवसाय खेती और जंगल संपत्ति है। खेती के साथ उसका माँ-बच्चे का खूनी रिश्ता है। यहाँ सरकारी व्यवस्था इतनी भयावह है कि मोटर साईकिल के लिए बहुत आसानी से कर्ज मिलता है। लेकिन किसान द्वारा खेती के लिए जब कर्ज माँगे जाते हैं, उस के लिए लाख बहाने और नियम आडे आ जाते हैं। इससे परेशान होकर वह साहूकार से या महाजन से कर्ज ले तो उस केलिए व्याज की दर बहुत अधिक होता है। प्रकृति के प्रकोप से फसल की बरबादी होने पर किसान टूट जाता है। अब उसे कर्ज को चुकाने के लिए नया कर्ज लेना पडता है। उसके सामने अब आत्महत्या के सिवा कोई चारा न रह जाता। शकुन का यह कथन बडा सटीक है ''इस देश में किसान कर्ज में ही जन्म लेता है,कर्ज में ही मर जाता है।''1

संजीव इस उपन्यास में सरकारी नीतियों की आलोचना करते हैं। साथ ही साथ

प्रशासन, नेता, सेवक,बैंक,कर्मचारी और किसानों पर भी कई सवाल उठाते हैं। वे बताते है, ''यहाँ तो सब गलत ही गलत है, इसलिए कि कोई भी चीज़ अपनी माटी पानी की नहीं, विदेशी बीज, विदेशी कर्ज,विदेशी गाय, विदेशी नीति और यहाँ का सूखा किसान और सूखी धर्ती''। 2 किसान की अज्ञता और सरकार की बेपरवाही पर लेखक यहाँ इशारा करते हैं.।

भारतीय किसान ज़हर पीकर,आग में जलकर, गले में फांसी का फंदा लटककर दर्दनाक मौत को अपनाते हैं। इसके कारणों को खंगालने की कोशिश करते हैं संजीव। लेखक की मान्यता है कि विदेशी ज्ञान का प्रयोग देशी किसानों पर करना उचित नहीं,यह देशी मिट्टी पर बलात्कार करने के समान है। बजाय इसके अपनी मिट्टी और देशी लोगों के अनुकूल विकास की नीतियाँ बनानी ज़रूरी है। विद्वान, कृषि, अर्थशास्त्री की गलतियाँ किसानों के गले में फाँस बनकर अटक जाती है। किसान को केवल पानी और ठोस सिंचाई व्यवस्था की ज़रूरत है। पानी की मांग भी मुफ्त नहीं, पैसे देकर। विदेशी गाय, विदेशी बीज, विदेशी पौधे, विदेशी नीतियाँ, विदेशी दवाइयाँ, विदेशी खाद और विदेश में पढे सो कोल्ड विद्वान,कृषि और अर्थशास्त्री भारतीय कृषि-व्यवस्था की वाट लगा रहे हैं और किसानों को आत्महत्या करने के लिए मज़बूर कर रहे हैं। ऐसे में किसान का मन खेती में लगना मुश्किल है।

भूमंडलीकरण की मार ने किसानों को नुक्सान पहूँचाया। सरकार ने 1991 में भूमंडलीकरण को अपनाया। 2004 में किसानों की आर्थिक दशा को सुधारने और अनाज की पैदावार बढाने के लिए केन्द्र सरकार ने एम.एस स्वामिनाथन आयोग का गठन किया। पक्ष विपक्ष के सभी दलों ने कम्मीशन की रपट को स्वीकार किया,लेकिन इसे लागू करने के

लिए कोई तैयार नहीं हुए। फलस्वरूप किसानों की समस्या का अन्तिम हल न निकला।

हरित क्रान्ति के बाद वैश्वीकरण आया तो किसान अस्तित्वहीन हो गए। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ मुनाफा कमाने यहाँ आयी, उन्हें किसानों से कोई लेना-देना न था। विकास के अविवेकपूर्ण मांडल ने सारे देश के किसानों को तबाही के रास्ते पर धकेल दिया। विकास के नाम पर,विदेशी गाय को खरीदा गया, ये गाय तीस-तीस किलो दूध भी देती है,तब समस्या अत्यन्त विकराल हो जाती है। इतना दूध देनेवाली गायों को खिलाए क्या। दूध बेचने बाज़ार निकले तो उसके खरीददार नहीं। बस सरकारी दलालों की बन आई।

किसानों की अशिक्षा और अज्ञानता का लाभ उठाते है सरकार और बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ। ये B.T cotton नामक बीज का इस्तेमाल करने के लिए किसानों को फुसलाते हैं। ये बीज अमरिक्का के मेक्सिक्को से है। किसान कर्ज लेकर बीज खरीदता है और खेती में इसका इस्तेमाल करता है। इसका उपयोग उनकेलिए आत्मघाती सिद्ध हो जाता है। ज़मीन की उर्वरता नष्ट हो जाती है।तमाम तरह की बीमारियों से फसल बरबाद होते हैं। विदेशी बीजों से हुए नुक्सान को संजीव ने स्पष्टता से लिखा –''मिलीबाग नामक कीडा बी.टी के आने के पहले भारत में नहीं देखा गया था। बी.टी मिलीबाग को लेकर आया...''3। बी.टी बीज के फसल के कारण मोनसेंटो कंपनी को 1600 करोड का फायदा हुआ। बिचौलिए और दलाल मालामाल हुए। दूसरी और इस कीडे और गाजर-घास से हरी-भरी खेती बरबाद हो रही है। गेहूँ और कपास के साथ अन्य फसल भी इससे बिगडते हैं। इसके नियंत्रण की ज़हरीली दवाइयों के छिडकने से खेती का और प्रकृति का सर्वनाश हो जाता है।फसल की बीमारी और दुरुस्त हो जाती है,खेती के लिए पोषक कृमि-कीटक मर जाते हैं और पर्यावरणीय संतुलन

बिगडने लगता है। बैंक इस फसल के लिए कर्ज देते हैं, लेकिन किसानों की बुनियादी ज़रूरतें -जैसे शिक्षा,स्वास्थ्य,शादि आदि के लिए उन्हें कर्ज नहीं मिलता हैं। इस के लिए उन्हें गाँव के साहूकारों के पास जाना पडता है और उनसे दस प्रतिशत व्याज में कर्ज लेना पडता है।

उपन्यास में किसान शिबु ने भी कर्ज लिया।''कुएं के लिए सरकारी बैंक से कर्ज लिया था। उसी कर्ज ने उसके जीवन की सारी खुशी सोख ली'' ।4 अपना सब कुछ उसे नष्ट ही हुआ। वह बाल बच्चों को नया कपडा पहन न सका। मिट्टी की उर्वरता बरबाद होने पर भी वह अत्यन्त दुखी हुआ। क्यों कि किसानों की बडी शक्ति है ज़मीन की उर्वरता और जीवन्तता। निराशा में डूबे शिबू अपने बनाए गए कुए में आत्महत्या कर लेता है।

वैश्वीकरण की समस्याओं को ज़्यादा खतरनाक बनाने में मीडिया की बडी भूमिका है। मीडिया जिसे प्रजातंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है,इनकी नीति में अब प्रजा नहीं,तंत्र और कुतंत्र ही है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के गुलाम बन उनकी जुबानी बोल रहा है मीडिया। साथ ही साथ किसान की समस्या और दारू पीने की बात का झूठा प्रसार कर रहा है। मीडिया की प्रतिबद्धता पैसे के प्रति अधिक है, समाज को ये अनदेखा करते हैं। संजीव ने 'पेड न्यूज़' शब्द का जो प्रयोंग किया, वह मीडिया की प्रतिबद्धहीनता का परिचायक है। विदर्भ के किसानों की आत्महत्या का अत्यंत महत्वपूर्ण कारण बी.टी.काँटन है। ''बावजूद मीडिया ने बी.टी कपास की सफलता की बात फैलायी'' ।5 सरकारी नीति को अनदेखा किया।

यह उपन्यास किसान और खेती के संबन्धों को और अधिक दृढ बनाता है। इतनी विकराल समस्याओं से जूझने के बाद भी किसान, किसानी छोडने के लिए तैयार नहीं होता है। घोर निराशा में भी शिबू खेती नहीं छोडता, शिबू की आत्महत्या के बावजूद पत्नी शकुन

खेती से संबन्ध तोड नहीं पाती, कला अपने गाँव में रहकर खेती के क्षेत्र में अनुसंधान करना चाहती है,विजयेन्द्र खेती में करिअर बनाना चाहता हैं,सुनिल वाघमारे कसाई को अपना बैल बेचने पर पूरी ज़िन्दगी पश्चात्ताप करता रहता है । इस तरह का आस्थावादी स्वर पूरे उपन्यास में मुखर उठता है।

प्रेमचन्द के गोदान के बाद हिन्दी में लिखा सबसे सशक्त किसान-केन्द्रित उपन्यास है संजीव का 'फांस'। किसानों की आत्महत्या के बीज संजीव असंतुलित अर्थव्यवस्था और व्यवस्थाहीन सामाजिक संरचना में पाते हैं। प्रेमचन्द युग में किसान के लिए खेती माँ के बराबर थी। किसी भी हालत में वह खेती बेचने को तैयार न था। वैश्वीकरण के आने के बाद उसके जाल में फंसकर किसान ने कम खेती करना शुरू किया,ज़मीन को बेचना शुरु किया। उत्तम नौकरी,मध्यम व्यापार और अधम किसान वाली अवधारणा भूमंडलीकरण की त्रासद अभिव्यक्ति है। इस त्रासदी से किसान-समुदाय की मुक्ति करके उनमें आत्मविश्वास जगाने का दृढ संकल्प लिया है लेखक। खतरे की घंटी बजाकर वे हमें चेतावनी देते हैं साथ ही साथ आत्महत्या के विरुद्ध दृढ आत्मबल प्रदान करते हैं । बंजर बने कृषक मन को उर्वर बनाने में और उनमें नयी प्राणशक्ति फूंकने में कथाकार एकदम सफल हुए है।

संदर्भ ग्रन्थ

1.फांस,संजीव, वाणी प्रकाशन पृ.सं-104

2.फांस,संजीव, पृ.सं- 69

3. वही, पृ.सं-189

4.वही,पृ.सं-104

5.वही,पृ.सं-190

6. हिन्दी में भूमंडलीकरण का प्रभाव और प्रतिरोध -सूरज पालिवाल

7. भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास – सं.नीरू अग्रवाल

डां.पूर्णिमा.आर

सहायक

प्राध्यापिका

सनातन धर्म कांलज ,आलप्पुष़ा

****

16

अपनी ही राख से पुर्नसृजित होने का स्वप्न

प्रज्ञा

प्रेम शब्द जितना सुखद और रूप, रस, गंध, श्रवण, स्पर्श से भरा हुआ है उतना ही वह मनुष्य के भीतर मनुष्यता को बचाए रखने का संभवतः अंतिम कोना भी होता है। पर प्रेम का इतिहास इस बात की गवाही नहीं देता। मानव मन का सबसे कोमलतम भाव मानव समाज के सबसे क्रूर प्रहारों का केंद्र बनता है। हत्याएं, आत्महत्याएं और जघन्यतम अपराध की वेदी पर प्रेम को अनेक बार जलते, नष्ट होते फिर अपनी ही राख से एक नए रूप में उठ खड़े होते भी देखा गया है- फीनिक्स की तरह। जो जलता तो है पर नष्ट नहीं होता। जो बुझता तो है पर सुलगता रहता है। जो नफरत की कठोर चट्टानों के बीच अंकुर की तरह फूटता भी है और समाज की बर्बर मनुष्य विरोधी सत्ताओं को चुनौती देता बार-बार खड़ा होता है। कभी यहां ,कभी वहां। कभी इस अंचल में, कभी उस अंचल में। कभी उस युग में, कभी इस युग में। कभी इस देश में तो कभी उस देश में। कई बार लगता है कि प्रेम करने वालों की मिट्टी कुछ और ही होती है। ये माटी कबीर की 'सीस उतारे भुईं' धरे वाले रूप और बोधा के ' प्रेम को पंथ कराल महा तरवारि की धार पै धावनौ है'- शब्दों की रंगत जैसी है। इस रंग-रूप वाले जैसे आग की नदी में गोते खाते हैं और मुस्कुराते हैं। पार उतरते हैं या डूब जाते हैं। उनके जलने से आग की नदी और अधिक पवित्र और अधिक मानवीय और अधिक चमकीली होती चलती है। उसकी चमक से और-और प्रेम करने वाले उसकी ओर बढ़े चले आते हैं।

वरिष्ठ नाटककार-कथाकार ऋषीकेश सुलभ का पहला उपन्यास 'अग्निलीक' प्रेम के पक्ष और स्त्री जीवन की अंतर्लय को उसके सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक-आर्थिक स्तर पर ठोस रूप में पकड़ता है।

प्रेम की इसी चमक और आकर्षण के कारण उपन्यास में जसोदा और उसकी चौथी पीढ़ी की रेवती कब समय के अंतराल को पारकर एक-दूसरे में घुलमिल जाती हैं यह पता ही नहीं चलता। जसोदा जैसे रेवती हो जाती है पर रेवती को जसोदा से भी अधिक क्रूरताओं का सामना करना पड़ता है। समय की भूमि पर भौतिक विकास की रेखाएं अवश्य दृढ़ होती हैं। शक्ति, सम्पन्नता, एश्वर्य, वर्चस्व सभी जसोदा की स्थितियों से आगे बढ़कर रेवती की पीढ़ी देखती है, पर स्त्री जीवन में प्रेम की सहज लीक बना पाना, उसे समग्रता में जीना चौथी पीढ़ी में भी असंभव जान पड़ता है। सवाल उठता है कि आजादी के कुछ समय पहले के वर्षों और इक्कीसवीं सदी के सोलह वर्ष बीतने के बाद भी जातिगत पूर्वाग्रह, धार्मिक जड़ताएं,स्त्री की पराधीनता न सिर्फ पूर्ववत बनी हुई है बल्कि उसकी स्थितियां और अधिक जटिल क्योंकर हुई हैं? स्त्री के लिए शिक्षा के रास्ते भले ही सुगम और कुछ लचीले हुए हैं पर खुदमुख्तारी के रास्ते आज भी कंटकित हैं। इसलिए उपन्यास स्त्री के संदर्भ में एक ऐतिहासिक जड़ता और स्त्री पराधीनता की लीक को भी सामने लाता है।

बिहार के अंचल को सुलभ अपनी कहानियों-नाटकों में गहराई से सामने लाते रहे हैं। वास्तव में रचनाकार अपने परिवेश से ही यथार्थ का लोक चुनता और रचता है। ऋषीकेश सुलभ का बहुचर्चित नाटक 'अमली' हो या फिर उनकी कहानी 'अग्नि जो लागी नीर में'- उनके पाठकों को 'अग्निलीक' पढ़ते हुए दोनों का स्मरण हो आना सहज, स्वाभाविक है। एक

तरफ सामंती व्यवस्था में पिसती अमली की दारुण कहानी है तो दूसरी ओर सामंती-पूंजीवादी दुष्चक्र में सताई जा रही माधुरी देवी हैं। एक परिस्थितियों की शिकार है तो दूसरी परिस्थितियों से लोहा लेती हुई उस नारकीय तंत्र को अपने साहस से भेदती है। उसका निजी प्रतिशोध सामने आता है। 'अग्नि जो लागी नीर में' कहानी के कई अंश हमें 'अग्निलीक' में भिन्न संदर्भों में मिलते हैं पर सवाल उठता है कि 'अग्निलीक' की रेवती क्या माधुरी देवी बन पाएगी? इस सवाल के जवाब तीन धरातलों पर खोजे जा सकते हैं- रेवती के शिक्षित संस्कार, उसके शिक्षित और विवेकवान दलित प्रेमी मनोहर रजक की रेवती के भाई सुजीत सिंह द्वारा हत्या और रेवती का मुखिया पद के लिए चुनाव लड़ना।

एक तरफ रेवती अपनी आजी (दादा की मां) जसोदा की अपेक्षा मुक्त हो रही है। उसे अपनी आजी की मृत्यु से पहले शिक्षा और इच्छानुसार विवाह करने का अधिकार भी मिलता है पर स्त्री के लिए समाज की अमरबेलें अधिकारों का अंतिम सिरा अपने हाथों में कसकर थामे रखती हैं। इसलिए शिक्षित संस्कार और सत्ता के गलियारे में कदम रखती रेवती भी पराधीन ही है। इच्छा न होने पर भी चुनाव लड़ने का मौका उसे सहज नहीं मिला है। मुखिया और सरपंच पद महिला को आरक्षित कर दिए जाने के एवज में यह चुनाव उसके जीवन में जबरन उतारा जाता है। उसके दादा और फूफा पूरी योजना बनाकर उसे चुनाव के लिए राजी करते हैं। दादा लीलाधर की पहली पसंद रेवती कतई नहीं है। वह अपने पोते सुजीत सिंह की राजनीतिक परिवार से संबद्ध सुशिक्षित मंगेतर को जल्दी वैवाहिक बंधन में बांधकर परिवार की बहू को चुनाव में उतारना चाहते थे। इस राह में आड़े आता है सुजीत सिंह का स्त्री विरोधी और सत्तालोलुप चरित्र जो विवाह के बाद पत्नी के नाम पर मुखियागिरी करने लगेगा और यह

बात तार्किक पत्नी को रास नहीं आएगी। लीलाधर के बहनोई ही इस समस्या के समाधान के लिए रेवती का नाम सुझाते हैं। रेवती को बड़ी चालाकी से भविष्य स्वप्न दिखाकर चुनाव लड़ने के लिए राजी किया जाता है-''बबुनी,अपने हिसाब से जीने के लिए यह जरूरी है कि ताकत अपने हाथ में हो...ताकत और सत्ता तुम्हारे द्वार पर खड़ी है। ठुकराओ मत इसे। हमारी बात के पेट में छिपी बात को समझो। अभी तो तुम्हें बहुत लड़ना है।'' (पृ. 241)

उपन्यास का अंत एक तरह से स्त्री के जीवन में शिक्षा, प्रेम और सत्ता जैसी स्वाधीनताओं को थोथा और खोखला सिद्ध करता है। सब कुछ रेत होने की स्थिति में रेवती सोचती है-'' रेवती आज आजी का चेहरा याद करती थी, उसे इन्हीं लकीरों में नदियों की जलधाराएं दिखती थीं। आज इन लकीरों में मटमैली रेत भरी थी। रेवती ने अंधेरे में हाथ बढ़ाकर अपनी आजी जसोदा देवी का चेहरा अपनी हथेलियों में भर लिया। एक विलाप-सा फूटा, जो अग्नि-लीक की तरह धरती से आसमान की ओर ऊपर उठता गया।'' (पृ.255) उपन्यास के इस त्रासद अंत पर रेवती भिन्न परिस्थितियों में भी अमली प्रतीत होती है और 'अग्नि जो लागी नीर' में की माधुरी देवी की अपेक्षा उसकी प्रगतिशील छवि की तुलना में कमतर महसूस होती है। समान परिवेश में जूझ रही रेवती और माधुरी का संघर्ष तुलनात्मक आधार पर माधुरी की साहसिक छवि रचता है जो युवा पीढ़ी की अपनी बेटी सुवंती स्नेहा से अधिक प्रगतिशील और अस्तित्व के प्रति अधिक जागरूक होकर पाठक के मन पर अंकित हो जाती है। सवाल उठता है क्या रेवती स्त्री दमन की इस जड़ लीक को तोड़ पाएगी ?

'अग्निलीक' उपन्यास किस्सागोई के अनेक रंगों को सामने लाता है। इसकी पठनीयता पाठक को चकित कर देती है। कथाएं, उपकथाएं,इतिहास, वर्तमान सब घुले-मिले

रूप में संग चलते हैं। भूगोल, इतिहास और किरदारों के जीवन की डिटेलिंग बहुत महीन है। मुखिया लीलाधर, सरपंच अकरम अंसारी, उसके दाहिने हाथ शमशेर साईं, अठारह सौ सत्तावन का संघर्ष, सिवान के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट लिंच, अफीम की खेती, अफीम एजेंट डोनियल,हरिजन टोला,टोटहा टोला, दुसाध टोला, जसोदा, कुसुमी देवी, रेशमा कलवारिन, कुंती, नाज़ बेगम, मुन्नी बी,गुल बानो, मनोहर रजक , अनिल मांझी, अच्छेलाल, अकलू यादव, पिंटू सिंह, नौशेर साईं, गरभू पांडे और ढोंढ़ाई बाबा आदि अनेक किरदारों से यह उपन्यास सजा है। जीवित के साथ मृत और किंवदंती बन गए लांगटू ब्रह्म, मुस्लिम पीर की रोचक कथाएं उनमें सद्भाव और उनसे जुड़े लोकविश्वासों की कथाएं भी पूरी तौर पर उपन्यास में दर्ज हैं। डकैती, अपराध, हत्या की कहानियों के साथ, पुलिस तंत्र की अराजकताएं, राजनीतिक षडयंत्र, बाढ़ के प्रकोप, फसल की तबाही,शराब-गांजा-स्त्री विलास, दलित-सवर्ण संघर्ष, पारिवारिक कलह,दबंगई की कथाएं भी उपन्यास में गंुथी हुई हैं। शिवपूजन सहाय के 'देहाती दुनिया', फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आंचल' जैसे आंचलिक उपन्यासों की कड़ी में 'अग्निलीक' एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। आंचलिक उपन्यासों के ताने-बाने में राजनीति की केंद्रीय भूमिका, अंचल विशेष के विविधवर्णी रंगों की छटा, जातिगत-सामाजिक-आर्थिक संबंधों की जटिलताएं 'अग्निलीक' में बहुत प्रबल रूप में सामने आईं हैं। सिद्धहस्त रचनाकार सुलभ ने जहां एक ओर रोचकता और जिज्ञासा को थमने नहीं दिया है वहां उनके कुशल नाटककार ने कथा में दृश्यों का सजीव अंकन और नाटकीयता का क्रम भी भंग नहीं होने दिया है। अपने आरंभ से ही यह उपन्यास घाघरा और गंडक नदी के आसपास बसे गांवों -मनरौली, देवली, सिवान, हसनपुर,अमरपुर आदि का नजदीकी जायजा

लेता चलता है और पटना शहर की यात्रा भी कराता है। सिवान की धरती पर जातिगत आधार पर बने-बसे टोलों के विश्वास, समय की मांग के अनुसार अन्य टोलों से बने राजनीतिक समीकरणों के चलते यहां नायक यह अंचल ही है। उपन्यास के अनेकानेक पात्र अपनी विशिष्ट कथाओं के बावजूद इस अंचल विशेष में सहनायक की तरह सामने आते हैं।

उपन्यासकार इस अंचल की कहानी को अपराध कथा से आरंभ करता है। मनरौली के निवासी शमशेर साईं की क्रूरतम हत्या से पूरा इलाका स्तब्ध है। जिस व्यक्ति पर सत्ता का हाथ हो जनमाष्टमी के दिन उसकी ऐसी बर्बर मृत्यु कई सवाल उठाती है। कानूनी कार्यवाही लगातार चलती है पर उपन्यास के अंत तक इस हत्या की गुत्थी सुलझती नहीं। मुखिया लीलाधर और सरपंच अकरम अंसारी से पुलिसिया पूछताछ होती है और बाद में अकरम अंसारी को जेल होती है। ये जरूर है मृत शमशेर साईं की विधवा गुल बानो, उसके पिता साहेब साईं उसके अपाहिज और शातिर भाई नौशेर साईं की कहानी आगे बढ़ती है। यह कहानी अपने वितान में स्त्री केंद्रित कहानी बनती चली जाती है। यह इस उपन्यास की खूबसूरती है। बुजुर्ग ससुर, अपाहिज-अविवाहित-कुंठित देवर के साथ कठिन जीवन जीती गुल बानो की संघर्ष कथा सामने आती है। प्रेम करने वाले पति की मौत के बाद शून्य से शुरुआत करने वाली गुल बानो अपने टूटे-बिखरे परिवार को अथक प्रयासों से संवारती है। दूध से आजीविका का इंतजाम करती गुल बानो किस तरह एक ओर शराबी-कबाबी सरपंच अकरम अंसारी की सताई गई रेशमा कलवारिन से जुड़ती है तो दूसरी ओर उसकी रखैल और पीड़िता मुन्नी बी से। मुन्नी बी का निकाह अपने देवर से करवाकर उससे पारिवारिक स्तर पर जुड़कर गुल बानो, मुन्नी बी के आजीवन निस्संतान रहने के सत्य को जानकर बिना

विचलित हुए एक-दूजे के आजीवन संगी-साथी होने की ठोस बात तरल मन से कहती है। परिस्थितयों के संयोग से तीनों स्त्रियों का अपनत्व इस उपन्यास में बहनापे की सुदृढ़ लीक रचता है जो जसोदा-रेवती के प्रेम की लीक की तुलना में बहुत मजबूत और सकारात्मक है। दुख और पीड़ा से उबरी ये तीनों स्त्रियां अपने जीवन-समाज को नया आकार देती हैं। अपनी राख से खुद को संघर्ष की भूमि पर पुनर्सृजित करने की कला इनकी अदम्य जिजीविषा और साहस का ही परिणाम है। गुलबानो के अपने प्रति समर्पित पति की हत्या,अकरम अंसारी पर जान छिड़कने वाली रेशमा से अकरम अंसारी का थानाध्यक्ष गरभू पांडे से उसकी जान बचाने की खातिर देह सौंपने का आदेश और मुन्नी बी का अकरम अंसारी द्वारा किया गया क्रूर यौन शोषण-इन पीड़ाओं से मुक्त होकर ये तीनों किरदार अपनी जिंदगी का नया रास्ता खोजती हैं। अकरम अंसारी के दाहिने हाथ मुन्ना मियां अपनी बहन मुन्नी बी के शोषण से बहुत दुखी हैं पर बाद में उनकी पत्नी नबीहा दोनांे भाई-बहनों के नाते को जोड़ती है। पूरे उपन्यास में दांपत्य का सफल और प्रेम से पगा रूप प्रत्यक्षतः मुन्ना मियां और नबीहा के जीवन में ही दिखाई देता है। शमशेर साईं और उसकी पत्नी गुल बानो के प्रेम के जीवंत दृश्य तो उपन्यास में नहीं हैं पर वे दोनों भी एक-दूसरे के प्रति समर्पित बताए गए हैं। प्रेम की असफलताएं अनके किरदारों की जिंदगी का कटु सत्य है। जसोदा के जीवन से लीलाधर के प्रेम के अंकुर रौंदकर उसका जल्द विवाह और परिवार द्वारा आजीवन संबंधविच्छेद किया जाना दरअसल पितृसत्ता का, एक मुक्त होना चाहती स्त्री से लिया गया बदला है। स्वाभिमानी जसोदा भी कभी अपने मायके का रुख नहीं करती और अपनी संतान का नाम अपने प्रेमी के नाम पर लीलाधर ही रखती है। यही उसका प्रतिशोध है। उपन्यास की मुख्य कथा जसोदा-लीलाधर-कुंती-रेवती आदि की

पीढ़ियों को साथ लिए चलती है।

उपन्यास के अंत में चुनाव के दौरान रेवती, रेशमा से बहुत प्रभावित होती है। जसोदा, जसोदा की बेटी कुंती और उदार परवरिश में पली जसोदा की शिक्षित पड़पोती -रेवती इस कड़ी में मुक्ति संघर्ष में जुड़ती है। निजी स्वतंत्रता की दृष्टि से तो जसोदा और रेवती आगे बढ़ जाती हैं पर पूर्वाग्रहों की चक्की में दोनों का जीवन बर्बाद होता है। इधर बूढ़े अच्छेलाल से मजबूरी में किए गए विवाह को निबाहती रेशमा प्रेम के मामले में बेधड़क है। पति की नाक के नीचे वह पिंटू सिंह और बाद में अकरम अंसारी से संबंध रखती है। लेकिन अकरम अंसारी जब स्वार्थ से संचालित होकर रेशमा को थानाध्यक्ष गरभू पांडे के पास जाने और उसकी देह की सौदेबाजी कर हत्या के इल्जाम से बरी होने की बात सोचता है तो रेशमा का स्वाभिमान आहत होता है। उपन्यास के स्त्री पात्रों में केवल रेशमा और गुल बानो के जीवन में ही गुणात्मक-सकारात्मक परिवर्तन आता है। रेशमा कलवारिन से मणिहारन फिर सरपंच पद की उम्मीदवार और शराबबंदी की नेत्री बनती है। चतुराई से कलाली के धंधे से न सिर्फ अपने बूढ़े पति को निकालती है बल्कि उसकी पूर्व पत्नी के बच्चों के साथ अच्छे संबंध भी बनाती है। एक ओर पारिवारिक समरसता तो दूसरी ओर धर्म की राह पर छठ पर्व को पूरे विधि-विधान से मनाकर वह अपनी धूमिल छवि को चमकाती है। सारे बुरे धंधे छोड़कर वह चूड़ियों और सौंदर्य प्रसाधनों की दुकान खोलती है और लीलाधर के प्रस्ताव पर सरपंच पद के लिए तुरंत स्वीकृति देती है। उसके सपने उसके उजले भविष्य की राह बनाते हैं। गुल बानो उसके चुनाव प्रचार में आगे बढ़कर साथ देती है। स्त्री पात्रों में रेशमा और गुल बानो ही सबसे प्रेरक किरदार हैं। दोनों ही अपनी सामाजिक-आर्थिक मुक्ति और स्वत्व के प्रति सचेत हैं।

लगभग दो-ढाई वर्ष के समय में अतीत की स्मृतियों से एक वृहद कालखंड को समेटता यह उपन्यास सामंतवाद की गहरी जड़ों की शिनाख्त करता है। आजादी के बाद लोकतंत्र का पहिया भले ही आगे गतिमान हुआ पर सामंतवादी जड़ताएं पूर्ववत बनी रहीं। जातिगता और लैंगिक आधार पर व्यक्ति और स्त्री को मनुष्य न मानने की कवायद आज भी जारी है। सुखद यह है कि इसमें रेशमा और गुल बानो जैसी साहसी स्त्रियां अपने लिए नया आकाश रच लेती हैं पर वह अपवाद हैं। अधिसंख्य स्त्रियां, सुशिक्षित और तार्किक होकर भी स्वयं को बंधक आकाश के नीचे पाती हैं। पढ़ी-लिखी रेवती अपने प्रेमी मनोहर से कहती है-'' तुम नहीं समझ सकते मनोहर। तुम सिर्फ गरीबी से लड़ रहे हो...जाति से लड़ रहे हो। मैं एक लड़की हूं और अपने से कई गुना ताकतवर हर जाति और धर्म के पुरुषों से लड़ रही हूं। तुम्हारी दरिद्रता और जाति कुछ देर के लिए तुम्हारे मनोबल को तोड़ सकती हैं, पर मैं जिनसे लड़ रही हूं ये लोग बाबा, पिता, भाई या परिजन होते हुए भी मेरी पूरी जिंदगी को तबाह कर सकते हैं।'' रेवती भली-भांति जानती है कि उसकी आजी जसोदा का अतीत ही उसका वर्तमान है। जसोदा के प्रेम को रौंदकर विवाह करवा देना और फिर कभी मायके न बुलाने में उसके सगे-संबंधी जिम्मेदार थे। आज वही अतीत रेवती का वर्तमान है। शिक्षा उसकी मुक्ति का साधन बन सकती है पर स्त्री विरोधी सामाजिक संरचना उसकी मुक्ति में बाधक है। उपन्यास इसे सूक्ष्मता से उभारता तो है पर एक अंतर्विरोध रेवती की बातों से साफ झलकता है। वह मुक्ति चेतना से लैस होने और आत्मनिर्भर होने की अपेक्षा यह स्वीकारती है-'' मेरा लक्ष्य पहले भी आई.ए.एस बनना नहीं था। आज भी नहीं है।...मैं जानती हूं कि पढ़ाई में तुम्हारे मुकाबले बहुत पीछे हूं। बस एक साध थी...तुम्हारे साथ पढ़ते रहने की साध। मेरा

लक्ष्य तुम हो मनोहर। केवल तुम।''(पृ.243) इस तरह रेवती एक सामान्य स्त्री की तरह पुरुष की अनुगामिनी और प्रेयसी बने रहने को अपना लक्ष्य मान लेती है। यह बात इसलिए खटकती है कि एक ओर वह जाति की बंदिशें तोड़ रही है तो दूसरी ओर अपनी अस्मिता के प्रति उसकी ऐसी उपेक्षा उसे एक तरह से पितृसत्ता के बनाए किले की औरतों में शामिल कर देती है।

स्त्री जीवन के विविधवर्णी लोक को लेकर चलने वाला यह उपन्यास अकेली, अभावग्रस्त, शोषित और अपमानजनक हालात की शिकार स्त्रियों को आत्मबल से लैस और सामाजिक रूप से मुखर दिखाता है। पुरुष की लोलुप दृष्टि और स्त्री देह को उपभोग की वस्तु मानने वाले समाज से रेशमा अपना बदला लेती है। वह भरे बाजार अकरम अंसारी से गुत्थमगुत्था होकर अपने सम्मान की लड़ाई लड़ती है । गुल बानो और मुन्नी बी का भविष्य की सूरत भांपकर एकजुट होने का दृश्य भी गहरी संवेदना और सकारात्मकता से रचा गया है। यही नहीं रेवती के लिए शिक्षा और अधिकार की जमीन रचने के लिए उसकी आजी-जसोदा,मां- कुसुमी देवी और बुआ-कुंती संकल्परत दिखाई देती हैं। वह चाहती हैं जिन जड़ताओं की वजह से उनके जीवन में इच्छाओं के अंकुर नहीं फूटने दिए गए ऐसा रेवती के साथ न हो। रेवती के दादा लीलाधर ऊपर से भले ही उदार दिखें पर भीतर से बेहद चुस्त आदमी हैं। परंपराओं के अनुपालक और सत्ता समर्थक-पितृसत्ता, धर्मसत्ता और राजसत्ता समर्थक। रेवती के मामलों में उनकी चुप्पी रेवती का पक्ष नहीं बल्कि बाढ़ के पानी को निकालने की उनकी एक चालाक कोशिश दिखाई देती है। रेवती को शिक्षा का अधिकार देना स्त्री मुक्ति की दिशा में उठाए कदम का सूचक नहीं है। रेवती के दलित प्रेम के विषय में

जानकर चुप्पा बने रहना उनके स्वार्थपूर्ण सामंती संस्कारों को ही उजागर करता है। रेवती को चुनाव के लिए तैयार करने में उसके प्रेम को शिकार के जाल की तरह इस्तेमाल किया जाता है। सजग ढ़ोंढ़ाई बाबा, राजनीति की बिसात अपने पक्ष में बिठा लेने वाले लीलाधर के विषय में सही कहता है-'' वाह रे लीलाधर! अपरम्पार है तुम्हारी लीला! इसको कहते हैं राजनीति। पचास डेग की दूरी पर हैं पर हवा तक न लगी।'' (पृ.249) यही नहीं शमशेर साईं की हत्या की गुत्थी पर भी उसकी चुप्पी पाठक को नागवार गुजरती है। उपन्यासकार ने लीलाधर के राजनीतिक व्यक्तित्व और लाभ-लोभ के समीकरणों को इस प्रकार सामने रखा है-'' दो हजार ग्यारह में अकरम अंसारी के उदय के बाद शेख बदरु हारे पर लीलाधर यादव मुखिया पद पर काबिज रहे। इस चुनाव में उनके सहयोगी शमशेर साईं को अकरम अंसारी ने तोड़ लिया था। जिस शमशेर को वह पालते रहे...जिसे उन्होंने समरसेवा कसे शमशेर साईं बनाया वही पाला बदलकर अकरम के साथ हो गया।''(पृ. 93) इस तफसील से शमशेर साईं की हत्या में शक की सुई लीलाधर पर जरूर अटकती है। पूरा उपन्यास बिहार में पूंजी और राजनीति के गठजोड़ से बनी वर्चस्ववादी ताकत को सामने लाता है। लगता है अधिकांश का सपना जैसे यही ताकत अर्जित करना है। इसके लिए वह समय-समय पर स्वार्थपूर्ण दृष्टि से राजनीतिक समीकरण, जातिवादी समीकरण और अर्थकेंद्रित समीकरण बनाता-बदलता चलता है।

उपन्यास में पूजा-पाठ, लोकाचार आदि पक्ष भी मुखरता से सामने आए हैं। उपन्यास की भाषा अंचल के महत्व को उजागर करती है। साथ ही आरंभ में लोकगीतों का प्रयोग इसे नयापन देता है हालांकि लोकगीतों के भावानुवाद अधिकांश उपन्यास के आरंभिक हिस्से में गद्यरूप में ही दिए गए हैं। मूल रूप का यहां अभाव है। ऋषीकेश सुलभ यों भी लोकगीतों के

संग्रहकर्त्ता और गुणग्राहक रहे हैं। अपने नाटकों और कुछ कहानियों में वह इन गीतों को पाठकों के लिए लाते भी रहे हैं। गीत की लय के साथ उपन्यास की भाषा भी लयात्मक है। खासतौर से उपन्यास में वर्णित नदियों, मौसमों, अतीत और प्रेम के अंशों के वर्णन खासे लयात्मक हैं। उपन्यास में ऋतु परिवर्तनों को बहुत बारीकी से पकड़ा गया है-'' आसिन माह की तीखी धूप खिली और धान के पौधों की बाढ़ को पंख लग गए। अपनी बूंदों में दूध लिए हथिया नक्षत्र के मेघ हवा के तेज़ थपेड़ों के साथ आए। झमाझम बरसते हुए धान के खेतों में दूध भर कर विदा हुए। देवली, मनरौली, मानिकपुर सहित पूरे ज्वार के पोखरों, ताल-तलैया, बरसाती नालों और गहिर जमीन वाले चंवर के खेतों में जल की यह आखिरी खेप थी। हथिया नक्षत्र की वर्षा के बाद जल का मटमैलापन थिराने लगा था और कज्जल जल से झांकने लगी थीं चल्हवा, पोठिया और सिधरी मछलियां। इस कज्जल जल के नीचे संपही के पेट में बिछे पत्थरों की चादर पर घोंघा, सितुहा और अईंठा अलसाए पड़े रहते थे।''(पृ.109) प्रकृति के ऐसे अनेकानेक वर्णन उपन्यास में हैं जहां प्रकृति की रागात्मक लय को जीवनलय के साथ उपन्यासकार ने रोमान से भरकर साधा है।

'अग्निलीक' उपन्यास का भूगोल ही उसका नायक है और इस भूगोल में सक्रिय अनके किरदार, उनके अतीत,घटनाएं सभी इस बात की तसदीक करते हैं कि सत्ताओं का चरित्र मनुष्य विरोधी है। चाहे वह जाति की सत्ता हो, धर्म की सत्ता, पितृसत्ता या चुनावी राजनीति से अर्जित सत्ता। यहां निजी स्वार्थ हैं, थोथी जीवन सरणियां और जड़ होती परंपराएं हैं। दलित यहां इंसान नहीं समझे जाते और स्त्रियां कठपुतलियां बनाई जाने को विवश की जाती हैं, उनके जीवन में न प्रेम को सहज रहने दिया जाता है न जीवन को। साम्प्रदायिकता

मन में गहरे पैठ, इंसान को इंसान से जुदा कर रही है। यही नहीं सवर्ण जातियों में भी अगाड़ी-पिछाड़ी की अहंकारवादी ठसक है। मनुष्य विरोधी सत्ताएं, धनबल और पुलिस प्रशासन का अन्यायी गठजोड़ एक ऐसे अंचल को पाठक के सामने लाता है जहां पानी सदियों से जमा-ठहरा पड़ा है जरूरत है इसमें एक नया आवर्त रचने की। ऐसे परिदृश्य में पाठक एक पर्यवेक्षक की तरह इस पूरे समय से गुजरता है। उपन्यास का त्रासद अंत उसके लिए एक बड़े संकेत की तरह है कि नफरत की आग में जलाई गई रेवती क्या फीनिक्स की तरह अपनी ही राख से एक नया रूप लेकर उठ खड़ी हो सकेगी?

प्रज्ञा

ई-112, आस्था कुंज अपार्टमेंट्स

सैक्टर-18, रोहिणी, दिल्ली-89

****

17

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में चित्रा मुद्गल के उपन्यास आवाँ

प्रिया रानी पी.एस

'वैश्वीकरण' ने विगत दो दशकों में भारत जैसे महादेश के समक्ष जो नया स्वरूप खडा किया है वह वैश्वीकरण सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों का समुच्चय है; यानी यह हमारे भीतर और बाहर, जीवन के दोनों पक्षों को प्रभावित करता है, कर रहा है।

साहित्य भी इस से अछूता नहीं रह सकता, वह भी उपन्यास जो जीवन का सर्वांगीण अंकन करता है। वैश्वीकरण के परिदृश्य को लेकर हिंदी में कई उपन्यास लिखे गये। वैश्वीकरण के पारिस्थितिक पद को कमलेश्वर के 'अनबीता व्यतीत', रवींद्र वर्मा के 'निन्यानब्ब' और 'मैं अपनी झांसी नहीं दूँगी', वीरेन्द्र जैन के 'डूब और पार', संजीव के 'सावधान नीचे आग है', नासिरा शर्मा के 'कुइयां जान' आदि में हमने देखा है। ममता कालिया के 'दौड' में उपभोक्ता संस्कृति की बुराइयों का खुलासा है। अमरकांत से लेकर प्रदीप सौरभ तक के कई रचनाकारों ने वैश्वीकरण के विविध पहलुओं को प्रस्तुत किया है।

चित्रा मुद्गल के उपन्यासों में वैश्वीकरण देखने को मिलता है। आपके उपन्यास स्त्री के आत्मबोध को एक नई पहचान देने की कोशिश है। उनके उपन्यासों की नायिकाएँ लीक तोडकर एक नई परंपरा गढ रही है। एक जमीन अपनी ने विज्ञान जगत की चकाचौंध की

आड में हो रही स्त्री शोषण को प्रमुख मुद्दा बनाया है। आवाँ तथा गिलिगडु भी इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। लेखिका ने अपने सामाजिक सरोकार को स्पष्ट किया है। बाजारवाद तथा मीडिया तथा विज्ञापन की दुनिया में स्त्री की बुरी हालत हो जाती है। व्यवस्था का प्रतिरोध भी यहाँ स्पष्ट है।

स्त्री अस्तित्व संघर्ष की दृष्टि से चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'आवाँ' भी महत्वपूर्ण है। बाज़ारीकृत समाज में स्त्री के अस्तित्वहरण जिस पैमाने पर हो रहा है उसका जटिल अनुभव बोध 'आवाँ' के पठन- पुन:पठन से परत-दर-परत खुलते रहते हैं। 'आवाँ' में उस जलती भट्टी का प्रतीक है, स्वत्व संघर्ष की जाल का प्रतीक है जिसमें स्त्री अपने को तपाकार नये रूप में परिभाषित करने केलिए बाध्य है।

आवाँ उपन्यास का फलक बहुत विस्तृत एवं बहुस्तरीय है। बम्बई जैसे औद्योगिक एवं व्यावसायिक महानगर के लाखों मजदूरों एवं उनकी ट्रेड यूनियनों की समस्या पर एक सक्रिय कार्यकर्ता की हैसियत से उनके पारस्परिक कलह अंतर्विरोधों का भीतरी परिदृश्य किया है; जो हिंदी कथा साहित्य की दुर्लभ है। यह प्रस्तुतीकरण न केवल ऐतिहासिक वस्तु स्थिति को प्रकट करता है अपितु उन अनेक दुरभिसंधियों को सामने रखना है जिसके कारण भारत के श्रमिकों की आवाज बंद हो गयी है और उनके हितों केलिए संघर्ष कर सकने का सारा मनोबल चुक गया है।''[1]

'आवाँ' तीन प्रकार की सृष्टियों का उपन्यास है। एक है-'कामगार आघाडी' जो एक ट्रेड यूनियन है और पूरी रचना में हर अध्याय में यह कामगार आधीडी इस प्रकार हस्तक्षेप करता है जैसे वह पूरे उपन्यास की चेतना हो। दूसरा स्त्री संगठन है 'श्रमजीवा' पापड बोलने

वाली या घरेलू उद्योगों को संचालित करता यह संगठन दूसरा हस्तक्षेप है। यदि एक के वर्चस्व केंद्र पुरुष है तो दूसरे का वर्चस्व केंद्र स्त्री।

तीसरा संगठन है 'जोगी री' जो वेश्या जिन्हें अधिक सभ्य भाषा में सेक्स वर्क्स का संगठन है यहाँ आकर चित्रा जी ने सर्जनात्मक विचलन किया है। यहाँ न पुरुष वर्चस्व है, न स्त्री वर्चस्व। यहाँ वर्चस्व है एक भाव संवेग का और यहाँ की केंद्रीय वस्तु है। व्यथा जो किसी जघन्य मजबूरी से शुरू होती है और किसी अगम्य अपराध की आग में झुलस कर करुण अंत में समाप्त होती है।''[2]

परिवार में पारस्परिक समझ और सभी सदस्यों के प्रति सदाशयता परिवार को सुदृढ बनाती है। इसके अभाव में परिवार टूटने लगते हैं। चित्रा मुद्गल ने 'आवाँ' में इस बात को बडी ही सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है। उपन्यास की नायिका नमिता से पवार कहता है ''परस्परता विकसित होनी चाहिए थी। संतुलित हो रहा है उलटा। घर टूट गये। टूट रहे। टूटेंगे। त्रिशंकु बनीं संतानें अ ने अपने अस्तित्व के अपरिचय से जूझ रही। जूझेंगी। सुनंदा की बेटी उसी में से एक होगी।''[3]

सामाजिक न्याय के चलते आज आन्दोलनात्मक प्रयास किये जा रहे हैं। दलित की स्वीकृति आज राजनीतिक ज़्यादा हो गयी है। व्यक्तिगत और दलगत हित पाने का प्रयास आज किया जा रहा है। दलितों को स्वीकार करने की नाटकीयता का पर्दाफाश करते हुए चित्रा मुद्गल कृत 'आवाँ' उपन्यास का पवार कहता है- ''यह जानते हुए भी कि मैं उनकी अधिकांश नीतियों से असहमत ही नहीं, पूर्णत: उनके विरुद्ध हूँ सहते हैं।.....इसलिए कि मैं दलित वर्ग से आया हूँ। दलित वर्ग के मजदूरों का प्रतिनिधित्व करता हूँ। उपरोक्त उदाहरण से

स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में दलित वर्ग हर प्रकार की राजनीतिक चालाकी को समझने लगा है और वह अब सामाजिक लडाई में किसी दूसरे को सहभागी बनाने की जगह अपनी लडाई वह स्वयं लडना चाहता है।

नारी के स्वतंत्र तथा आत्मनिर्भर रूप का विरोध सिर्फ पुरुष वर्ग ही करता है परंतु नारी भी अपनी ईर्ष्या और पुरातन मान्यताओं के चलते स्त्री को स्वतंत्र रूप में अपना भविष्य खोजना नहीं बरदाश्त कर सकती। 'आवाँ' उपन्यास की नायिका नमिता के बारे में उसका मौसी का निम्न कथन द्रष्टव्य है- ''दीदी! पहला काम करो, नमी के पर कतरो। नौकरी छुडआ उसे घर बैठाओ। फिर सुयोग ताड हाथ पीले कर गंगा नहाओ।''[4]

महानगरीय की पृष्ठभूमि को लेकर लिखा गया चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'आवाँ' एक महत्वपूर्ण कृति है। महानगरीय जीवन के हर पक्ष को अपने उपन्यास में उन्होंने कहीं न कहीं स्थान दिया है। महानगरीय जीवन से जूझती हुई एक किशोरी नमिता का एक चित्र दृष्टव्य है- ''भीड उसे ढेला —खाये, सैकडों हजारों मधुमक्खियों के छत्तों सी लगती जो मैके के ताड में स्वयं ढेले केलिए बैठी स्त्रियाँ देखते ही अपने फेंक लेती।भीड से उसकी मुलाकात दब भी होती....।'' [5] इस बाजारवादी सभ्यता ने व्यक्ति को किस तरह रखा है उसे देखने को मिलता है।

'आवाँ' उपन्यास में चित्रा मुद्गल सांप्रदायिक और जातीय उन्माद का खुला सा अन्ना साहब के एक भाषण से करवाती है। अन्ना साहब कहते हैं- ''विषमता मिट जाएगी तो वे धार्मिक उन्माद और जातीय सांप्रदायिकता के नाम पर किसकी झोंपडियाँ फूँकवायेंगे?.... झोंपडियों में रहने वाले स्वस्थ प्रगतिशील समाज का कढ।''[6]

सांप्रदायिकता की लड़ाई को हिंदू-मुसलमान औरतों के कंधों पर डालने की उत्प्रेरणा सुनंदा के माध्यम से चित्रा मुद्गल इस प्रकार देती है- ''सांप्रदायिक उन्माद को कम करने की लड़ाई लडे, वरना सब बरबाद हो जाएगा। खोली-खोली के भीतर घुसकर हिंदू-मुसलमान औरतों को इतना जागरूक कर दें कि वे अपने घरों में उन्मादी मर्दों के हाथों से उनकी कटारों छीन लें।'' [7] सांप्रदायिकता एक उन्माद है जो धार्मिक भावना से सहारा पाकर उभरती है और अक्सर यह व्यक्ति में नहीं समूह में अधिक कारगर हो जाती है।

आज अंग्रेजी शिक्षा पद्धति के प्रति लोगों की लालसा बढ़ गयी है और मातृभाषा की शिक्षा जो अपने संस्कारों से जोडती है उसका अनादर हो रहा है। ''चित्रा मुद्गल के उपन्यास आवाँ में नमिता के बाबूजी जयशंकर पांडेय के माध्यम से यह यथार्थ प्रस्तुत किया गया है अंग्रेजी के प्रति बाबूजी के मनोभावों से अपरिचित नहीं। भारतीय संस्कृति और परंपराओं को तेजी से पली रही अंग्रेजीयता के खिलाफ वे अन्ना साहब से उलझते कि उन्हें नहीं लगता कि भाषा-संरक्षण के मुद्दे पर देश व्यापी आंदोलन की आवश्यकता है।''[8]

संगठित क्षेत्र के श्रमिकों की आर्थिक स्थिति को तथा इस दिशा में उनके संघर्ष को विस्तार के साथ उद्घाटित करता है। इस संदर्भ में उपन्यास नायिका नमिता का निम्न कथन द्रष्टव्य है- ''श्रमिकों की लडाई समाज का कोई दायित्व नहीं मैम?....उसका जोरदार समर्थन किया होता।'' [9] निर्धनता एवं निर्धन परिवार की कारुणिक दशा आर्थिक भ्रष्टाचार सत्ता केलिए संघर्ष,जन कल्याण केलिए विमुखता, राजनीति का अपराधीकरण एवं अपराध का राजनीतीकरण आदि 'आवाँ' में मिलता है।

वैश्वीकरण के युग में पूँजी ही प्रमुख है। पैसे की होड में मानवीय रिश्ते बिगडते हैं।

सांस्कृतिक प्रदूषण फैल रहे हैं। भूमंडलीकृत औपनिवेशिक संस्कृति में स्त्री का प्रतिरोध वस्तु से व्यक्ति बनने की साहसिक मुहिम है। ''भूमण्डलीय प्रक्रियाओं एवं बदलते सामाजिक संदर्भों में स्त्री की नई भूमिका स्त्री की बदलती हुई मानसिकता एवं छवि का प्रतीक है। बाज़ारीकृत समाज की अपसंस्कृति का प्रतिरोध चित्राजी ने किया है। नई अर्थ व्यवस्था में चलती स्त्री शोषण की गाथा इसमें है। पूँजी, नारी, देह आदि इसमें प्रमुख है। आत्मविश्वास से परिपूर्ण लडकी नमिता अंत में विद्रोह की ज्वालामुखी बन ही जाती है। तीक्ष्ण अनुभवों की जलती आवाँ में तपकर जिस अस्तित्व को लेकर वह बाहर आई है। निश्चित ही वह सामाजिक राजनैतिक व्यवस्था की आड में पनप रही अराचकता को चुनौती दे सकती है। अवश्य नई समभावनाओं की एक आश्वासन नमिता में नजर आती है।''[10]

औरत भारतीय औरत की विकल्पहीनताओं को तोडकर सामाजिक एवं वैयक्तिक दायित्व को निभाने केलिए पुरुष स्वामित्व से जूझने की दृढ संकल्प शक्ति अन्त में नमिता अपना लेती है और वह अपने संघर्ष को बृहत्तर सामाजिक मुक्ति का एक हिस्सा मान उसके साथ अपने आपको जोड देती है। इस उपन्यास में स्त्रीअस्मिता के विविध पात्रों को उभारा गया है।

संदर्भ सूची:

श्री इन्दु प्रकाश पाण्डेय, हिन्दी को अधुनातन नारी उपन्यास, पृ.सं-216

मधुमती,जान 2000,आवाँ हिन्दी उपन्यास में श्रम और शिल्प और आँच का संकल्प,

रमेश दूबे, पृ.सं-71

चित्रा मुद्गल, आवाँ, पृ.सं-522

चित्रा मुद्गल, आवाँ, पृ.सं-347

चित्रा मुद्गल, आवाँ, पृ.सं -431

चित्रा मुद्गल, आवाँ, पृ.सं -252

चित्रा मुद्गल, आवाँ, पृ.सं-179

चित्रा मुद्गल, आवाँ, पृ.सं -125

चित्रा मुद्गल, आवाँ, पृ.सं -61

चित्रा मुद्गल, आवाँ, पृ.सं-268

प्रियारानी पी.एस असिस्टेंट प्रोफसर,

इम्मानुअल

कालेज,

वाषि़च्चल,

तिरुवनन्तपुरम

।

****

18

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में 'लेडीज़ क्लब'

टीना ऐ. वासुदेवन

वैश्वीकरण के दौर में दुनिया में आर्थिक ,सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में बदलाव आ रहा है । उपभोक्तावाद और उपभोग संस्कृति इसका सशक्त उदाहरण है । आज बाजार की शक्तियाँ , अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोश् विश्वबैंक और विश्व व्यापार संगठन अपना नियम और संचालन करते हैं। मानव की संवेदनाओं और कल्पनाओं में भी इसी वैश्वीकृत संस्कृति देख सकते हैं।

भूमंडलीकरण का पुरा चित्र समाकालीन साहित्य क्षेत्र में भी पड़ा। भूमंडलीकरण से भारत के संदर्भ में रोज़गार के अवसर, स्त्री और दलित के शोषण का निराकरण आदि का विकास है, लेकिन यह सोचने की बात है कि भूमंडलीकरण कितना मानवीय बन जायेगा।

समकालीन उपन्यास सांस्कृतिक विमर्श की आईना है। प्रेमचंद के समय से ही यथार्थों का चित्रण है लेकिन आज के संदर्भ में उस यथार्थों के विविध आयाम है। इन विविधायामी प्रवृत्तियों में मुख्यतः नव ओपनिवेशिक स्थितियाँ , विस्थापितों के यथार्थ, स्त्री विमर्श और दलित विमर्श हैं।

बीसवीं सदी के चौथे दशक में लेखिकाओं ने स्त्री विमर्श के प्रश्नों को साहस के साथ उठाया और पूरी निष्ठा के साथ विविध प्रकार से मुखरित और प्रचारित किया। आज दुनिया बहुत आगे बढ़ चुकी है। नये वैश्विक परिदृश्य में सामाजिक मूल्य, नये रंग रूप के साथ

निर्मित हो रहे है। आज स्त्री लेखन का भी विस्तार हुआ है। स्त्री लेखन केवल स्त्री संसार तक सीमित नहीं है, वह मुख्यधारा का लेखन बन रहा है । पूरी तरह से सामाजिक सरोकारों का लेखन बन रहा है ।

समकालीन लेखिकाओं में से सशक्त नमिता सिंह सामाजिक-साहित्यिक संस्थाओं से जुड़ी होने के कारण सामाजिक रूप से सक्रिय भूमिका को अपनी रचनाओं के लिए बहुत महत्वपूर्ण समझती है। नमिता जी का कहना है — ''मेरे लिए सामाजिक सरोकार बहुत ज़रूरी है और इन्हीं से उपजे दबाब मुझसे लेखन कराते हैं मुझे रचनात्मकता के लिए न सिर्फ प्रेरित बल्कि मज़बूर करते हैं।''1

नमिता जी अपनी उपन्यास 'लेडीज क्लब' एक रिपोर्ताज शैली में लिखा गया है। इसमें कोई केंद्रीय पात्र नहीं, हमें क्लब को ही एक नायिका का स्थान देना पड़ा। क्लब के सदस्यों के माध्यम से समाज के भयावह सच्चाई, सांप्रदायिकता के बढ़ते दूषित वातावरण ,अल्पसंख्यक की समस्या पाठक गण के सामने लायी गयी है। ''यह उपन्यास भारतीय समाज में सांप्रदायिक राजनीति और उससे उपजी हिंसा के वातावरण में तेज़ी से बदल रहे सामाजिक समीकरणों विशेषकर मध्यवर्गीय अल्पसंख्यक समुदाय के मानवीय और परिवेशगत बदलाव के साथ करता है ।''2

लगभग ग्यारह छोटे—बड़े अध्यायों में सिमटा समीक्ष्य उपन्यास एक ऐसे तिलिस्म को तोड़ने का प्रयास करता है जिसके पराकोटे में घुटन और सहमेपन के साथ एक-दूसरे का चेहरा ताकाकर इंसानों को खोजने आम जीवन की छटपटाहट, खीझ, कुंठा, सहमतियाँ — असहमतियाँ आपस में गाड्डमड्ड हो रही हैं । जहाँ स्त्रियों के लिए धार्मिक फतवे या वर्जनाएँ हैं,

पुरुषों को हिंसा के लिए उकसाती धर्मध्वजाएं है, समाज को अशिक्षित रखने की धार्मिक साजिशें हैं।

नमिता सिंह ने समाज में व्याप्त धार्मिक जड़ताओं और शोषणों और उनके विरुद्ध होनेवाले प्रतिरोध का चित्रण किया है। शहनाज़ आपा ने एक सेकक्यूलर, तरक्कीपसंद जुझारू महिला के दौरान अपनी पूरी क्षोभ और प्रतिरोध अभिव्यक्त किया है। प्रस्तुत उपन्यास में विश्वविद्यालय में यूनियन की राजनीति में तबलीगी जमात का दखल छुने लगा तब महिलाओं के नाटक में भाग लेते पर पाबंदी या उनके कपड़ों के चुनाव पर पाबंदी का वाकया भी आया। शहनाज आपा का क्षोभ यह थी कि ''आज लड़कियाँ स्टेज पर नहीं गायेगी। ड्रामा क्लब में नहीं आएगी। लड़कियाँ स्कूटर नहीं चलाएगी। लड़कियां कपड़े हमारी मर्जी के पहनेगी।''3 शहनाज आपा का फोलादी हिम्मत, चट्टानी संकल्प और नैतिक सोच और व्यवहार से यूनिवर्सिटी राष्ट्रीय शर्म से बची और विजयी देता है। महिलाओं के ऊपर होनेवाली हिंसा व्यक्तिगत हो या सामूहिक हो या अन्य तरह के शोषण और अन्याय हो उसके प्रतिरोध के लिए आवाज़ उठानी चाहिए।

भूमंडलीकरण ने पत्रकारिता के लिए अपनी कुछ शर्तों को ही लागु किया है, जो आज प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया केवल मुनाफाखोरी और पूँजीवाद का जगह मात्र बना दिया है। अधिकांश मीडिया पूजीपतियों का कब्ज़ा है, जिनका जुड़ाव किसी राजनीतिक दल से है। एक पक्षीय खबरें बढ़ रहा है। समाज में जो कुछ घटित हो रहा है वह सही खबरें आमजन तक पहुँचाना ही पत्रकारिता का धर्म है लेकिन आजकल सच को छोड़कर जनजीवन पर कई प्रकार की विसंगतियाँ सामना करना पड़ता है।

'लेडीज क्लब' उपन्यास में हरिद्वार के एक आतंकवादी के मारे जाने की खबर अखबार और मीडिया में दो दिन तक छा जाती है। ''अखबारों में और मीडिया में दो दिन तक यही घटना छाई रही। बार-बार दुहराई जाति रही। पुलिस की पीठ ठोंकी जा रही थी। पुलिस ने कोई बड़ा हादसा होने से क्षेत्र को बचा लिया था।''4 लेकिन अगले हफ्ते पता चलता है कि मारा गया वह व्यक्ति पास के गाँव का छोटा-मोटा कारोबारी असलम था ।

डॉ. अमीर और हुमैरा की शादी इसलिए नहीं हो सकती क्योंकि हुमैरा सुन्नी जाती की है और लड़का शिया जाती का। समाज के विविध धर्म और जाति में बंटे होने के बारे में दुखित नमिता सिंह अपना मत इस उप कथा से व्यक्त करते हुए कहती है कि ''मैं भूल गयी थी कि हमारा हिंदुस्तानी समाज जाति-दर-जाति सैकड़ों खानों में ऐसा बंटा है कि इसकी जड़ें-दूर-दूर तक फैल गई हैं। ज़मीन के नीचे गहरे घंसी ये जड़े उन बस्तियों और कुनबों तक जा पहुंची हैं, जहां इन विभजान रेखाओं का अस्तित्व ही नहीं होना चाहिए था। धर्म और जाति के ये विभाजन के दंश समाज की हर धड़कन में मौजूद है ।'' 5

भारत में वैश्वीकरण द्वारा निर्मित अवसरों ने पलायन को बढ़ावा दिया और प्रोत्साहन भी किया। 1991 में शुरु किये गये आर्थिक सुधार भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के हिस्सा थे। कई भारतीयों ने हार्दिक सुधार की दृष्टी से नौकरी एवं शिक्षा के लिए अंतर्राष्ट्रीय पलायन किया। नमिता सिंह अपना उपन्यास में इस प्रकार की एक पलायन को व्यक्त करती है। अच्छे अध्यापक और अच्छे शोधार्थी मौलाना शौकत अली को जब अमेरिका से अवसर या बुलावा मिला तो तब वे सब कुछ छोड़कर वहाँ चले गये। आधुनिक श्रमिक भारतीय बेहतर रोज़गार की तलाश से पलायन अंतर्राष्ट्रीय स्तर की ओर हो रहा है। वह तो एक प्रकार का. व्यापार भी

है। उपन्यास में यह समस्या बताती है-''अपने यहाँ तो हर डॉक्टर, इंजीनियर, सोचता है कि अगर अमेरिका न गया तो जीवन व्यर्थ गया। मंजिलें-मक्सूद् वहीं है। हर कोई हरगोविंद खुराना बनने का सपना लेकर भागता है सात समंदर पार! फिर शौकत अली ने हि क्या बिगाड़ा था। सस्ते दामों में बारह- चौदह घंटे काम करने वाले वैज्ञानिक मिलते हैं जिस देश को, उसे क्या ऐतराज हो सकता है? हाथ फैलाये वह बुलाता है, अपना फाटक खोल देता है। अमेरिका ब्रेन खरीदता है, जो नीलाम होते हैं यहाँ मंडी में।''6

वैश्वीकरण, शहरीकरण, और औद्योगीकरण के संचयी प्रभावों के कारण भारत में एकल परिवारों का उदय हुआ। अधिक से अधिक एकल परिवारों के साथ युवा लोग अपने माता—पिता को छोड़कर रोज़गार के अवसरों और बेहतर जीवन स्तर की तलाश में पलायन अंतर्राष्ट्रीय स्तर की ओर बढ़ रहे हैं। वैसे ही संतान की उपेक्षा और अनदेखी से आहात बुजुर्ग अवसाद, निराशा, अकेलापन, जैसे नकारात्मक भावों से विवश हो जाते हैं। यह यथार्थ हमीदा आपा के माध्यम से नमिता सिंह अंकित किया गया है । हमीदा आपा फारसी विभाग के अध्यक्ष पद से निवृत्ति हो गयी। पति का देहांत हो चुका है और उनके दोनों बेटे अमेरिका में हैं।

एक दंगे के दौरान मुस्लिम बारातियों से भरी बस पर पथरबाजी से दो लड़कियाँ घायल हुए हैं। दंगाइयों को ललकारने और उनके विरुद्ध आवाज़ उठकर विमलेश बहन उन दोनों लड़कियों को बचाकर मानवीय काम किया था। एक तरफ देखे तो संप्रदायिकता का संकीर्ण मानासिक सोच यहाँ देख सकता है। इसका आधार धर्म है। यहाँ केवल धर्मावलम्बियों के विद्वेष की भावना है। दूसरी तरफ देखे तो विमलेश बहन के प्रतिरोध का

स्वर भी देख सकते हैं। उनके समने वे दो लड़कियाँ सिर्फ लड़कियाँ नहीं थी, पूरी औरत जात है।

एक मुस्लिम परिवार के शन्नो अपने बच्चे के इलाज के लिए जा रहा था तब हिंदुत्ववादी लोग उसे रोका। बीमाऱी बच्चा उन लोगों के खुँखार नफरत का शिकार बन गया। सांप्रदायिक मानसिकता किस तरह इंसानों को अमानवीय बन जाता है उसका खुला दस्तावेज नमिता सिंह ने यहाँ अभिव्यकत किया है।

''मह्बूब् साहब के ओहपह में दूब्ते-उतराते मन को किनारा मिल गया। उसी रात उन्होंने तय कर लिया कि अलीगढ़ जाना है। अपने लोगों के बीच सुरक्षा तो है।''7 यह महबूब साहब का निर्णय है। उन्होंने रुड़की विश्वविद्यालय के अध्यापक है। जब अलीगढ़ विश्वविद्यालय से विभागाध्यक्ष पद का प्रस्ताव मिला तब निर्णय लिया कि वहां जाना क्योंकि हरिद्वार में एक आतंकवादी को मारा, वास्तव में मारा गया युवक पासवाले गाँव का एक आम कारोबार था। धर्म और सामप्रदयिकता पूँजीवाद और सामंतवाद के हथियार हैं। इन हथियार से आम मानव जीवन में असुरक्षा की भावना उत्पन्न होता है। उसका सशक्त उदाहरण है महबूब साहब का निर्णय।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि नमिता सिंह का उपन्यास 'लेडीज़ क्लब' में हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य, स्त्री जीवन की समस्याएं, मुसलमान समाज के भीतर की जातिय-प्रथा, समाज में मीडिया का प्रभाव, समाज में प्रचलित कुरीतियों पर प्रतिरोधी स्वर, शहरी जीवन की समस्याएँ आदि वर्त्तमान समाज के विभिन्न पक्षों का यथार्थ चित्रण विद्यमान है।

नमिता सिंह, हाँ मैंने कहा...(साक्षात्कार), पृ.सं.

नमिता सिंह, 'लेडीज़ क्लब', कवर पृ.

नमिता सिंह, 'लेडीज़ क्लब', पृ.सं. 24

नमिता सिंह, 'लेडीज़ क्लब', पृ.सं. 60

नमिता सिंह, 'लेडीज़ क्लब', पृ.सं. 17

नमिता सिंह, 'लेडीज़ क्लब', पृ.सं. 77

नमिता सिंह, 'लेडीज़ क्लब', पृ.सं. 60

टीना ऐ वासुदेवन

शोध छात्रा

हिंदी विभाग,केरल विश्वविद्यालय

कार्यवट्टम कैंपस

****

19
वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में प्रदीप सौरभ का उपन्यास 'मुन्नी मोबाइल'

लेखक : जोस्ना जोस

सह लेखक : तेरेसा कुरियाकोस

''इस उपन्यास के नायकों-खलनायकों को मैं काल्पनिक कहने का साहस नहीं जुटा पा रही हूँ'' प्रदीप सौरभ द्वारा अपने उपन्यास के पहले पन्ने पर लिखा गया यह वाक्य यही सिद्ध कर रहा है कि जो वर्तमान में घटित हो रहा है उसे अंकित करने के लिए लेखक को अब किसी बनी-बनाई पात्रों या जादूई यथार्थ की परिकल्पना की आवश्यकता नहीं है। हमारा समाज और उसका प्रत्येक व्यक्ति आज वैश्वीकरण की प्रक्रिया को जानते हुए भी उसके नकारात्मक पक्षों की ओर जाना पसंद करते है। किस तरह समाज इससे प्रभावित हो रहा है या हो चुकी है इसका यथार्थ बेबाक चित्रण सीधी साधी अनपढ़ घरेलू नौकरानी मुन्नी के द्वारा प्रस्तुत करके प्रदीभ सौरभ वर्तमान समय की ज्वलंत समस्याओं पर प्रकाश डालने की कोशिश कर रहा है।

यह उपन्यास एक साथ कई स्तरों और समस्याओं को छूता है। उपन्यास की नायिका मुन्नी यदि वैश्वीकरण से पनपी उपभोक्तावादी संस्कृति या बाज़ारू संस्कृति की शिकार है तो दूसरी तरफ उसका मालिक आनंद भारती पत्रकारिता जगत की वास्तविकता को शब्दबद्ध करने का माध्यम है। समकालीन समय में राजनीति, मीडिया और धर्म किस प्रकार अपना वर्चस्व स्थापित करने में दाँव खेल रहा है इसका चित्रण भी उपन्यासकार करते हैं। उनकी

पैनी दृष्टि से समकालीन समय की कोई भी ज्वलंत समस्या नहीं छूटा है मगर केन्द्र में मुन्नी है जो बिन्दु यादव नाम की आम औरत से महत्वाकांक्षी निर्भीक और दबदबा रखनेवाली ठेकेदार बनी थी। उसको वह बना दिया जो वह कभी नहीं था और वहाँ पहुँचा दिया जहाँ उसे न होना चाहिए था। यही नहीं उसकी दूसरी पीढ़ी भी लालच और महत्वाकांक्षा की जीवन को ही आगे रखने में मज़बूर हो जाते हैं।

वैश्वीकरण जिसे ग्लोबलाइज़ेशन या जगतीकरण कहे जाते हैं वह व्यापार, सेवाओं और तकनीकों द्वारा पूरे देश से जुड़ पाते हैं या वसुदैव कुटुंबकम की परिकल्पना को आगे रखता है पर वास्तव में इसके नकारात्मक पक्ष पर बात करे तो यह उसके खूबियों के गिनती को पार कर देते हैं। भौगोलिक दूरियाँ तो मिट गई पर मन की दूरियाँ बढती गई। हर कोई अपने लिये जीने लगे। पैसा कमाना और समाज में इज्ज़त से जीना सबका मकसद बन गया। चाहे उसके लिए अपराध क्यों न की जाय या किसी का गला न दबाए जाए। मुन्नी बहुत कुछ बनी भी और आखिर में किसी के द्वारा मरी भी। उसकी इच्छाएँ ही उसके पर काटे।

खुले बाज़ार में चयन की स्वतंत्रता सबको है। चाहे वह निम्न मध्य वर्ग हो या मध्यवर्ग - वे दोनों लोग उच्चवर्ग की जिन्दगी की कामना करते हैं। पैसे कमाना और समाज में प्रतिष्ठा पाना सर्वोपरी माना जाता है। मुन्नी जो आनंद भारती नामक पत्रकार के यहाँ झाड़ू-पोछा करती है मालिक से दीवाली में गिफ्ट के रूप में एक मोबाइल चाहती है। यह उसकी चयन था कि उसे भी सबकी तरह एक फोन चाहिए चाहे कुछ आता भी न हो। वह भी ऐसा अड़कर बोली कि उसे हरबार कुछ हल्का मिल रहा हो ''कहने लगी, 'इस बार दीवाली पर मुझे कोई ऐसा-वैसा गिफ्ट नहीं चाहिए। पिछली बार की तरह इस बार मिठाई, बर्तन और कपड़े आदि नहीं

चलने वाले।''[1] यह चयन और वरण्यता की स्वतंत्रता उपभोगवादी संस्कृति ने ही दी जो वैश्वीकरण का बीज था। चयन की स्वतंत्रता कोई बुरी बात नहीं। पर वह जब आत्मघाती और समाजघाती बन जाते हैं तो समस्या बन जाती है। यही मोबाइल उसे आगे के उलझनों में डालने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वरीयता में होनेवाले छोटे छोटे बदलावों की कीमत कभी-कभी मृत्यु भी हो सकती है। सूचना क्रांति की पर लगी तो मुन्नी उड़ी पर उसका गलत और बेढंग उपयोग उसे काट दी।

मोबाइल आने के बाद उसकी ज़िन्दगी बदल गई। वह उस फोन से जानने लगी क्योंकि उस समय उसके जैसे किसी बस्ती में रहने वाली कामवाली औरत के पास यह यंत्र नही था। आनंद भारती उसके काम से और मेहनत से खुश था। काम में चोरी नहीं करती थी वह। पर उसकी इच्छाएँ असीमित थीं। अपनी मेहनत और जज्बे से वह पैसा कमाने लगी। ज़मीन खरीदकर और मकान बनाकर अपने छह-छह बच्चों को और पति नंदलाल को पालती रही। धीरे-धीरे वह और घरों में भी काम करने लगी। बाद में अपनी रोब और श्रम से काम करने वाले लोगों की छोटी सी नेता बन गई। उसने यहीं तक अपने विस्तार को नहीं रोका। वह बढ़ रही थी। उसका पहचान सब जगह फैलती जा रही थी। अपने दम पर और आनंद भारती के नाम पर वह बिना डरे स्थानीय ठेकेदारों से पुलिस वालों से लड़ती—झगड़ती और किसी भी समस्या का हल निकालती। आनंद भारती भी ऐसे मौकों पर उसकी मदद कर देता था जहाँ बात हद से भी बढ़ जाता था। आगे वह चौधरी से बस खरीदकर उसकी मालकिन बन जाती है। उसकी हिम्मत इनती बन जाती है कि ललित गुर्जर जैसे दबंग लोगों से लोहा लेने को भी वह तैयार हो उठती। धीरे-धीरे वह ठेकेदार बन रही थी। आनंद भारती के घर का

काम भी छूटा। वह अपने को कई मुकाम पर देखना चाहती थी। इसके लिए पैसा चाहिए थी। शुरुआत में वह चोरी छिपे और नाज़ायस तरीके से गर्भपात करानेवाली महिला डॉक्टर से हाथ मिलाती है और उसके लिए शहर और गाँव से कैस (Case) लाती है और कमीशन लेने लगती है। पैसे कमाने की इसी लत ने उन्हें उसे आखिर में सेक्स रैकेटिंग में भी ले आती है। इस धंधे की प्रतियोगिता से बनी एक झगड़े में किसी ने उसको मार देती है। आनंद भारती अपने दायित्व और कर्तव्य निभाते हुए जब इस मर्डर की जाँच एक सच्चे पत्रकार बनकर करते हैं तो मुन्नी की बिन्दु से शुरू हुई यात्रा की अनेक पड़ाव को समझ पाते हैं।

मुन्नी और उसकी संतानों में सबसे पढ़ी लिखी बेटी रेखा भी आज की उपभोगवादी संस्कृति के मायाजाल में फँसकर मूल्यों से भ्रष्ट हो जाती है। मुन्नी जहाँ इस अर्थप्रदान समाज में रहकर तंग गलियों से पैसा कमा रही है तो वह यही शिक्षा जाने अनजाने में ही अपनी बेटी को दे रही है। उपन्यास के अंत में आनंद भारती यह जानकर चौक जाता है कि मुन्नी की मृत्यु के बाद उसकी बेटी रेखा माँ के धन्धे को आगे बढ़ा रही है। ''कॉल गर्ल वर्ल्ड में मुन्नी मोबाइल की जगह चित्तकबरी ने ले ली थी बल्कि मन-ही-मन वह रेखा की यही तस्वीर अपने मन में बना चुके थे। इसके अलावा रेखा के रास्ते किसी ओर दिशा में भला जाते भी कैसे? मुन्नी ने जो रास्ता चुना था, रेखा के लिए वही उसकी विरासत थी। रैकेट के कस्टमरों और लड़कियों का लेखाजोखा भी अपने लैपटॉप पर रखती थी। उसने अपना नया नम्बर अपनी मम्मी के पक्के कस्टमरों को एसएमएस कर दिया था। मोबाइल पर वह कस्टमरों से ही डील करती थी। इंटरनेट के जरिये वह नये कस्टमर बनाती। लड़कियों की तस्वीरें उसने अपने ब्लॉग में डाल दी थी। हाईफाई तरीके से वह धंधा करने लगी थी''[(2)] प्रौद्योगिकी के विकास में वृद्धि होना

वैश्वीकरण के सकारात्मक पक्ष मानने वाले लोगों के लिए रेखा का यह रूप कुछ चिन्तन के लिए जगह छोड़ रहा है।

पारंपरिक मूल्य जो हर पीढ़ी अपने दूसरे पीढ़ी को विरासत में दे रहे हैं उसे बरकरार रखना एक भारी उत्तरदायित्व है। वैश्वीकरण में ये मूल्य कहाँ तक संचरित हो पा रहा है इस पर सवाल करने और विचारने हेतु उपन्यास के ये कुछ ही पात्र पर्याप्त है। मुन्नी जब अलग अलग जगहों पर काम करने लगी तो उसे नये नये अनुभव भी मिलने लगे थे। उसे पता चला कि हमारा समाज कैसा है और उसमें क्या-क्या हो रहे है। उसे इस दुनिया ने बहुत कुछ सिखाया ''देश की गोबर पट्टी से उसका परिचय हो रहा था। वह रोमांचित हो रही थी। खाली वक्त में इन घरों में टीवी दर्शन उसके अनुभव को बढ़ाने में मददगार साबित हुआ। सास, बहू और घर- घर की कहानी जैसे सीरियल कारपोरेट परिवारों में वर्चस्व के लिए मचे धमासान से उसका परिचय करा रहे थे। उसके बिहारी गंवई मूल धूल धूसरित हो रहे थे।''(3) इसी तरह आनंद भारती का जीवन भी खासकर पारिवारिक जीवन भी डंवाडोल में था। पत्नी के साथ निभाना इतना मुश्किल हो गया था कि दोनों ने मिलकर म्यूचुअल तलाक की अर्जी लगायी। उन दोनों को अपनी गृहस्थी और बच्ची फूफी का ज़रा सा ख्याल नहीं था। पारिवारिक मूल्य भी घटते जा रहे हैं। आनंद भारती के तलाक के बाद का चित्रण यों है ''कैसी विडंबना थी और कोर्ट का कैसा रिवाज़ था कि कोर्ट के कर्मचारी दोनों को बधाई दे रहे थे। वे मिठाई के लिए पैसे माँग रहे थे। ढिठाई और बेहयाई का इससे बड़ा सबूत क्या हो सकता है कि इन क्लर्कों के लिए हर काम घूस और रिश्वत से इस कदर जुड़ा है कि सम्बन्ध बने या टूटे, उन्हें सिर्फ अपने रुपयों से मतलब होता है। यहाँ एक घर टूट गया है और उनके लिए यह टूटन भी 'बधाई' का

हिस्सा था।''[4] समाज अब ऐसा बदल चुका है। कागज़ पर किए हस्ताक्षर से रिश्ते टूटने लगे है और दर्शक बने लोग भी इसके मज़े उठा रहे है।

वैश्वीकरण पर्यावरण पर पर्याप्त रूप से तनाव डाल देने में सक्षम है। प्रदूषण जैसी समस्याएँ स्थानीय होने पर भी वह बड़े आकार लेने लगा है। विकसित देश अविकसित या विकासशील देशों को अपने कूडेदानी बनाकर छोड़ा है। खुद हम 'यूज़ एण्ड थ्रो' संस्कृति के तहत उपयोग के बाद चीज़ों को नदियों में या झरनों में छोड़ जाते हैं। आनंद भारती जब गंगा तट पर गया तो वह क्रुध हो गया। ''गंगा की गंदगी देख कर वह कुपित भी होते। शहर के लोगों ने गंगा की गंदगी पर एक जुमला भी बना दिया है- गंगे तव दर्शनार्थ मुक्ति बम्बे तब स्नानार्थ मुक्ति।''[5] यह भारत की स्थिति है तो विदेशों में कुछ कम नही है। आनंद भारती के लंदन प्रवास के दौरान जब वह टेम्स नदी को उसने देखा तो विश्वास नहीं कर पाया ''जीवनदायिनी टेम्स से मानव ने कम खिलवाड़ नहीं किया। टेक्सटाइल मिलों के कचरे से वह प्रदूषित हुई। एक समय वह माँत की नदी भी बन गई।''[6] इसी तरह प्रकृति के दोहन करके उत्पादन में वृद्धि लाने वाला मनुष्य पैस के चकाचौंध में प्रकृति को भूल जाता है। ग्लोबल बने मानव ग्लोबल वार्मिंग जैसे खतरे से जूझने लगते है। इंग्लैंड की वैज्ञानिकों का कथन इस बात की पुष्टी करता है ''ग्लोबल वार्मिंग के चलते यदि समुद्र की सतह एक इंच भी ऊपर आया तो इंग्लैंड का बहुत-सा-भू-भाग डूब जाएगा। लन्दन में भी टेम्स की नदी का जलस्तर इतना बढ़ सकता है कि लन्दन डूब जाए। इसकी वजह कार्बन उत्सर्जन को माना गया है।''[7] भारत में भी स्थिति बेहतर नहीं है। कार्बन विसर्जन ग्लोबल वार्मिंग के लिए ज़िम्मेदार अभी की बना हुआ है। अगर इसका उपयोग में कमी नही आयी तो स्थिति शोचनीय हो जाएगा। इन

सबके प्रति अन्यासकार जागरूक दिखता है।

वैश्वीकरण सभी प्रकार की संस्थाओं को अपने में जोड़ता है। शिक्षा के व्यवसाय के रूप में बदलना हो या तकनीकी का शिक्षा से जुड़कर काम करना हो वैश्वीकरण ने सब कुछ मुमकिन कर दिया है। घर-घर टेकनॉलजी का अड्डा बन गया है। तकनीकी का प्रयोग बच्चे सही तरीके से कर रहे है या इसका गलत उपयोग हो रहा है इस पर विचिन्तन करना है। रेखा का गलत रास्ता पकड़ना इसका सबसे सशक्त उदाहरणा है।

वैश्वीकरण ने मीडिया को अपना माध्यम बनाकर अपना निशाना साधना शुरू किया था। उत्पादों की खरीदी-बीक्री में मीडिया की अहम भूमिका है। हमारे मन में अमुख वस्तु की छाप छोड़कर हमें आकर्षित करके हमें उपभोक्ता बनाकर छोड़ देता है। '' असल में आज़ादी के बाद विकसित हुआ देश का मीडिया बाज़ार की रखैल बन गया। उसके पास न तो कोई सपना है और न ही समाज के प्रति कोई प्रतिबद्धता। वह एक उद्योग में तब्दील हो चुका है। लाभ कमाना और सत्ता के गलियारों में दबाव बनाना उसका एकमात्र उद्देश्य है।''(8)

कुलमिलाकर उपन्यास वैश्वीकरण और उससे जुड़े सूचना क्रान्ति द्वारा यह प्रेषित करने का प्रयास कर रहा है कि पूँजी ने कितने लोगों को अपराध जगत का भागीदार बनाया है। आम भारतीय के जीवन की दशा और दिशा बदल के रखने में इसने अहम भूमिका निभाया है। प्रदीप सौरभ ने जगतीकरण से जुड़े नकारात्मक पक्षों का उद्‌घाटन करके आज के पारिवारिक धार्मिक राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन का कच्चा-चिट्ठा खोल दिया है। उन्होंने यह बनाने का सफल प्रयास किया है कि आज के समय में मनुष्य बने रहना ही सबसे बड़ी उपलब्धी है। उससे ज्यादा आगे बढ़ना उसे जीवन से हाथ धो बैठने के समान होगा। मुन्नी

मोबाइल की मुन्नी इसी का ज्वलंत उदाहरण है।

<u>संदर्भ ग्रंथ सूची</u>

मुन्नी मोबाइल, प्रदीप सौरभ, पृ. 9

वह, पृ.156

वह, पृ. 20

वह, पृ. 52

वह, पृ. 68

वह, पृ. 93

वह, पृ. 94

वह, पृ. 31

लेखक	सह लेखक
जोस्ना जोस	तेरेसा कुरियाकोस
शोधार्थी	शोधार्थी
यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम	कार्यवट्टम कैंपस

****

20

हिंदी साहित्य और वृद्ध विमर्श; एक झांकी

डॉ रम्या जी एस नायर

"यदापि पोष मातरं पुत्र प्रभुदितो धायान।

इतदगे अनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मामंधा।।"

अर्थात जिन माता-पिता ने अपने अथक प्रयत्नों से पाल-पोसकर मुझे बड़ा किया है, अब मेरे बड़े होने पर जब वे अशक्त हो गए हैं तो वे जनक-जननी किसी प्रकार से भी पीड़ित न हों इस हेतु मैं उसी की सेवा सत्कार से उन्हें संतुष्ट कर अपने आनृष्य (ऋण के भार) से मुक्ति प्राप्त कर रहा हूँ।

यजुर्वेद से ही भारतीय परंपरा में 'मातृ देवो भाव:' और 'पितृ देवो भाव:' की अवधारणा रही है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति में वृद्धों का सम्मान एवं सेवा भारतीय विधि का सुस्थापित सिद्धांत है। भारतवर्ष ऋषि मुनियों का एक महान देश है, जहां सबों के कल्याण की कामना अंतर्निहित होती। भारतीय परिवेश में संयुक्त परिवार प्रणाली में माता-पिता एवं बुजुर्गों के सम्मान के उत्कृष्ट संस्कार संचयित हैं, जिनमें बुजुर्गों की देखभाल उचित तरीके से संभव होती है। परंतु आधुनिक युग की बदलती जीवन-धरा के कुछ प्रतिकूल प्रभावों के कारण इन मूल्यों के क्षीण होने की प्रवृत्तियां बलवती हो रही है। औद्योगिकरण, नगरीकरण एवं सामाजिक मूल्यों एवं अर्थव्यवस्था में परिवर्तन के कारण संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन प्रारम्भ हो गया है। टूटते हुए संयुक्त परिवार, निज स्वार्थ की भावना,

नैतिक और सामाजिक जिम्मेदारियों का अवमूल्यन जैसे अनेक कारणों के चलते बुजुर्ग आज परिवार में अनुपयोगी वास्तु बनकर रह गए हैं। मानव अपनी अनेक अवस्थाओं को पार करते हुए वृद्धावस्था को प्राप्त करता है, जहां उसकी शारीरिक क्षमता का ह्रास स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

वैश्वीकरण ने हमें इस कदर प्रभावित किया है कि पाश्चात्य जीवन प्रणाली और एकल परिवार को ही सब कुछ मान बैठे हैं। सच्चाई यह है कि जिन बुजुर्गों ने हमें अपनी उंगली पकड़ कर हमारी नन्ही सी हाथों को थामकर हमें चलाना सिखाया उन्हीं को आज दुत्कार और नकार रहे हैं। यहॉ तक कि उनके बुढ़ापे में लाठी बनने की अपेक्षा हम उन्हें बोझ समझने लगे हैं। यह प्रणाली हमारी मानसिकता के साथ-साथ हमारे स्वार्थी जीवन को दर्शाने लगा है। जिसके चलते संयुक्त परिवार विघटित होने लगा है। इसके साथ-साथ गांवों से शहर की और पलायन बढ़ा, खेत-खलियान के स्थान पर सीमेंट -बालू ने धारण कर लिया और रेत की फसले आज लहलहाने लगी। आज सबसे अधिक यह पाया जा रहा है कि खेत की कमी आ गई और खेत का स्थान आज कल कारखानों ने ले लिया ।

संयुक्त परिवार के विघटन एवं एकल परिवार के प्रचलन वाले ग्लोबल गांव में सबसे अधिक उपेक्षित, प्रताड़ित एवं पीड़ित वृद्ध हैं। चाहे वह संपन्न हो या विपन्न, अभिजात हो या गिरिजन या भरे पूरे परिवार में हो।

वृद्धों की स्थिति न केवल वर्त्तमान में बल्कि सुदूर अतीत में भी मनीषियों के मन को झकझोरते रही है। जिसका पहला साक्ष्य ऋग्वैदिक कल में मिलता है। वेद भारतीय संस्कृति का आधार ग्रंथ है जिसमें वृद्धावस्था के विभिन्न आयामों का विशद वर्णन मिलता है। विश्व

की समस्त महान सभ्यताओं -संस्कृतियों एवं साहित्यों में वृद्ध जान को संचित ज्ञान एवं अनुभव के कोष के रूप में स्वीकार करते हुए उनके प्रति सम्मान का भाव प्रदर्शित किया गया है, प्रत्येक समाज, सभ्यता और संस्कृति के लिए इनका संरक्षण आवश्यक समझा गया हैं।

आज एक और जहाँ स्त्री, दलित, आदिवासी , किन्नर आदि विमर्श की गूंज चारों और सुनाई पड़ रही है। परंतु वृद्ध की समस्याओं की गूंज उस रूप में उभरता हुआ नहीं दिखाई दे रहा है जिस रूप में होना चाहिए।

साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता है, साहित्य जान-चेतना को व्यक्त करने का ही नहीं, जान-चेतना को जाग्रत करने का भी माध्यम है, इसी आलोक में द्वितीय संभाग में साहित्य की विविधा विधाओं एवं वेदों में वृद्ध की दशा एवं इस समस्या के निदान हेतु दिशाओं पर व्यापक विमर्श हुआ है। साहित्य के स्तर पर भारतीय परिप्रेक्ष्य में वृद्ध विमर्श अत्यंत आवश्यक हो जाता है। हिंदी पद्य एवं गद्य में वृद्धों की समस्याओं को अनेक परिप्रेक्ष्यों में चित्रित किया गया है। साठ पार का जीवन हिंदी साहित्य के प्रारम्भ से ही कवियों की चिंता और चिंतन का एक प्रमुख विषय रहा है।

हिंदी साहित्य में अनेक कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से बुजुर्गों की समस्याओं को समाज के सामने रखा गया है, उनमें से - कबीर, जायसी, तुलसीदास, सुमित्रानंदन पंत, दिनकर, नागार्जुन, धर्मवीर भारती, अरुण कमल, राजेश जोशी, सूरजप्रसाद राठौड़ , अर्पण कुमार, भरत प्रसाद, शैलेंद्र, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, राधेश्याम तिवार आदि। इतने सरे रचनाकारों द्वारा कई महत्वपूर्ण रचनाऐं लिखने के पश्चात भी समाज में वरिष्ठ जन की समस्याऐं बढ़ती ही जा रही है। साठ के पार जीवन को लेकर सबसे मार्मिक

बातें सूफी कवि मालिक मुहम्मद जायसी ने कही है। 'पद्मावत' के उपसंहार कांड में उसने बड़ी वेदना से लिखा -

''मुहमद बिरिध बसे जो भई। जोबन हुत, जो अवस्था गई।।

बल जो गयउ कै खिन सरीरु। दिस्टि गई नैनहिं देइ नीरू।।

दसन गए कै पचा कपोला। बैन गए अनरुच देइ बोलै।।

बुधि जो गई देइ हिय बौराई। गरब गयउ तरहुंत सर नाई।।

सरवन गए ऊंच जौ सुना। स्याही गई सीस भा धुना।।

भँवर गए केसहि देइ भूवा। जोबन गयउ जीति लेई जुवा।।

जौ लहि जीवन जोबन साथा। पुनि सो मीचु पराए हाथा।।

बिरिध जो सीस डोलावै, सीसा धुनाई तेहि रीस।

बूढ़ी औ होहु तुम्ह, केई यह दीन्ह असीस ?"

अब बूढी आयु हो गई है। दृष्टि मंद हो गई है और नेत्रों में पानी ढलने लगा है। दाँत गिराने से गाल पिचक गए हैं, अब मेरे बोल किसी को नहीं सुहाते। विचारने की शक्ति चली गई, गर्व चला गया है, शिक्षा धुनि हुई रुई के समान हो गया। शरीर जीते जी मृत के सामान हो गया है। जब तक यौवन है तभी तक जीवन है। फिर पराये वश हो जाना - यही मृत्यु है।

माना की बुढ़ापा शरीर को कमज़ोर कर देता है, रूप का आकर्षण भी ख़त्म कर देता है। 'मैं अकेला ' में निराला तो बुढ़ापे में नितांत अकेलेपन का अनुभव करते हुए लिखते हैं -

"मैं अकेला

देखता हूँ आ रही मेरे दिवस की सांध्य बेला ।

पके आधे बाल मेरे

हुए निष्प्रभ गाल मेरे,

चाल मेरी मंद होती आ रही ,

हट रहा मेला"

नागार्जुन 'कपिलवस्तु में' कविता में न केवल दो प्रमुख वृद्ध चरित्र 'शुद्धोदन ' और 'प्रजापति' चित्रित हैं, बल्कि वृद्धों से भरा एक शाक्यगण-परिषद् भी है। शुद्धोदन 'जरा -जीर्ण ', 'कृशकाय' एवं 'विवर्ण' हैं और प्रजापति 'दुबली-पतली रूखी-सुखी पांडु ' एवं 'मनो जंगल कंकाल ' है। परिस्थितिवश शुद्धोदन उदास और प्रजापति संतापग्रस्त हैं। जहां वृद्ध पिता पुत्रमोह में विह्वल हैं, वहीं वृद्धा पालिका माँ अविरल स्नेह की मनो निर्झरणी बनी जा रही है। नागार्जुन का सांकेतिक संदेश है कि बूढ़े माँ-बाप की यह हृदय निचोड़ आत्मीयता युवाओं के लिए आशीष तुल्य तो है ही, बुजुर्गों का दक्षता भरा अनुभव भी उनके लिए किसी वरदान से कम नहीं। 'पीपल के पीले पत्ते' बूढ़े को संबंधित एक समग्र कविता है, जो कहीं-न कहीं से पंत के 'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र' की याद दिलाती है। इसमें 'जीवनरस' से छलकती जवानी की अकुंठ स्वीकृति के लिए वृद्धों को अनेक नसीहतें दी गयी हैं,

"खड़-खड़-खड़ करनेवाले ओ पीपल के पत्ते

अब न तुम्हारा रहा जमाना

शकल पुराणी रंग पुराना

सिख पुराणी ढंग पुराना "

(नागार्जुन रचनावली, पृ सं 44)

पंत जी 'वार्द्धक्य' नामका कविता में मनुष्य की वृद्धावस्था का मार्मिक अंकन करते हैं। इस कविता में वृद्धवस्थाजन्य भौतिक एवं विचारगत परिवर्तनों का चित्रण है।

'शेष पथ : श्वसित शिशिर की बात ,

शिला शीतल प्राणों का ताप।

गिर रहे पीले जीवन पात,

विरस क्षण सिसक, खिसक चुपचाप !

अस्थि पंजर अब जग की डाल

भर रहीम हिल-हिल ठंडी सांस

कुहासे में स्मृति की आवृत

विगत यौवन के दाल मधुमास। " (रश्मिबंधन , पृ सं : 95)

हिंदी कहानी में वृद्धों की समस्याओं, परिवार में वृद्धों की अवमूल्यित स्थिति का चित्रण अनेक संदर्भों में मिलता है। वृद्धा की जायदाद हड़पने का रिवाज इस देश में नया नहीं है। इस विसंगति पर कहानी यात्रा के आरंभिक दिनों में प्रेमचंद ने लिखा था, 'बूढी काकी' - 1921 इसमें घर की छोटी बच्ची लाड़ली काकी को प्यार करती है। और पूरी कहानी में सिर्फ लाडली ही काकी के लिए फिक्रमंद रहती है। 'ईदगाह' कहानी में हामिद अपनी बूढी दादी अमीना केलिए फिक्रमंद रहता है और अमीना भी हामिद को बेइंतहा प्यार करती है। इसके आलावा 'बेटों वाली विधवा', 'माता का हृदय', पंच परमेश्वर' आदि कहानियाँ वृद्धों की समस्या पर आधारित हैं।

आधुनिकता ने संयुक्त परिवार तथा वृद्धों के हितों को किस हद तक प्रभावित किया है

वह आधुनिक हिंदी कहानी की विकास परंपरा के सर्वेक्षण से भी पता चलता है। चालीस के दशक के बाद की हिंदी कहानियों में स्पष्ट रूप से संबंधों के टूटने का सबसे दुःखद पहलू यह है कि परिवार में माता-पिता तथा अन्य वृद्ध अकेलेपन के शिकार हैं। उन्हें परिवार की गतिविधियों में शामिल होने या हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है, वे केवल तमाशबीन और परमुखापेक्षी हैं। इन बुजुर्गों के त्याग के प्रति पचास के दशक में अनेक कहानियाँ लिखी गयीं। मार्कडेय की कहानी 'अकेला' , 'गुलरा के बाबा ', शिवप्रसाद सिंह का 'कर्मनाश की हार' , मोहन राकेश द्वारा रचित 'आद्री' , कमलेश्वर की 'देवा की माँ', मन्नू भंडारी की 'अकेली ', 'रानी माँ का चबूतरा' , धर्मवीर भारती – 'मेरे लिए नहीं ', अमरकांत की कहानी टिफ्टी कलक्टरी, 'दोपहर का भोजन' , भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ की दावत' , उषा प्रियंवदा द्वारा रचित 'वापसी', रविंद्र कालिया कृत 'पिता' आदि पारिवारिक कहानियाँ वृद्ध विमर्श की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

अब तक एक दर्जन से अधिक उपन्यास बुजुर्ग पीढ़ी की चिंताओं पर आधारित दृष्टि में आये हैं। वृद्ध जीवन पर आधारित निम्न उपन्यास है-मस्तराम कपूर-'विषय-पुरुष', पंकज बिश्ट-'उस चिड़िया का नाम', काशीनाथ सिंह, 'रेहन पर रग्घू', चित्रा मुद्गल-'गिलिगडू', निर्मल वर्मा 'अंतिम अरण्य', हृदयेश -'चार दरवेश', अज्ञेय-'अपने-अपने अजनबी', कृष्णा सोबती-'समय-सरगम', ममता कालिया-'दौड़', रवीन्द्र वर्मा 'पत्थर ऊपर पानी' और डॉ सूरज सिंह नेगी के तीन उपन्यास हैं-'रिष्तों की आंच', 'वसीयत' और 'नियति चक्र' आदि है।

जहां एकतरफ 'समय सरगम' में दो समानधर्मा वृद्ध समय को आशीर्वाद की तरह गुजार रहे हैं, वहीं बहुतेरे घर से बेदखल हो रहे हैं, मारे पीटे जा रहे हैं (गिलिगडू) या घर से दूर

पुलियाओं पर बैठकर समय गिन रहे हैं (चार दरवेश) और कुछ नहीं तो भारतीय आश्रम व्यवस्था से निकल मठों में (विषय-पुरुष) या पांचवां आश्रम की शरण में हैं। ऐसे कम ही हैं जिन वृद्धों को 'रिश्तों की आंच' मिल रही हैं, 'नियतिचक्र' में पिसकर भी सुबह के भूले शाम को लौट आते हों और जिन्हें बुजर्गों के हाथों से 'वसीयत' मिलती है। उपन्यास साहित्य समाज व परिवार में बुजुर्ग सदस्यों की स्थिति व बदलते रूप से दो-चार हुआ जा सकता है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में कृष्णा सोबती का-'समय-सरगम' एक प्रयोग है। ऐसे सौभाग्यशाली कहां हैं जो एकके बिछुड़ जाने पर अकेले होकर घुटघुट कर न जीते हों। कृष्णा सोबती की रचना में 'आरण्या' और 'ईशान' दोनों मिलकर जैसा जीवन जीते हैं वह रचनाकार की कल्पना की दुनिया भले ही हो पर आदर्श वृद्ध जीवन की झांकी दिखाई देती हैं और भारतीय पंरपरा को नई दिशा मिलती है। अन्यथा वृद्ध मौत का इंतजार करने का दूसरा नाम रहा है।

तीन उपन्यास में मृत्यु के दर्शन होते हैं- 'अंतिम अरण्य', 'उस चिड़िया का नाम' और 'अपने-अपने अजनबी' इनमें मृत्यु को दर्शन के स्तर पर जीने व समझने का गंभीर प्रयास है। 'अंतिम अरण्य' में मृत्यु उपन्यास का मूल स्वर रहा है। नायक मृत्यु से आक्रांत या डरा हुआ नहीं है। नजदीक आती मृत्यु का अहसास नजदीक रहने वाले ही चिंतन करते हुए दिखाई देते हैं। 'उस चिड़िया का नाम' में बेटा घर आता अवश्य है पर मृत्यु संस्कार में किसी तरह की दिलचस्पी नहीं लेता। बेटी, भाई के इस व्यवहार से चौंकती है, जब वह किसी चिड़िया की खोज में निकल जाता हैं। उसे कर्मकांड में विश्वास नहीं हैं। 'अपने-अपने अजनबी' में 'रहस्य' बड़ा सवाल है। ईष्वर और मृत्यु दोनों ही रहस्य है।

कुत्ते की पसंद तो हो सकती है लेकिन घर के मुखिया वृद्ध की नहीं। चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'गिलिगडू' में एक कोना में किसी तरह सांस ले रहा वृद्ध है तो उसका मित्र पूर्व सैनिक अपने औरस द्वारा मारकर छोड़ दिया जाता है। दोनों चाहते हुए भी एक दूसरे के घर नहीं जा पाते हैं जब एक जाता है तब तक वह कई दिनों पूर्व दुनिया से कूंच कर चुका होता हैं। हर वृद्ध की नियति है मौत और इस विषय पर ग्रंथ भरे पड़े हैं। चारों वृद्ध कहने को तो अपने-अपने घर में रहते हैं पर उनका मिलन स्थल बनती है शहर के बाहर -पुलिया। हृदयेश का 'चार दरवेश' में बुजुर्गों की शरणस्थली पुलिया बनती हैं जहां वे दुनिया जहान की बातें खुलकर करते हैं। घरों से उखड़े लोग अपने लिए उपयुक्त जगह घर, मुहल्ले और शहर से दूर दिन बिताते हुए नजर आते हैं।

'बहुत जी लिए अपनों के लिए' जैसे उद्गार जब निकलते हैं तब एक वृद्ध पिता का परिवार से मोह भंग होने की दास्तान है 'रेहन पर रग्घू'। जिसके दोनों बेटे उनसे दूर चले जाते हैं बार-बार बुलाने पर भी नहीं लौटते हैं। वह जमीन का महत्व समझता है सो अंतिम समय में बेटों से आकर जमीन बेचने के लिए कहता है क्योंकि उससे यह काम नहीं हो सकता। वह बड़े बेटे के द्वारा छोड़ दी गई पत्नी के साथ रहता है। लेकिन बुजुर्ग होते पिता और उसके खास प्रिय व धरोहर बेटा क्योंकर दूर हो रहा है? इस भावना की मूल तक जाने का प्रयास डॉ सूरज सिंह नेगी के उपन्यास 'वसीयत' में बखूबी हुआ है। इसमें न केवल पिता की चिंता है अपितु उसका समाधान भी खोजा गया है। समधान रचना तक ही नहीं व्यवहार के धरातल पर भी पत्र व डायरी के रूप में हैं। वर्तमान समय में रिश्तों की समस्या बड़ी पेचीदा, जटिल और विकट होती चली जा रही पिता-पुत्र के ऐसे ही पहाड़ होते दर्द को विषय वस्तु बनाया है अपने

तीन उपन्यासों में डॉ नेगी ने 'रिश्तों की आंच', 'वसीयत' और 'नियति चक्र'। वर्तमान दौर में पिता-पुत्र संबंध बड़े बदलाव से गुजर रहे हैं।

इस खास संबंध में आ रहे बदलाव को 'वसीयत' उपन्यास में चित्रित किया हैं। एक तरफ पिता अपने बेटे के अलगाव में है तो दूसरी तरफ अपने पिता को वक्त न देने के पश्चाताप है जो पुत्र द्वारा उपेक्षा करने पर आंसू बहाता नजर आता है। 'रिश्तों की आंच' मुकम्मल परिवार के मुखिया की कहानी है जो परिवार को किसी भी सूरत में बिखरते हुए नहीं देख सकता। वह परिवार को एक रखने का भरसक प्रयास करता है। परिवार रिश्तों के बल पर चलता व बनता है जो हर हाल में निभाने पड़ते हैं। रिश्तों की आंच धीमी हो रही है, ठंडे हो चले हैं। खून सफेद हो गया है फिर भी मुखिया रिश्तों की आंच बनाए रख सकता है।

गोविंद मिश्र जी द्वारा रचित बारहवां उपन्यास, 'शाम के झिलमिल', वृद्धावस्था के अकेलेपन और जिजीविषा के द्वंद्व और टकराहट पर लिखा गया है। रवींद्र वर्मा का 'आखिरी मंजिल ' उपन्यास भी वृद्धावस्था के दंश को केंद्र में रखकर लिखा गया है। वृद्धावस्था में शरीर में जर्जरता और परवशता के कारण प्राय: सभी वृद्ध एक जैसी अवस्था में पहुंच जाते है। इसी प्रकार वृद्धावस्था की समस्या को एक अलग ही कोण से उठाते हैं रमेशचंद्र शाह के उपन्यास 'सफेद परदे पर' ।

भारतीय संस्कृति में पुत्र को बड़ा दायित्व दिया गया है लेकिन वह हर दायित्व से मुक्त हो पलायनमुखी है। पिता के लिए पुत्र उस समय शोक गीत हो जाता है जब वह पिता की अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरता है। तब पाली गई अपेक्षाएं शोक गीत के रूप में शेष रह जाती है। आधुनिक दौर पुत्र की आकांक्षाओं से पिता की अपेक्षाओं से संघर्ष का है। इस संघर्ष में

पिता के हिस्से में अपेक्षा के बजाए उपेक्षा मिलती है। भारतीय संस्कृति की पाश्चात्य संस्कृति से मुठभेड़ है। यह देश राम और श्रवणकुमारों का रहा है लेकिन वर्तमान में व्यक्तिवादी सोच बढ रही है। भारतीय वृद्ध परिवार में हाशिये पर है। युवाओं में भारतीय संस्कारों का अभाव है, परंपराओं को दकियानूसी मानकर कथित आधुनिकता की दौड़ में, मां-पिता को घर से बाहर का रास्ता दिखाने से नहीं चूक रहे हैं। आपसी रिश्तों में आ रही गिरावट से पिता-पुत्र दो ध्रुवों अर्थात नदी के दो किनारों की तरह हो चले हैं। नयी पीढ़ी पाश्चात्य दिखावे की शिकार व बुरी तरह से भटकी हुई है। इस दौर में जब मूल्यों पर व्यक्तिवादिता और दिखावा हावी हो चला है तब वृद्धों के लिए क्या वृद्धाश्रम ही अंतिम शरणस्थली है?

वृद्ध जीवन से संबधित इन साहित्य रचनाओं में हम पाते हैं की वृद्धावस्था में मनुष्य का जीवन उपेक्षित एवं तिरस्कृत हो जाता हैं। उन्हें अपनी भावनाओं, संवेदनाओं एवं इच्छाओं पर अंकुश लगाकर रहना पड़ता हैं। संतान को बुढ़ापे का सहारा मन जाता हैं। लेकिन बहुत काम लोगों को यह सहारा नसीब हो पाता हैं।

नि:संदेह आज वृद्धों की स्थिति दयनीय हैं अत: आवश्यक हैं की बच्चों में बाल्यावस्था से ही वृद्धजन के प्रति आदर-भाव के संस्कार का बीजारोपण किया जाए। बच्चों को साद साहित्य के संपर्क में लाया जाए जिससे की उनके अंदर मानवीय सद्गुणों का विकास हो। हमारा प्राचीन साहित्य बड़ा ही महत्वपूर्ण हैं जिसमें जीवन के विविधा पक्षों का चित्रण हुआ हैं। यदि उनका अनुशीलन किया जाए तो समाज में बुजुर्गों की ऐसी उपेक्षित एवं तिरस्कृत स्थिति नहीं होगी किंतु दुर्भाग्य हैं की आज उनको महत्त्व नहीं दिया जा रहा। बच्चों को ऐसे

साद साहित्यों से परिचित कराना अवश्य ही है।

सहायक ग्रंथ सूची

साहित्येतिहास में वृद्ध विमर्श - शिवचंद्र सिंह

रचना संचयन - प्रेमचंद

छायावाद का रचना लोक - डॉ रामदरश मिश्र

डॉ रम्या जी एस नायर

सहायक प्राध्यापिका

दयापुरम आट्स आंड साइंस कॉलेज ,

कोषिक्कोड़

फोन : 9496277503

****

21

वैश्वीकरण के दौर में 'आवाँ' उपन्यास

डॉ.षीबाशरत.एस

वैश्वीकरण' शब्द का अर्थ है 'विश्व का एकीकरण'। वर्तमान संदर्भ में वैश्वीकरण का अर्थव्यापक तौर पर बाज़ारीकरण है। इस प्रक्रिया इक्कीसवीं सदी के आरंभ से होता है। विश्व व्यापार, विश्व बैंक आदि संगठन ने अविकसित और विकासशील राष्ट्रों को सार्थिक एवं तकनीकि मदद देकर उन्हें विकासोन्मुख करना उद्देश्य माना। आजकल नेट सेवा, ऑनलाइन शापिंग में हम भी भागीदार बने हैं। अर्थात् हम उपभोक्तावाद के ज़बरदस्त शिकार हैं।

इन अंतर्राष्ट्रीय उपभोक्तावादी संस्कृति ने स्त्री को बाज़ारी चीज़ बना दी है। आज हर वस्तु के उपभोक्ता हैं। विज्ञापन ने नारी के द्वारा अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार के उत्पादनों को व्यापक बनाया। सुधीश पचौरी कहते हैं कि – ''स्त्री के अस्तित्व के दृश्यमान हो उठने के पीछे विश्व के स्तर पर उस उत्तर – औद्योगिक यथार्थ का योगदान है जो औद्योगिक सभ्यता और युग स्थापित जीवन मूल्यों को बदल रहा है।''१ अर्थात् नारी शोषण ज़्यादा हो गये। स्त्री ने बाज़ार को बदला है। आज नारी प्रतिरोध करना सीख गई है। नारीवादी लेखिकाओं में श्रीमती चित्रा मुद्गल का नाम बड़े आदर एवं सम्मान के साथ लिया जाता है। वैश्वीकरण के इस युग में चित्राजी ने अपने कथा – साहित्य में नारी प्रतिरोध को अधिक महत्व दिया है। वैश्वीकरण के प्रभाव से नारी के प्रति होनेवाले अत्याचार, अन्याय, शोषण के प्रति जागरूक बनकर उससे प्रतिरोध कर बचने का आह्वान वे देती रहती है। उनके सन् 1999 में लिखित व्यास सम्मान से

पुरस्कृत 'आवाँ' उपन्यास वैश्वीकरण का पूरा सच्चा चित्र सामने लाता है।

'आवाँ' उपन्यास में मीडिया के जकड़ से पिसती नारी का चित्रण है। ट्रेड़ — यूनियनों की राजनीति, मज़दूर आन्दोलन, कामगार आघाड़ी इन सबमें नारी शोषण है। इसकी नायिका नमिता है। उसके पिता मज़दूर नेता देवीशंकरपाण्ड़े हैं। एक श्रमिक आन्दोलन के दौरान हुए आक्रमण में वह बुरी तरह घायल हुआ। पिता की बीमारी के कारण उसे घर संभलना पड़ा है। अपनी अस्मिता के लिए उसे संघर्ष करना पड़ता है। श्रमिक संगठन के नेता अन्ना साहब जो उसका पिता तुल्य है उसका यौन शोषण करता है। घर के बाहर काम के लिए निकलने के बाद हर जगह वह फँस जाती है। रेलगाड़ी में मिली अंजना वासवानी उसे बाबा ज्वेलर्स में नौकरी देती है। आभूषणों की बिक्री हेतु अंजना वासवानी उससे माड़लिंग करवाती है और इस क्षेत्र में घसीटकर उसका शोषण करती है। वासवानी का उद्देश्य मॉड़लिंग द्वारा संजय कनोई जैसे रईसों को सुन्दर लड़कियाँ उपलब्ध कराना है। जिससे उसे भारी कमीशन मिलती है। वहीं पर करोड़पती संजय कनोई से नमिता की मुलाकात होती है। शादीशुदा निसंतान संजय से उसका परिचय प्रेम में बदलता है। संजय की जाल में नमिता फँसती है। आभूषण डिज़ाइनिंग में ट्रेनिंग लेने हैदराबाद गयी नमिता संजय से गर्भवती हो जाती है। एक दिन पवार से अन्ना साहब की हत्या की खबर सुनकर उसका गर्भपात होती है। तब नमिता को संजय की असलियत का पता चला। उसने फोन में नमिता से कहा कि — ''जानती हो? बाप बनने के लिए मैं ने तुम्हारे ऊपर कितना खर्च किया? उस मामूली औरत अंजना वासवानी की औकात है कि तुम्हारे ऊपर पैसा पानी की तरह बहा सके? उसका जिम्मा सिर्फ़ इतना- भर था कि वह मेरे पिता बनने में मेरी मदद करे और सौदे मुताबिक अपना कमीशन खाए।''२ मैं तुमसे घृणा

करती हूँ कहकर नमिता ने फोन रखा। फिर नौकरानी नीलम्मा से भी वह ज़्यादा सच्चाई जान गई। नमिता वहाँ से सीधे अपनी सौतेली माँ किशोरीबाई के पास आकर नये सिरे से जीना चाहती है। लुइज़ ब्राउन ऐसा कहते हैं कि – ''खूबसूरत औरतों के साथ यौन संबन्ध बनाने की ताकत् और क्षमता को हैसियत का प्रतीक माना जाता है। यह मर्दानगी का प्रमाण है और मर्दों के बीच दर्जे का महत्वपूर्ण पैमाना माना जाता है।''३ चित्राजी ने युगीन समस्याओं को सशक्त ढंग से अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। व्यापार से लेकर देह व्यापार तक फँसी नमिता की समस्याओं को प्रस्तुत करने के साथ – साथ बाज़ारीकृत नारी के मूल्यों को पुन:स्थापित करने का प्रयत्न इस उपन्यास में हुआ है। इसके संबंध में चित्राजी कहती है कि – ''स्त्री की क्षमता को उसकी देह से ऊपर उठकर स्वीकार न करनेवाले रुग्ण समाज को बोध कराना आखिर किन कंधों का दायित्व होगा? अपनी पत्नी को छोड़कर दूसरी स्त्रियों को प्राप्त करने की पुरुष मानसिकता संजय के रूप में चित्रित किया है।

इस बृहद उपन्यास में कई पात्र हैं। नमिता की माँ ऊर्मिला, स्मिता, बाबा ज्वैलर्स की प्रबंध निदेशिका गौतमी, किशोरीबाई, किशोरीबाई की बेटी सुनंदा, जागोरी की अध्यक्षा विमलाबाई, नमिता की बहन मुनिया, करमरकर आंटी, ममता, नीलम्मा और पुरुष पात्रों में अन्ना साहब, संजय कनोई, देवीशंकर पाण्डेय, पवार, सिद्धार्थ आदि प्रमुख हैं। इसके सभी पात्र सशक्त हैं। इस बृहद् कथा को आगे बढ़ाने में ये सब सच्चे परिपोषक हैं। प्रस्तुत उपन्यास में आर्थिक पराधीनता के कारण नमिता को पारिवारिक बोझ झेलना पड़ती है। डॉ. किरणबाला जाजू का मत है कि – ''आर्थिक स्थिति को अगर अच्छी स्थिति में लाने केलिए कोई स्त्री घर से बाहर कुछ काम भी करती है तो उसकी वैचारिक शक्ति और मानसिकता में

कुछ परिवर्तन आता है।''५ इस नये समाज में मानवीय मूल्य और संवेदना के लिए स्थान नहीं है। यहाँ परस्पर संबन्ध, जीवनमूल्य सभी बाज़ारीकृत है। इसलिए अंजना वासवानी ने नमिता को अपनी जाल में फँसाया है। इसका मतलब यह है कि अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने की दौड़ में स्त्री भी शामिल हो गई है। ऐसे लोगों केलिए सौदा देह का है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हुए क्रय – विक्रय में सबसे खतरनाक सेक्स व्यापार है। नमिता के साथ भी यहाँ देह व्यापार का सौदा हुआ है। क्योंकि संजय कनोई के लिए एक अविवाहित लड़की चाहिए अपने बच्चा पैदा करने केलिए। इसके लिए उसने पैसे पानी की तरह बहाया है। डॉ.चन्द्रप्रकाश पाठक के शब्दों में – ''कामुक पुरुष नारी को प्रगति एवं भौतिक विकास की लालसा प्रदान कर उसकी इसी कमज़ोरी का लाभ प्राय: उठाते हैं और यह बात तो समाज में एक आम बात ही हो गयी है। उसका यह षड़यंत्र वास्तव में आज भी नारी का दैहिक शोषण करके समाज को दुर्व्यस्था प्रदान कर रहा है।''६

वैश्वीकरण के कारण पाश्चात्य संस्कृति वर्चस्व को बढ़ावा मिला है। इसलिए यहाँ विवाह, परिवार, दांपत्य, मातृत्वं सब बिकाऊ बन गये हैं। भारतीय जीवन की संवेदना, संस्कृति की अवहेलना हुई है। पारस्परिक संबंध, जीवनमूल्य सभी बाज़ार पर आधारित है। इस भूमण्डलीकरण ने भारतीय परंपरागत स्त्री – पुरुष संबन्धों को बदल दिया है। वैश्वीकरण और बाज़ारवाद एक दूसरे के पूरक हैं। यहाँ सांस्कृतिक मूल्यों को पिछड़ा माना जाता है। चित्राजी ने नमिता के माध्यम से स्त्री की क्षमता को उसकी देह से ऊपर उठाया है। वह नारीशक्ति का प्रतीक है। इसलिए संजय कमोई के विरुद्ध वह प्रतिरोध करती है। भूमण्ड़लीकरण और आर्थिक उदारीकरण ने पूरे विश्व में गरीब लड़कियों को देह – व्यापार

में धकेल दिया है। यहाँ सेक्स खरीदना आसान है। ऐसे सामयिक जीवन यथार्थ को चित्राजी सामने लाती है। 'आवाँ' का आठ भारतीय भाषाओं पर अनुवाद हुआ है। मलयालम में इसका अनुवाद केरल विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफ़सर एवं अध्यक्षा डॉ.एस.तकमणि अम्मा ने किया है। वास्तव में यह उपन्यास समाज को सही दिशा देने की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

उत्तर यथार्थवाद – सुधीश पचौरी, पृ.सं. 307

आवाँ – चित्रा मुद्गल, पृ.सं. 539

यौन दासियाँ: एशिया का सेक्स बाज़ार – लुइज़ ब्राउन, अनुवाद - कल्पना शर्मा, पृ.सं. 124

आवाँ – चित्रा मुद्गल, भूमिका में

मृदुलागर्ग के साहित्य में चित्रित समाज – डॉ. किरणबाला जाजू (मुदड़ा), पृ.सं. 108

हिन्दी उपन्यासों में स्त्री- पुरुष संबन्धों का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन – डॉ. चन्द्रप्रकाश पाठक, पृ.सं. 137

डॉ.षीबा शरत.एस

असोसियेट प्रोफसर, हिन्दी विभाग

टि.एम.सरकारी कॉलेज, मलप्पुरम, केरल।

Mob : 9447743225

Emai। Id – sheebasaraths@gmai l.com

****

22

यौन अस्मिता की तलाश और सवाल पंख वाली नाव के परिप्रेक्ष्य में एक दृष्टिकोण

श्रीवर्षा मोहन

''सेक्स एक सहज प्राकृतिक शारीरिक प्रक्रिया है। यह जितना शारीरिक है उतना ही सांस्कृतिक भी। यह जितना कलात्मक है उतना ही दार्शनिक भी और इन सबसे ऊपर उतना ही मिथकीय भी''। यह दुनिया विविधताओं की है,लेकिन धर्म, रंग,जाती,जेंडर आदि मनुष्य को उच्च एवं निम्न में बांटते हैं। अधिकार जिनके पास होता है, आवाज़ भी उन्हीं की होती है। समाज का यह तरीका है कि संख्या और शक्ति में दुर्बल लोगों के प्रति दमन का मनोभाव ।आज भी ऐसा समुदाय है जिन्हें हाशिए की और धकेला गया है। ऐसे लोगों को अपनी पहचान केलिए लड़ना पड़ता है, जिसे सांस्कृतिक राजनीति (cu ltura l po litics) कहते हैं।

धर्म, जाती और जेंडर पर कई सालों से आंदोलनों के बाद आज भी ये पूरी तरह से हाशियेकृत से बाहर नहीं आ पाया है।कानूनी स्वीकृति मिलने पर भी इन्हें सामाजिक और इंसानियत मान्यता आज भी अप्राप्त है। शुरू में तो इन्हें समलैंगिक कहते थे,लेकिन आज ये लेस्बियन, , उभयलिंगी, ट्रांसजेंडर सभी क्वीर के अंतर्गत आ गए हैं। इसलिए समलैंगिकता कहने से ज़्यादा आज इन्हें क्वीर बताना ही उचित है।

समलैंगिकता एक सामाजिक सच्चाई है। भारत में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक

काल तक की चर्चा का विषय रहा है।पहले तो यह उतना प्रासंगिक नहीं था,लेकिन आज इस समुदाय को पहचानने केलिए एक लोकप्रिय संस्करण ।GBTQ, उन लोगों के लिए Q अक्षर जोड़ता है जो समलैंगिक के रूप में पहचान करते हैं या अपनी यौन या लिंग पहचान पर सवाल उठा रहे हैं। ।GBTQ संस्करण ने समय के साथ साथ हाशिए पर पड़े व्यक्तियों को सामान्य समुदाय में लाने में काफी हद तक सहायता की है।विपरीत लैंगिकता को सर्वमान्य मानने के कारण समलैंगिकता को वे स्वीकार्य नहीं मानते।

'' समलैंगिकता समस्या बनती है उच्च पद द्वारा मान्य और अलंकृत विपरीत लैंगिकता के सामने। आम धारणा है कि स्त्री और पुरुष के बीच का यौन संबंध या विपरीत लैंगिकता ही स्वाभाविक लैंगिकता है। इस लैंगिकता की प्रतिष्ठा के पीछे पुराण,धार्मिक ग्रंथ,पारिवारिक एवं सामाजिक संबंध,धार्मिक संस्थाएं, कला, साहित्यादि का बड़ा हाथ है'' ।पुराने ज़माने से स्वीकृत यह विपरीत लैंगिकता जब तक सुरक्षित रहता है तब तक समलैंगिकता को अस्वाभाविक, प्रकृति विरुद्ध, म्लेच्छ, निंदनीय मानकर समाज द्वारा तिरस्कृत किया जाता है।इन तिरस्कारों का प्रतिरोध साहित्य के माध्यम से ही कर सकता है।

हाशियेकृत समाज को अधिकार की आवाज़ देना साहित्य का दायित्व है।समाज में विद्यमान विसंगतियों, असमानताओं और विद्रूपताओं का निरूपण कर जन मानस में सजगता जागृत करने में साहित्य का बहुत बड़ा स्थान है। समलैंगिकता को केंद्र में रखकर यह जिन जिन परिस्थितियों से गुजरते है,लोग इन्हें किस नजरिए से देखते आदि का चित्रण पंकज बिष्ट के उपन्यास पंख वाली नाव में मिलते हैं। समकालीन हिंदी साहित्य का एक ऐसा उल्लेखनीय उपन्यास है जिसमें गेयिज्म की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर है। आधुनिक समय में

समलैंगिकता दैहिक ही आनंद नहीं बल्कि एक प्रकार की विकृति है जिसे ना इंसानियत मान्यता मिलती है और ना ही 'पंखवाली नाव' इसका आधार है। ''दूसरी और अनुपम था, जो यौन व्यवहार में गड़बड़ी का शिकार था। पर्वसन नहीं तो भी यह किसी एक तरह की पथभ्रष्टता का शिकार रहा था और सब उसने उस उत्पीड़न को अपनी नियति मान लिया था। पर जिसे वह मानने को तैयार नहीं था। यह मेरा तर्क था। अगर यह स्वाभाविक है तो प्रकृति की देन है। प्रकृति की दिशा ही मुड़ गई लगती है। आदमी और औरत के बीच के भेद को खत्म करने की ओर। एक ऐसे उभयलिंगी जीव को विकसित करने की प्रक्रिया में जिसमें न औरत होगी न आदमी। यानी वो औरत भी होगा और आदमी भी'' ।यहां अनुपम के समलिंगी व्यक्तित्व का पता लेखक दे रहा है। क्या समलैंगिक होना एक अपराध है?वैसे भी आजकल सब समानता की बात करते रहते है,लेकिन बात जब हाशिएकृत समाज की और आता है तो क्या यह समानता ऐसे लोगों को मिल रहा है?यहां लोग इन्हें अलग नज़रिए से देखने का प्रयास करते हैं।समलैंगिक संबंधों को लेकर दुनिया भर में बहस होती रही है। कई देश इसे कानूनी मान्यता दे चुके हैं। भारत में भी इसे निजी अधिकार बताकर समलैंगिकता को वैधता प्रधान करने की मांग उठती रही है। पर अड़चन यह है कि यहां के सामाजिक बनावट में ऐसे रिश्तों को सहज रूप से स्वीकार कर पाना बहुत सारे लोगों केलिए कठिन है । 'पंखवाली नाव' इसका एक उत्तम उदाहरण है।

''समलैंगिकता का निश्चित रूप से कोई फायदा नहीं है, लेकिन इसमें शर्मिंदा होने की कोई बात नहीं है,कोई बुराई नहीं,कोई गिरावट नहीं, इसे बीमारी के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है,बल्कि इसे यौन विकास की एक निश्चित सेक्सुअल अरेस्ट द्वारा निर्मित यौन

क्रिया का एक रूपांतर है'' ।समलैंगिकता पर सिगमंड फ्रायड के यह विचार आज बहुत महत्वपूर्ण है।एक तरह से कहा जाय तो यह उन लोगों केलिए एक जवाब है जो समलैंगिकता को विकल्प के रूप में देखते हैं।

उपन्यास रूप में रचित इस रचना का बारह कड़ियां हैं। एक कड़ी का प्रत्येक कहानी भी है।उपन्यास की पहली कड़ी है 'कैक्टस वाला बंगला'। कहानी की शुरुआत उससे होती हैं जहां सालों बाद अनुपम और विक्रम की मुलाकात होता है।यहां अनुपम समलैंगिक है।अनुपम को केंद्र में रखकर समलैंगिक भावनाएं एवं विषमताओं का खुला चित्रण करना ही लेखक का उद्देश्य है ''हमने जैसा समाज बनाया है इसमें मेरे लिए कोई जगह नहीं होगी ,कोई गुंजाइश नहीं ,लेकिन प्रकृति होगी जिसके मधुर बूंदें सही और गलत सब पर समान रूप से पड़ती ''। समलैंगिकों के प्रति समाज की रुख को लेखक ने कुछ इस प्रकार स्पष्ट किया है।यहां अनुपम और विक्रम दोनों कलीग्स थे। समय के साथ साथ दोनों अच्छे दोस्त भी बनते है।विक्रम के साथ अनुपम को देखकर लोग उससे पूछते हैं कि यह तो वह समलैंगिक है न?। सोचनेवाली बात है कि आजतक हम किसी ने भी यह पूछते हुए नहीं देखा कि यह तो वही विषमलैंगिक है न? ।लेकिन इन लोगों केलिए ऐसा भेदभाव क्यों?समाज में अधिकार के साथ जीने का जितना अधिकार बाकी लोगों का है उतना अधिकार इन लोगों को भी है।समाज से यह बराबरी का हक चाहता है यानी सभी लैंगीकताओं को समान अधिकार देना चाहे विपरीत लैंगिकता हो या समलैंगिकता।अगर सभी लैंगीकताओं को समान अधिकार होती तो विक्रम के समुख ऐसे सवालों का ज़िक्र दूसरों द्वारा नहीं होता।यहां सवाल है लैंगिक पहचान का।यहां शर्मिंदा महसूस करने की कोई आवश्यकता नहीं।आजकल बहुत सारे लोग अपने लैंगिकता

को बिना किसी हिचक से समाज के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं।

पंकज बिष्ट ने भी समलैंगिकता को छिपाकर नहीं लिखा,उन्होंने खुलकर लिखा है – ''वह गे था, तुकमीजाज और बेशर्म,जिससे लोग काम से काम वास्ता रखना चाहते थे। न इसे कोई घर बुलाता था, न बच्चों से मिलवाता था।वह खतरा था जो किसी को भी और कहीं भी शिकार बना सकता था। चलता फिरता ड्रैकुला'' ।उपन्यास के चौधी कड़ी का नाम ही लेखक ने ड्रैकुला के दांत रखा है।यहां ड्रैकुला के दांत प्रयोग से शायद समलैंगिक लोगों की तुलना ड्रैकुला से करना लेखक का उद्देश्य होगा,क्योंकि वह ड्रैकुला की तरह दूसरों को अपने शिकार बना देता है।उपन्यास में भी अनुपम विक्रम के प्रति अपनी चाहत को कुछ इस प्रकार व्यक्त करता है –''मैं भी आपसे किसी औरत के तरह ही प्रेम में भागीदारी करना चाहता हूं'' ।अनुपम का विक्रम से किया गया यह प्रस्ताव विक्रम के मन में इतनी गहरी जुगुप्सा और घृणा जगाता है मानो सारे राह उसका बलात्कार कर दिया गया हो।यानी '' शारीरिक क्रियाएं नहीं ,उसके संदर्भ निर्णायक होते है '' । अन्य सब सर्जनात्मक जिम्मेदारियों से कटकर देह का उत्सव मानना है।यदि समलैंगिकता समाज का अंतिम लक्ष्य है तो क्या मानसिक विकृति का ही लक्षण नहीं? ।

पंकज बिष्ट ने सेक्स की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी है-''आज सेक्स केवल प्रजनन नहीं। आनंद और सहभागिता का माध्यम भी है '' ।समलैंगिकता को कानूनी तौर पर मान्यता और स्वीकृति मिलते हुए भी क्या समाज में और लोगों के मन में इन्हें स्वीकृति मिली है? उत्तर तो साफ़ है, नहीं।लोग कभी भी यह सोचते नहीं है कि ऐसा क्यों है? इनके समलैंगिक व्यवहार के पीछे कोई कारण तो जरूर होगा ही।आज भी लोग इसे एक बीमारी की नज़र से

देखने का प्रयास कर रहे हैं।

अनुपम परिवार के माथे पर कलंक है।वह मर चुका है।परिवार की स्मृतियों से नहीं अपनी तमाम टीस आकांक्षाओं और सपनों के साथ जिन्हें आत्मकथात्मक उपन्यास की पांडुलिपि में दर्ज कर वह समाज को सौंपना चाहता है। नो एंट्री की निषिद्ध तख्ती को आंगूठा दिखाकर इस बहती नाव को पंख लगाने का विकल्प तो दे देता है।यहां लेखक समलैंगिक से ज़्यादा,हमारे अपने द्वंदो और संकीर्णताओं को टटोलने का आग्रह करते हैं। संक्षेप में कह सकते है कि 'पंखवाली नाव' एक ऐसा उपन्यास है जिसमें मनुष्य की असामान्य वासनाओं और समान लिंग के प्रति आकर्षण का चित्रण है। घर और समाज से बहिष्कृत गे युवकों का खुला चित्रण ही 'पंखवाली नाव' में मिलता है।

संदर्भ

किन्नर: सेक्स और सामाजिक स्वीकार्यता – प्रियंका नारायण-पृष्ट 91- 2021 – वाणी प्रकाशन

क्वीर विमर्श- के वनजा- पृष्ट 14- 2021-वाणी प्रकाशन

पंखवाली नाव- पंकज बिष्ट- पृष्ट -87- 2009- राजकमल प्रकाशन

सिगमंड फ्रायड- https:// en.m.wikipedia.org/wiki/Sigmund_freud%27s_ views_on_homosexua lity

पंखवाली नाव -पंकज बिष्ट- पृष्ट-34-2009- राजकमल प्रकाशन

पंखवाली नाव- पंकज बिष्ट- पृष्ट-67-2009- राजकमल प्रकाशन

पंखवाली नाव – पंकज बिष्ट – पृष्ट- 78- 2009 राजकमल प्रकाशन

पंखवाली नाव- पंकज बिष्ट- पृष्ट- 88 – 2009-राजकमल प्रकाशन

पंखवाली नाव- पंकज बिष्ट- पृष्ट-189-2009- राजकमल प्रकाशन

श्रीवर्षा मोहन

शोधार्थी

एम.जी.कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

****

23

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में गाँव का वैश्वीकरण

डॉ. ज्योतीश्री बालकृष्णन

उपन्यास विधा अपने उत्भव से लेकर अभी तक विकासवान विधा रही है। आज के वैश्विक-आर्थिक विचारधारा का प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी पड़ा है। प्रेम-भाव, संवेदना, ममता आदि अब साधारण लोगों के जीवन से अलग होता जा रहा है। उनके स्थान पर केवल पूँजीवादी स्वार्थतत्परता और लोभी मानसिकता आदि प्रमुख बन गया है। आज वाट्सअप, फेसबुक, इंटरनेट, मोबाइल आदि लोगों की दुनिया बन चुकी है। इसलिए हमारा संस्कार, संवेदना और रिश्ते आदि यांत्रिक बन गया है। यह हमारे समकालीन साहित्यकार अपनी कृतियों द्वारा सूचित करते हैं।

हिंदी उपन्यासों में वैश्वीकरण का प्रभाव और प्रतिरोध कई रूपों में है। हिंदी कथा साहित्य जगत में लगभग पिछले दो दशकों से भूमंडलीकरण पर चर्चा हो रही है। इस यथार्थ को सशक्त, प्रभावशाली एवं मार्मिक रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय ममता कालिया, अलका सरावगी, काशीनाथ सिंह, रजु शर्मा, प्रदीप सौरभ, रणेंद्र आदि को है।

समसामायिक भूमंडलीकरण की अवधारणा आधुनिक जीवन की परिकल्पना है जो परंपरागत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' से कदापि भिन्न है। दुनिया को एक छत्रछाया में ढ़ालने से ज़्यादा यह दुनिया को एक बड़ा मार्केट बनाने पर तुला है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में विदेशी

कंपनियों को भारत की मिट्टी में निवेश करने की अनुमति देकर अर्थव्यवस्था को विदेशीकृत करना इसका गूढ़ लक्ष्य है। वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारतीय निवेश भले ही विकास की ओर है, किंतु एम.एन.सी. कंपनियों की भरमार भारत की प्राकृतिक संपत्ति एवं संस्कृति को हानि पहुँचाता रहता है।

कथाकार रणेंद्र का उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता', खतरे में पड़ती भारत की प्राकृतिक जीवन रीति की कहानी है। वर्तमान में आदिवासी समुदाय पूँजीपतियों के कारण सैकड़ों परेशानियों से उलझ रहे हैं। कथाकार ने झारखंड के असुर समुदाय के शोषण और प्रतिक्रिया की कथावस्तु से पूँजीवाद, उदारवाद एवं भूमण्डलीकरण जैसे गंभीर मुद्दों पर आलोचना की है। झारखंड राज्य बनने के बाद कई कारण बताकर वहाँ के आदिवासियों से उनकी ज़मीन और उनके रहने का बसेरा छीन गया था। सरकार पूँजीवादी सभ्यता की रखवाली करके आदिवासियों से अवैधिक रूप में भूमि हस्तांतरण कर रहे थे। संविधान में कई अनुसूचियाँ एवं एक्ट जोड़ने के बावजूद यह सिलसिला आज भी ज़ारी है। अशिक्षित एवं संवेदनशील आदिवासियों से ज़मीन रेहन पर रखवाना, पट्टे के नाम पर बेनामी हस्ताक्षर बनाना एवं झूठे अधिकार पत्र बनाना बड़ी कंपनियों और सरकार की मिली प्रयत्न है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में आदिवासियों के हक की कई एकड़ ज़मीन पूँजीपतियों के हाथ में हैं जहाँ बड़े एम.एन.सी., मॉल या शोपिंग काउंप्लेक्स बना रहे हैं। 'ग्लोबल गाँव के देवता' के कथा के केंद्र में झारखंड के कीकट क्षेत्र के असुर समुदाय है। उपन्यासकार यहाँ दो देवताओं का उल्लेख करते हैं जो 'असुर' जाति के विनाशक बनकर आते हैं- वेदांग और टाटा। 'वेदांग' नाम तो देशी लगता है परंतु असल में वह कंपनी विदेशी है। उपन्यास में एक जगह कहा गया

है कि, पूँजी, टेक्नॉलजी और मीडिया की मदद से इन कंपनियों ने औजार बनाना शुरू कर दिया और इसी प्रकार साधारण आदिवासियों की रोज़ी रोटी छीन गयी। उनके गलाए हुए लोहे के औजारों की पूछ बंद हो गई। जीने केलिए वे हल चलाकर खेती करने लगे तो बोक्सैट की खदान वहाँ भी उनकी ज़मीन को निगलने लगा।

कोयला क्षेत्र के शिवदास बाबा के चरित्र से उपन्यासकार अशिक्षित जनता में व्याप्त धार्मिक शोषण को भी सामने रखते हैं। बाबाजी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के साथ मिलकर भोली-भाली असुर जनता को ढ़गते हैं और अपनी स्वार्थपूर्ति करते हैं। सरकार भी इन एम.एन.सी. के साथ जुड़ जाते हैं और अपने खिलाफ होनेवाले शोषण के प्रति आवाज़ उठानेवालों को 'नक्सलवादी' करार देता है। अपनी प्राकृतिक सम्पदा, संस्कृति एवं ज़मीन के रक्षकों को माओवादी या उपद्रवी घोषित कर मार या सलाखों के पीछे डाल देता है।

यह अन्याय आदिवासी अस्मिता का प्रश्न उठाता है साथ ही बाज़ार के भूमंडलीकरण से उत्पन्न संकट को सामने लाते हुए पूरी दुनिया पर मँडरा रहे साम्राज्यवाद के खतरों से भी परिचित कराता है। जो उपन्यास की प्रमुख विशेषता भी है। आदिवासी समुदाय का दुःख-दर्द एवं संघर्ष, अन्याय की मुख्य कथावस्तु बन जाती है। विकास के नाम पर बाज़ार के वैश्वीकरण ने दुनिया की एक बड़ी आबादी को विनाश की ओर धकेल दिया है। बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण करना, जंगलों को काटकर इमारतें बनाना, खनिजों की आवश्यकता एवं सीमा से अधिक उपभोग करना आदि वैश्वीकरण की नतीजा है। यह जंगल में रहनेवाले आदिवासियों के जीवन को संकट में डालता है।

वैश्वीकरण के तहत ग्लोबल गाँव के देवताओं के आगे हमारा गाँव जितना कायर

और बेबस है, प्रस्तुत उपन्यास इसका दस्तावेज है। वैश्विक गाँव का जैसे-तैसे विस्तार होता जा रहा है, वास्तविक गाँव जैसे-वैसे ही संकुचित होता जा रहा है। वैश्विक गाँव, वास्तविक गाँव को तेज़ी से निगल रहा है। वैश्वीकरण जिस तरह ग्रामीण जीवन को प्रभावित, प्रदूषित व विगलित कर रहा है, इसका जीवंत दृष्टांत है 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास।

निष्कर्षतः तकनीकी विकास एवं स्वावलंबी अर्थव्यवस्था विकासोन्मुख राष्ट्रों केलिए प्रगति की ओर सफल सार्थक कदम है। किंतु बस विकास के साथ विदेशी बौद्धिक पारतंत्रता भी भारतीय संपदा को हानि पहुँचा रहा है। भूमंडलीकरण द्वारा बाहरी तत्वों की घुसपैठ आसान हो गई है जो भारत की स्वजनस्नेही आदिवासी जीवन को रुग्ण कर रही है। उपन्यास के अंत में हमें 'असुरों' से नहीं, ग्लोबल गाँव के इन 'देवताओं' से डर लगने लगता है। प्रस्तुत उपन्यास आदिवासी जीवन पर हावी होते शोषण और मुक्ति के संघर्ष की मार्मिक अभिव्यक्ति को संयमित, संवेदनशील एवं यथार्थपरक बनाता है।

संदर्भ :-

1. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2016
2. भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास – डॉ. ज्ञानेश्वर देशमुख- हिंदी बुक सेन्टेर, नई दिल्ली – 2019
3. इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य – सं. रवींद्रनाथ मिश्र, लोकभारती प्रकाशक इलाहाबाद

डॉ. ज्योतीश्री बालकृष्णन

असोसिएट प्रोफसर
हिंदी विभाग
एस.डी.कॉलेज, आलप्पुष़ा

24

उपनिवेशवाद के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर: रंगभूमि के विशेष संदर्भ में

सोजा एस ओ

आज का युग वैश्वीकरण का युग है। वैश्वीकरण से सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में कई परिवर्तन आए। सांस्कृतिक और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी विकास देख सकते हैं। वैश्वीकरण के कारण हमारे जीवन मूल्य बहुत बदल गए हैं। साथ ही साथ पारिवारिक मूल्यों में बिखराव आया है। पहले के जैसे पारिवारिक संबंध आज नहीं के बराबर हैं। सभी स्वार्थी हो गए हैं। वैश्वीकृत समाज में व्यक्ति की प्रधानता है व्यक्ति अपने स्व की तलाश में लगा है। सब कुछ होते हुए भी वह अपने को अपूर्ण मानता है। दूसरों को दिखाने के लिए सब कुछ करता है। मानवीयता भाई-चारा आदि भाव लुप्त हो गये हैं।

वैश्वीकरण ने सभी देशों को प्रभावित किया है इससे न भाषा मुक्त है और न साहित्य। इसके कारण साहित्यिक अवधारणाओं में भी बदलाव आया है। राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, मानसिक परिस्थितियां जिस रूप में बदली है, उसी प्रकार साहित्यिक अवधारणाओं में भी बदलाव आया है। लेकिन इससे बहुत पहले ही उपनिवेश से उत्पन्न सारी अमानवीय परिस्थितियों की कल्पना करके प्रेमचंद ने अपनी लेखनी चलाई थी। वैश्वीकरण के इस युग में पूरी दुनिया बाज़ार में बदलती जा रही है। सारी चीजें वैयक्तिक हो या सामाजिक बेचने योग्य माल मात्र बन गई है। प्रेमचंद की रचना रंगभूमि में इस वैश्वीकृत

समाज के अनेक पहलुओं का चित्रण है, चाहे वे उन्नीसवीं सदी के लेखक हो और वैश्वीकरण नाम भी न सुना हो।

वर्तमान संदर्भ में सब कुछ अर्थ के जरिए मोंल जाते हैं। अब विडंबना और वास्तविकता का भेद मिट गया है। आर्थिक, राजनीतिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक जैसे सभी क्षेत्रों में यह पर्याप्त मात्रा में मौजूद है। भूमंडलीकरण के दौर में मानवीय मूल्यों का ह्रास हुआ है। मानव स्वार्थ बन गया है। किसी के मन में दया, सहानुभूति आदि भाव नहीं है। सब अपने लिए जीते हैं। अपने सहजीवि जिए या मरे इसके बारे में उसे कोई चिंता नहीं। उसकी मानवता नष्ट हो गई है। इस स्थिति का वर्णन प्रेमचंद ने रंगभूमि उपन्यास में किया है। पूंजी की लालच में मानव जितना स्वार्थ बन जाता है, इसका खुला चित्र खींचने का प्रयास प्रेमचंद ने किया है।

बनारस के पास के एक गांव पांडेपुर में रहनेवाले भिखारी सूरदास के पास बापदादाओं की थोड़ी जमीन खाली पड़ी है, जिसमें आसपास के जानवर चरने आते हैं। जॉनसेवक इस जमीन पर सिगरेट का कारखाना खोलना चाहते हैं। सूरदास जमीन बेचना नहीं चाहता। ईश्वर भजन में लवलीन होनेवाला सूरदास अपनी भूमि के लिए अहिंसक संघर्ष की सत्याग्रही भूमिका में उतरता है। किसी व्यक्तिगत लाभ की इच्छा से नहीं बल्कि धन के पीछे पागल होनेवाले पूंजीवादी वर्ग को अनैतिकता से बचाने के लिए सूरदास प्रयत्न करता है। सूरदास के मन में निजी स्वार्थ का लेश भी नहीं है। खाली पड़ी जमीन से उसे कोई लाभ नहीं है। लेकिन आसपास के जानवरों को चरने केलिए जगह उपलब्ध होती है, इसीमें उसे संतोष है। कारखाने के निर्माण से होनेवाले दुष्परिणाम व्यक्तिगत उसे उतनी हानि पहुंचानेवाले नहीं, जितने कि बस्तीवालों को। फिर भी सबसे प्रखर विरोध सूरदास ही करता है। वह यह भी

जानता है कि उसके सामने जो प्रतिस्पर्धा है उसकी शक्ति सूरदास से कई गुना ज़्यादा है। परंतु अन्याय के विरुद्ध लड़ने की उसकी इच्छाशक्ति सबल है।

सूरदास अपनी ज़मीन बेचने के लिए राज़ी न होने पर जॉन सेवक छलबल का प्रयोग करता है। शहर के प्रसिद्ध पूँजीपतियों के साथ मिलकर वह ज़मीन हथिया लेता है और सिगरेट का कारखाना खोलने का प्रयास करता है। इसके लिए वह गांववालों को प्रेरणा करता है- ''हमारी जाति का उद्धार कला-कौशल और उद्योग की उन्नति में है।.... जितनी ज़मीन एक आदमी अच्छी तरह जोत -बो सकता है, उसमें घर-भर का लगा रहना व्यर्थ है। मेरा कारखाना ऐसे बेकारों को रोटी कमाने का अवसर देगा.... हमारा कर्तव्य है कि इस धन - प्रवाह को विदेश जाने से रोकें।'' लेकिन सूरदास डटकर इसका प्रतिरोध करता है। उसका कहना है- ''मुहल्ले की रौनक जरूर बढ़ जाएगी, रोज़गार से लोगों को फायदा भी खूब होगा लेकिन.... ताड़ी शराब का प्रचार भी तो बढ़ जाएगा।.... किसान मज़दूरी के लालच में दौड़ेंगे। यहां बुरी-बुरी बातें सीखेंगे और अपने बुरे आचरण अपने गांव में फैलाऐगे।''[1]

पूंजीपति अपने स्वार्थ के लिए नैतिक, अनैतिक का विचार नहीं करता व धन प्राप्ति के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। यहां जॉन सेवक कहता है, ''यह व्यापार-राज्य का युग है। यूरोप के बड़े-बड़े शक्तिशाली साम्राज्य पूंजीपतियों के इशारे पर बनते -बिगड़ते हैं। किसी गवर्नमेंट का साहस नहीं कि उनकी इच्छा का विरोध करें।''[2] वह अपने स्वार्थता के कारण गाँववालों को वहाँ से बेदखल करने का प्रयास करता है। गाँव खाली कराने की चाल चली जाती है पर सूरदास अपनी झोंपड़ी खाली करने को तैयार नहीं होता। इसके विरुद्ध सूरदास के नेतृत्व में आंदोलन होता है और उग्ररूप धारण कर लेता है। गोलियां चलती हैं।

अनेक लोग घायल हो जाते हैं। सूरदास को भी गोली लगती है और उसे अस्पताल पहुँचाया जाता है। मृत्यु शैया पर पड़ते समय वह कहता है- ''हमारा दम उखड जाता है, हाँफने लगते हैं, खिलाड़ियों को मिलाकर नहीं खेलते, आपस में झगड़ते हैं, गालीगलौज करते हैं। कोई किसी को नहीं मानता। तुम दिल में निपुण हो, हम अनाड़ी हैं। बस, वास्तव में किसान मिलकर या संगठित होकर इस मुसीबत का सामना करते तो उन्हें ये दिन न देखने पड़ते।''[3]

इस संघर्ष में वह पराजित होता है किन्तु आत्मिक दृष्टि से पराजित नहीं होता। अपने पराजय को क्षणिक मानता है और सत्य के साथ होने के कारण अंतिम विजय में दृढ़ विश्वास रखता है। लेनिन ने कहा था- 'पूरी शक्ति के साथ खोली लड़ाई के बाद यदि पराजय होती है वह भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी की आसानी से प्राप्त विजय।' सूरदास का विजय इसी प्रकार की थी। उसी का कहना है-''हम हारे तो क्या मैदान से भागे तो नहीं, रोएँ तो नहीं, धांधली नहीं की। फिर खेलेंगे, जरा दम लेने दो। हार-हार कर तुम्ही से खेलना सीखेंगे, एक दिन जीत जरूर होगी।''[4]

बस्ती सिपाहियों के द्वारा हटाते वक्त लोगों में असंतोष फैलता है। बहुत बड़ी तादाद पर भीड़ जमने लगती है, उस वक्त भीड को वहाँ से हटाने के लिए तथा शांत रहने के लिए सूरदास लोगों को आह्वान करता है। लेकिन मि.क्लॉर्क समझते हैं कि यह अंधा लोगों को भडका रहा है, अतः वह सूरदास पर गोली चलाता हैं। जिससे कुछ समय उपरांत सूरदास की मृत्यु हो जाती है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि सूरदास ने अंत तक गलत कदम नहीं उठाया। अपितु, अंतिम क्षण तक केवल दूसरों का भला चाहा, दूसरों के हित की ही बात कही। इतिहास साक्षी है, हर महान आत्मा को गलतफहमी का, वहन का शिकार बनना पड़ा

है। सूरदास का आत्मबलिदान एक गौरव गाथा का रूप लेकर हृदय परिवर्तन का आधार बनता है। उसकी प्रतिमा के सम्मुख शत्रु-मित्र एक भाव से श्रद्धावान हो जाते हैं। जॉन सेवक स्वयं अपनी हार उसके सामने मान लेते हैं। वह कहता है 'लोकमत के अनुसार मैं जीता और तुम हारे, पर मैं जीतकर भी दुखी हुँ , तुम हारकर भी सुखी हो।' इस उपन्यास के बारे में शंभूनाथ ने लिखा है कि- रंगभूमि में कुछ बड़े घरानों- कुंवर भगत सिंह और रानी जाह्नवी, राजा महेंद्रकुमार और इंदु, विनय और सोफिया, मिस्टर और मिसेज़ जॉन सेवक की कथा विस्तार से है। लेकिन मुख्य पात्र है, एक अंधे भिखारी सूरदास की कथा, अन्याय के खिलाफ उसके प्रतिरोधात्मक संघर्ष कथा है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रेमचंद एक यथार्थवादी साहित्यकार है। उनकी सबसे बड़ी अभिलाषा उपनिवेशीकृत स्थिति से भारत की मुक्ति ही थी। अगर हम यह माने कि वैश्वीकरण पुराने पूंजीवादी संचयन और उससे जुड़े विकास का ही नाम है तो दोनों किस्म के आंदोलनों को एक सिक्के के दो पहलुओं के रूप में मानना पड़ेगा। आज समस्त विश्व,वैश्वीकरण की त्रासदी से भयभीत है। अब पूरे विश्व में नवउपनिवेशवादी माहौल है। आज के प्रत्येक विचारक तथा साहित्यकार अपने-अपने ढंग से इस समस्या से जुझ रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रंगभूमि, प्रेमचंद, जनभारती प्रकाशन -इलाहाबाद पृ. 69.

2. वहीं पृ. 181

3. वहीं पृ. 420

4. वहीं पृ. 425

5. प्रेमचंद कथा साहित्य: समीक्षा और मूल्यांकन, डॉ. धर्मध्वज त्रिपाठी, प्रेम प्रकाशन मंदिर - दिल्ली

6. वैश्वीकरण की कसौटी पर प्रेमचंद की कहानियां, रंजिनी कुमारी, जवाहर पुस्तकालय - मथुरा

सोजा एस.ओ

शोध छात्रा, हिंदी विभाग

कार्यवट्टम कैंपस

केरल विश्वविद्यालय

****

डॉ. अन्सा ए

25

'दौड़': वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. अन्सा ए

वैश्वीकरण ने पूरे विश्व को विश्व ग्राम में बदल दिया है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जो हर देश की भौगोलिक सीमाओं को लाँघ कर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक स्थितियों और मूल्यों में अकल्पनीय परिवर्तन लाया है। आज हमारी भाषा, संस्कृति, परंपरा तथा पहचान को फालतू एवं महत्वहीन बनाकर उपभोक्तावाद, बाज़ारीकरण, उदारीकरण, विज्ञापनबाजी संस्कार, आजीविकावाद, आर्थिक साम्राज्यवाद, नव उपनिवेशवाद, प्रौद्योगिकी आदि ने हमारे तमाम जीवंत मानव मूल्यों को निरर्थक एवं बेबुनियाद स्थापित कर दिया है। वैश्वीकरण की इन उलझी हुई स्थितिगतियों की अभिव्यक्ति ममता कालिया जी के 'दौड़' उपन्यास में परिलक्षित है। प्रस्तुत उपन्यास के परिवेश, कथा, पात्र तथा उनकी मानसिकता सब वैश्विक संस्कृति के सूचक है। इसमें शहरी जीवन संस्कृति, औद्योगीकरण से उत्पन्न यांत्रिकता व निर्लिप्त जीवन मूल्यों का प्रभाव साफ दर्शनीय है। यह तत्कालीन समय को प्रतिनिधित्व करता है।

वैश्वीकरण से उपज औद्योगिक उपभोक्तावादी संस्कृति के परिणामस्वरूप बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने हर कहीं अपनी जगह जमा लिया है। इन्होंने नव युवकों को रोज़गार के लोभ जगाकर इन्हें आकृष्ट कराने के लिए व्यापार प्रबंधन पढ़ाने वाली कई शिक्षा संस्थाएँ खोल दी गई हैं। वैश्वीकरण ने विश्व भर को बाज़ार बनाकर दुनिया भर के मानव को

उपभोक्ता या ग्राहक में बदल दिया है। यह आदमी को स्वार्थी व लालची भी बना दिया है। डॉ. रेखा सेठी के अनुसार-''भारत अब भूमंडलीकरण के कारण अंतर्राष्ट्रीय अर्थ तंत्र का एक उभरता हुआ मालगोदाम और विशाल उपभोक्ता बाज़ार बन गया है।''१ इस तरह कहें तो उपभोक्तावाद वैश्वीकरण का पहला हथ कंडा है।

आज ऐसी उपभोक्तावादी औद्योगिक संस्कृति पनप गई है जो चीज़ों की मार्केटिंग करती है। यह आर्थिक प्रक्रिया को बढ़ावा देती है। यह मानव को घर, परिवार व समाज से विलग कर के अकेला रह देता है। कारणवश संबंधों का बिखराव बढ़ गया तथा आदमी आज सिर्फ बेचने वाला, खरीदने वाला तक परिसीमित रह गया। प्रस्तुत उपन्यास के केंद्र पात्र एम. बी. ए उपाधि प्राप्त पवन और उसके दोस्त इस उपभोक्तावादी संस्कार को आगे बढ़ाने वाले हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने रोज़गार के नए अवसर प्रदान करके पवन और उसके दोस्त को नैतिकता के विरुद्ध खड़ा करके एक के बाद दूसरी कंपनी तबदील करने की उत्प्रेरण देती है।

पवन एल. पी. जी यूनिट में प्रशिक्षु सहायक मैनेजर के पद अलंकृत करने के बावजूद भी अपनी नौकरी से अतृप्त है। वह तरक्की के मोह में इससे अधिक तनख्वाह मिलने वाली कंपनी में नौकरी पाने के लिए लालायित व संघर्षरत है। जिस कंपनी ने पवन को उद्योग धंधा सिखाकर कामयाब बनाया उस कंपनी को त्यजकर दूसरी कंपनी में चले जाने के लिए व्यग्र पवन की हरकत पर पिता सवाल उठाते हैं तो वह कहता है- ''मैं जिस दुनिया में हूँ वहाँ एथिकस नहीं प्रोफशनल एथिकस की ज़रूरत है।''२ अपनी कैरियर की पदोन्नति व आजीविका के लिए वह मूल्यों को ही नहीं खून के रिश्तों को भी दूर फेंकने के लिए तैयार है।

पवन और उसका दोस्त उस युवा पीढ़ी के प्रतिनिधित्व करते हैं जो आजीविका के लिए किसी भी अन्याय व हरकत करने के लिए कोई संकोच न महसूस करता। यह मनोवृत्ति उन्हें उपभोक्ता संस्कृति ने सिखाया है। उनके अनुसार उपभोक्ता संस्कार से वे पूर्णतः काबिल व सफल होंगे। पवन का कथन है कि- ''मुझे संस्कृति नहीं उपभोक्ता संस्कृति चाहिए, तभी मैं कामयाब रहूँगा।''३ अपने लक्ष्य व हैसियत के लिए संघर्षरत पवन की उपभोक्तावादी नज़रिए ने निर्लिप्त मूल्य, पारिवारिकता तथा आदमी की मान-मर्यादाओं को तोड़ा है। वह ऐसी औद्योगिक संस्कृति में खड़ा है जहाँ प्यार, ममता एवं पारिवारिक संबंध सब व्यर्थ व बिकाऊ मात्र है।

शहरीकरण और औद्योगीकरण से उत्पन्न यंत्रीकरण ने वैश्वीकरण को बढ़ावा दिया है। यह जीवन को व्यस्त, संघर्ष भरित, अकेलापन से ग्रसित, तनाव ग्रस्त, स्वार्थ लिप्त, संवेदन हीन, संबंध शून्य, जटिल और संबंधों में दरार आदि प्रदान करते हैं। शहरी माहौल की पसंदीदा पवन अपना देश इलाहाबाद त्यागकर व्यावसायिक नगर अहम्मदाबाद में अपना कैरियर बनाता है। जब भी उसे अपना भवन आना पड़ता है तो वहाँ का सब कुछ उसे घृणित, फालतू व स्थानीय लगता है। क्योंकि उसके इर्द-गिर्द शहरी कोलाहल, आपाधापी व मशीनी संस्कार वगैरह न के बराबर है। इस तरह शहरी जीवन के अंधानुकरण के कारण वह शनैः-शनैः अपने घर से विलग हो जाता है। शहरीकरण के होड में फँसते नव युवक किस हद तक ममताहीन, अनैतिक व संकटग्रस्त बन जाता है इसकी ओर भी उपन्यास इशारा करता है।

बाज़ार की प्रक्रिया में कैरियर या आजीविका की प्राथमिकता बहुत है। पवन के लिए शादी पारिवारिक सुख-दुख के साधन नहीं अपितु आजीविका की मदद देने वाले एक

औज़ार मात्र है। इसलिए वह कंप्युटर के पारंगत स्टैला को अपनी संगिनी बनाता है। ये पति-पत्नी के लिए दांपत्य से अधिक अपनी-अपनी आमदनी व कैरियर की प्रमुखता रही हैं। यहाँ ध्यातव्य है कि बाज़ार की ज़रूरतों के आगे व्यक्ति व व्यक्ति संबंध महत्वहीन व निरर्थक है। उपन्यास में एक ओर पवन-स्टैला जैसे पति-पत्नी है तो दूसरी ओर अभिषेक-राजुल जैसी दंपती भी हैं। राजुल को बच्चे के लिए अपना कैरियर की उपेक्षा करना पडा, यह दुख-दर्द उसे हमेशा सताती है। उसकी राय में- ''डबल इनकम नो किड्स।''४ एक ऐसे ज़माने में हम जी रहे थे जहाँ बच्चे ईश्वर का वरदान मानते थे, अपितु आज संतानोत्पत्ति एक आवश्यकता मात्र तक परिसीमित रह गया। मानना है कि एक से अधिक संतान कैरियर के लिए बाधा उपस्थित करेगी। इस तरह बाज़ारू संस्कार तथा आजीविका वाद ने वर्तमान मानव की मानसिकता में भारी परिवर्तन, निर्ममता, संबंध शून्यता भर कर उसे निर्वेयक्तिकता की ओर घसीट लिया है।

विज्ञापन बाज़ारवाद का दूसरा महत्वपूर्ण औज़ार है। यह क्रय-विक्रय में बढ़ावा देता है। ये आज जनता की रुचि- अरुचियों को तय करने लगे हैं। उपभोक्ता इसके प्रभाव में पड़कर इसकी अर्थवत्ता को बिना देखे इसके छल-प्रपंच पर बड़ी ही आसानी से शिकार हो जाता है। यह मानव को आकृष्ट करके बेवकूफ भी बनाता है। उपभोक्ता संस्कार से उत्पन्न विज्ञापन के इस खोखलेपन का चित्रण लेखिका ने बेहद प्रभावी ढंग से उक्त उपन्यास में चित्रित किया है। अभिषेक तथा उसकी पत्नी की आपसी बातचीत विज्ञापन की नकलीपन का खुलासा करने वाली है। अभिषेक का कथन विज्ञापन के खोखलेपन व अनैतिकता को व्यक्त करता है- ''हमें सच्चाई नहीं प्रोडक्ट बेचनी है।''५ यहाँ विज्ञापन की हत प्रभ भरी दुनिया की दिखावा या ढोंग साफ प्रकट हुआ है।

प्रौद्योगिक क्रांति वैश्वीकरण की सबसे बड़ी ताकत है जो आक्रमणकारी के रूप में छिपकर अपनी क्रिया-कलापें करती है। इसने आदमी को मशीनी बना दिया है। आजीविका के चक्कर में पड़कर वह चलता-फिरता है और उसके मन में तनिक भी संवेदना नहीं। मानव का आपसी संबंध अब सिर्फ ई-मेल, इंटरनेट तथा सैटलाइट में सिमट गई। उपर्युक्त उपन्यास के पात्र पवन, स्टैला, सघन आदि अपने परिवार वालों से ऐसे संबंध रखते हैं तथा ऐसे आपसी संबंध रखना उचित ही समझते हैं। यहाँ तक कि पवन व स्टैला की शादी इंटरनेट द्वारा निश्चय कर लेता है, विवाह का संकेत फॉन व ई-मेल के ज़रिए माँ-बाप को सूचित करता है और विवाह का सारा प्रबंधन भी यहीं पर हुआ है। सघन का सारा वक्त इंटरनेट व कंप्यूटर के सामने बिताना, कंप्यूटर में माहिर स्टैला पवन की माँ की सारी सर्जनाओं को फ्लॉपी डिस्क में भरकर देना, स्टैला-पवन का दाम्पत्य सैटलाइट व कंप्युटर के माध्यम से बिताना इत्यादि कई संदर्भ प्रस्तुत उपन्यास में उभर आए हैं जो मानव व उसके दिमाग के ऊपर अपनी ताकत जमाने वाली प्रौद्योगिकी की चालाकी को रेखांकित करती है।

उपभोक्तावादी संस्कृति में पले आज के नव युवक में जट मानसिकता व मूल्यहीनता बढ़ता जा रहा है। प्रस्तुत उपन्यास के पवन, सघन, स्टैला, सिद्धार्थ, अभिषेक, राजुल जैसे पात्र के चरित्र तथा उनकी मानसिकता इसके अनुरूप है। आजीविका वादी पवन का पारिवारिक संबंध व दांपत्य संबंध में शिथिलता छाई हुई है। इसके कारण पवन का पाश्चात्य दृष्टिकोण है। व्यापारिक मनोभाव में पलने वाले पवन अपने माँ-बाप के प्यार का ऋण पैसा देकर चुकाना चाहता है। वह कहता है- ''माँ हमारे आने से आपका बहुत खर्च हुआ है, यह मैं आपको पहली किस्त दे रहा हूँ। वेतन मिलने पर और दूंगा।''६ यहाँ पवन की

संबंधहीनता व जटिल पारिवारिक संबंध का नमूना मिलता है। उपन्यास में लेखिका ने अपने पिता की मृत्यु पर फॉन पर शोक प्रकट कर के उनके अंतिम क्रिया-कर्म में भाग लेने के लिए अवकाश न निकालने वाले हृदयहीन बेटे की छवि भी उभारा है। यहाँ उपन्यासकार ने पुरानी मान्यताओं, मर्यादाओं, नैतिकताओं और आदर्शों को नकार कर उसे बेबुनियाद व निरर्थक माननेवाले उपभोक्तावादी अर्थ केंद्रित नव पीढ़ी का चित्रण करके दूसरी ओर अपनी संतानों के प्यार व आदर- सत्कार के लिए ललायित आकुल-असुरक्षित माँ-बाप का हृदय-विदारक छवि को अनावृत्त किया है।

सारांशतः उपन्यासकार ममता कालिया जी ने वैश्वीकरण व उसकी छाया में पले औद्योगिक उपभोक्तावादी संस्कृति के फंदे में फँसकर अपनी अनुभूतियों को त्याग कर आजीविका के लिए भागदौड़ करने वाले नव मानव, उसकी बदलती मानसिकता व उसके बिगड़ते पारिवारिक संबंधों को जुड़कर 'दौड़' उपन्यास का ताना-बाना बुना है। समूचा उपन्यास इस बात का गवाही देता है कि वैश्वीकरण से उपज नवीन संस्कृतियाँ किस हद तक मानव के सहज मनोवृत्तियों, आचरणों, निष्ठाओं, मूल्यों, मान्यताओं एवं संस्कृतियों पर हमला कर उसे तहस-नहस कर दिया है। मानव मन में जहाँ पहले प्रेम, ममता, त्याग, सेवा, सहानुभूति जैसे मूल्य निहित थे, उसके स्थान पर आज संवेदन शून्यता, संबंध हीनता, अमानवीयता, अपराधीकरण तथा अवसरवादिता आदि ने अपना घर बस लिया है। इस तरह बाज़ार जन्य मानसिकता ने मानव की निजी संवेदना को धीरे-धीरे खत्म कर के उसे आत्म-केंद्रित बना कर वैयक्तिक सुख लोलुपता की मज़ा लूटने तथा अधिक से अधिक पैसा कमाने की होड़ की ओर ले जाते दिखाई देते हैं। विदित है कि प्रस्तुत उपन्यास इन सभी आयामों का

संवहन करता है। खुद ममता कालिया जी का वक्तव्य अत्यंत श्लाघनीय है कि-'' 'दौड़' आज के उस मनुष्य की कहानी है, जो बाज़ार के दबाव, उनके परोक्ष-अपरोक्ष मारक तनाव, आक्रमण और निर्ममता तथा अंधी दौड़ में नष्ट होते मनुष्य के आसन्न खतरे में पड़े मनुष्यत्व को उजागर करती है। यह रचना मनुष्यों की पारस्परिक संबंधों की परंपरा और वर्तमान की जटिलताओं के मध्य विकराल अंतराल की सूक्ष्म पड़ताल करती है।''७ स्पष्टतः यह ममता कालिया जी का रचना कौशल है कि उन्होंने इस लघु उपन्यास के ज़रिए वैश्विक संस्कृति व उसके घातक परिणामों को एक साथ पिरोकर हमारे सम्मुख पेश किया है। यह हमें इन गंभीर व गहन विचारों पर सोचने-विचारने के लिए बाध्य कराते हैं।

संदर्भ संकेत

डॉ. रेखा सेठी- व्यक्ति और व्यवस्था: स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी कहानी के संदर्भ में, पृ. सं. ११९
ममता कालिया- दौड़, पृ. सं. ७२
वही, पृ. सं. ४४
वही, पृ. सं. ३०
वही, पृ. सं. ३९
वही, पृ. सं. ७४
वही, आवरण पृष्ठ से उद्धृत

संदर्भ ग्रंथ

ममता कालिया- दौड़, वाणी प्रकाशन, ४६९५, २१-ए, दरियागंज, नई दिल्ली- ११०००२, प्रथम संस्करण २०००

डॉ. अन्सा ए
सहायक आचार्य
हिन्दी विभाग, सरकारी ब्रेणणन कॉलेज
तलशशेरी, कन्नूर, केरल ६७० १०६

****

26

'अस्थि फूल' उपन्यास में आदिवासी नारी का दर्द : वैश्वीकरण के विशेष संदर्भ में

हीरा चंद्रन

वैश्वीकरण एक जटिल राजनैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक प्रक्रिया है। वैश्वीकरण को वर्तमान धारा के उदारीकरण और निजीकरण से अभिन्न संबंध है। यह पूँजीश्रम, उत्पादन, प्रौद्योगिकी और सूचना के ज़रिए आधुनीकरण, राष्ट्र निर्माण एंव राष्ट्रों के बीच गठबंधन के साथ ही उत्पन्न हो रही है। वैश्वीकरण ने नारी जीवन में कई प्रकार की परिवर्तन लाए । इसकी छाया आदिवासी जीवन पर भी पड़ी। आदिवासी लोग नौकरी ढूँढकर शहर आने लगे। धीरे-धीरे शहर से लोग जंगल में घुसने लगी। इस घुसापन से आदिवासियों की ज़िदगी नुक्सान में पड़ गई। शहरी लोग आदिवासियों की मासूमियत को बारीखी से जानकर उसे अपने वश में कर देते हैं।

समकालीन महिला लेखिकाओं में प्रसिद्ध अल्पना मिश्र द्वारा रचित 'अस्थि फूल' उपन्यास बहुत चर्चित रहा है। अल्पना मिश्र ने अभी तक के लेखन से अपनी एक विशिष्ट जगह साहित्यिक क्षेत्र में बनायी है। यह कृति उसे एक और आयाम तथा रचनात्मक उछाल देती है। सामान्य तौर पर अल्पना मिश्र अपनी रचनाओं में बौद्धिका को महत्व देते हैं। स्वतंत्र पात्रों की सृष्टि करके समाज में औरत और आदमी को अपना अस्तित्व का पता लगाने के लिए प्रेरणा देती है। बल्कि 'अस्थि फूल' उन सभी रास्ताओं से हटकर समाज द्वारा हाशिएकृत

लोगों पर होनेवाली अत्याचारों का खुला अंकन करता है ।

यह उपन्यास आन्दोलन और स्त्री के बिकने के बारे में है। झारखंड की राजनीतिक-सामाजिक पृष्ठभूमि में जंगल और जमीन के सरोकारों को रेखांकित करते हुए अल्पना मिश्र यहाँ उन स्त्रियों की पीड़ा का बयान कर रही हैं जिन्हें हरियाणा जैसे सम्पन्न इलाकों में, जहाँ पुरुषों के मुकाबले स्त्रियों की संख्या बहुत कम हो गई है, बेच दिया जाता है। उनका भी इस्तेमाल यहाँ पुरुषों की उत्पत्ति के लिए ही किया जाता है, गर्भ में लड़की हो तो उससे पैदा होने से पहले ही निजात पा ली जाती है। अपने गर्भ पर स्त्री का कोई अधिकार नहीं, ठीक वैसे ही जैसे आदिवासियों को उनके जंगलों की सम्पदा पर कोई अधिकार नहीं, जिन्हें वे जाने कितनी पीढ़ियों से अपना घर मानते आए हैं। स्त्री-गर्भ यहाँ पृथ्वी के भीतर छिपी खनिज सम्पदा के दोहन का रूपक बनकर आता है। पूरे विश्व में वैश्वीकरण का प्रभाव विद्यमान है। वैश्वीकरण से उत्पन्न विस्थापन की जड़ों की व्यापन बड़ी गहराई उपरोक्त उपन्यास में हुआ है। वैश्वीकरण की प्रभाव में उजागिर विस्थापन की दयनीय स्वरूप का मिसाल 'अस्थि फूल' उपन्यास में देख सकते हैं।

अस्थि फूल उपन्यास में स्त्री के बिकने के बारे में है। झारखंड के पृष्ठभूमि में जंगल वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में नगर के लोग जंगलों को हडपने की कोशिश करती है। शनै: -शनै: आदिवासी के ज़िन्दगी बिगड़ने लगते हैं। जो जंगल उनका अपना रहे ,उसे नगर निवासियों द्वारा झीन लिया जाता है। फलत: आदिवासी जिन्दगी मुसीबतों में पड़ जाता है । उन्हें काम ढूँढते-ढूँढते शहर आना पड़ा। भूखे प्यासे लोगों को दिन-रात शहर में रोजगार केलिए इधर-उधर घूमना पड़ा। इनकी विवशता को शहरी लोग अपना फायदा समझते हैं। वे उन्हें अपने

ज़रूरतों केलिए इस्तेमाल करते हैं।जामुन बेचने केलिए गाँव से शहर आयी एक परिवार की करुण चित्रण उपर्युक्त उपन्यास में विद्यमान है। पति रोज़गार का इन्तजार करता है तो सड़के के किनारे अपने बच्चों के साथ बैठकर पत्नी जामुन बेचने लगती है। बच्चे भूखे-प्यासे हैं। नन्हे बच्चे भूख के कारण रोने लगते हैं।''छुटके के उत्पात से परेशान होकर अम्माँ ने उसे खींच कर अपनी पीठ पर सटा लिया और नन्ही को साड़ी के आँचल में लुका लिया । ब्लाइज़ खोलकर दूध पिलाने की कोशिश करने लगी। नन्ही चिढकर, छिटक कर निकल आती। क्या करें? दूध हो तब न पीती!''(1) यहाँ भूखे-प्यासे आदिवासी लोगों की दयनीय स्वरूप दर्शाया गया है।

जंगल से काम के नाम पर और शादी के नाम पर लड़कियों को हरियाणा के गाँव एवं शहरों में ले जाते हैं। एक बार अपने घर छोड़कर निकली तो कभी वे अपने घर नहीं लौट सकती हैं। वे हमेशा केलिए फंस जाते हैं। उसकी रोने की आवाज़ भी किसी के कान को नहीं छुएगा। अगर छुए तो भी ममता रूपी प्रकाश कहीं नहीं प्रज्वलित होंगे ।प्रस्तुत उपन्यास के पात्र इनारा के साथ भी ऐसा ही होता है। इनारा शादी के बाद अपने पति के घर आती है। उन्हें नए कपड़े,आभूषण और खाना मिलता है। वह बड़ी खुशी से आगे की ज़िदगी की सपनाएँ देखने लगी। लेकिन उसकी सपनाएँ केवल सपनाएँ बनकर रही। उसी रात के खाने के बाद उस परिवार के चारों आदमियों में से एक-एक उस पर अपना ताकत दिखाते हैं। इनारा बचने की कोशिश की, विनती की,और पैर पकड़ी । मगर कोई फायदा नहीं हुई। ''कुछ देर बाद हरिन्दर बाबू अपना काम कर उठे और उसे नंग धंडंग छोड़कर दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल गए। उनके जाते ही शिवराम बाबु दर घुसे और दरवाजा बंद कर दिया। तीकरी बार किसी के आने की आहट तक से कुछ ज्ञान थाउसके बाद उसे कुछ होश नहीं रह

गया।....''[2] यहाँ अल्पना जी नारी के इच्छाओं के खिलाफ उस पर किए जानेवाली शारीरिक शोषण को खुलकर प्रस्तुत किया है। लेखक अपना विरोध भी प्रकट करती है। जैसे अपने भूमि पर कोई हक नहीं बनता है वैसे नारी केलिए अपना शरीर होते हुए भी उसका हकदार नहीं बन सकती है।समकालीन परिस्थिति में चुप-चाप होनेवाली शरीरिक शोषणों का खुला बयान है यह उपन्यास।

पलाश की कहानी भी इनारा से भिन्न नहीं। इनारा को व्याह करके ले गए तो पलाश को नोकरी के नाम पर गाँव से एजेन्सीवाले ले आता है। काम देने की वादा करके से बंद कमरों में ले जाकर शोषण करती है। पुरुष ऐसे नारियों को ढूँढकर आया करता है। एजेन्सीवाले बड़े रकम वसूल करके इन मासूम लड़कियों को उनकी शरीरिक पूर्ति केलिए दे देते हैं। इससे संबंधी खबरें अक्सर बाहर नहीं आतीं,क्योंकि उनमें से अधिकांश लोग मुनाफाखोरी हैं। पलाश ऐसी जगह में फंस गई आदिवासी लड़की है। उन्होंने कई बार इन राक्षसों के हाथों से भागने की कोशिश की। काश वह भाग सका। उसकी विनती या आँसु पर किसी को दया उत्पन्न नहीं हुई।फिर भी वह अपने शक्ति को संभालकर बच गई तो दूसरे राक्षस उसे पकड़ लेता है । पहले- पहले पलाश को लगती है कि वह आदमी उसे अपने घर जाने की मदद करेंगी।उस इन्तज़ार में पलाश उसकी साथ हुई पूरी घटनाएँ विस्तार से पेश किया । लेकिन उसका नतीजा विपरीत निकला। ''तुझे तो खूब एक्सपीरियेंस हो गया होगा। हँ, ऐजेंसी वाले छोड़ते हैं क्या ? हँ,जब तक काम नहीं मिलता, तब तक यहीं तो होता है। मुझे नहीं पता क्या बेवकूफ समझती है मुझे! हँ, नाटक करती है। सब मजे ले चुकी है हँ।''[3] फिर से पलाश पर हमला होती है। वह रोक नहीं सकी। उसकी सारी उम्मीदें राख बन जाती है।

वैश्वीकरण में भी नारी शोषण से मुक्त नहीं हुई। लेखिका को इससे बड़ी दुख एवं पीड़ा महसूस होती है।समाज में कई तरह ही परिवर्तन उभर आने पर भी लोगों सोच में बदला नहीं आया । इस परिवर्तित समाज में भी नारी को शोषण का शिकार बनना पड़ती है ।

आदिवासी औरतों केलिए नगर एक सपना है। उसके घर की भूख मिटाने केलिए वह नगर आने केलिए मज़बूर हो जाती है। वास्तव में छोटी रक्म में शहरी लोग इन मासूम आदिवासी लड़कियों को खरीदते हैं। इसलिए ये लड़कियाँ कभी घर नहीं जा सकती। एक बार बेच गई तो उस पर परिवारवालों का कोई हक नहीं बनता । प्रस्तुत उपन्यास के सुन्दरी, इनारा और पलाश के साथ भी यही हुआ। इसलिए ऐसे लड़कियों को विजयबाबु जैसे लोग याद दिलाता है कि-''हरदम तमाशा नाधे रहती है बुढिया। और ऐ इनारा,इधर चाल तू याणै हमारी सेवा के लिए आई है इसकी सेवा टहल में लागै है।किसने तेरे पे पैसा लगाया? है बोल कुण मोल लाया है। ये बुढिया? हम लाए है तू। और ये बुढिया.....'' (4) यहाँ पुरुष नारी को मानव नहीं बल्कि कच्चा माल समझता है। लेखिका यहाँ व्यक्त करती है कि समाज तो बदल गया है मगर उनकी गन्दी सोचें नहीं बदली । इसलिए नारी को उसकी रिक्त पद हासिल नहीं होती । अल्पना मिश्र इस परिस्थिति में नारी समूह से सतर्क रहने की आह्वान देती है। इसलिए लेखिका शिक्षा की आवश्यकताओं पर बल देती है। अल्पना जी विश्वास करती है कि जो नारी अपने पैरों पर खड़ी है, जो नारी काबिलियत हुई है, यह सब शिक्षा से ही संभव हुआ है।

अस्थि फूल उपन्यास के नारी पात्र संन्तोष पढ़े-लिखे औरत है। उसने अपने गाँव की सभी औरतों की ज़रूरतों की पूर्ति कर लेती है। उसके पति उसे पढ़ाई केलिए भेजती है। लेकिन उसके पति उसे इसलिए दूर भेजती है कि उसकी अभाव में वह आराम से जिठानी के

साथ प्रेम-चेष्टाएँ कर सकें। लेकिन गाँव के अन्य महिलाएँ सन्तोष के प्रति गर्व महसूस करती है तो संन्तोष अपने दर्द को चुपाने की प्रयास करती है। उसके पीठ के पीछे चली आई नाटक जब उसकी सामने प्रदर्शित होने लगा तो सन्तोष उसे रोकने की कोशिश करती है। तब पति उसे रसोई में या अन्य किसी काम करने केलिए कमरे से बाहर भेजती है।कमरे से बाहर नहीं निकले तो बाहर जाने की इजाजत आक्रोश के साथ प्रकड़ करता है । सन्तोष इसके बारे में ससुर जी को संकेल किया, लेकिन उसने इस विषय को अनदेखी करने की इशारा दी। इसके बारे में सन्तोष इनारा से बताती है कि- ''हाँ, बताया। पानी सिर के ऊपर लचा गया तो बताणा पड़ा। मगर बूढ़ा तो और भी शातिर है। चाहता है कि कुछ न बदले।बात दबाने की बात करता है। कहता है कि बहुणी तेरा ही नुक्सान होगा।कहता है कि जिठानी कुछ दिन में संभल जाएगी।वो नहीं चाहता है कि उसकी सेवा टहल में कोई कमी आए।उसके ढोंग पकड़ लिया मन्ने। अब मन्ने भी ठान लिया है कि औरत की जान और सम्मान की लड़ाई खुल कर लडूँगी।''(5) सन्तोष शिक्षित औरत है। वह ऐसे हरकतों को चुप-चाप सहनेवालों में नहीं थी। यहाँ लेखिका व्यक्त करती है कि शिक्षा से अबला नारी सबला बन सकती है।

अस्थि फूल उपन्यास में एक तरफ नारी को बेचता है को दूसरी तरफ किसी न किसी कारण निकालकर झारखंड़ की भूमि बेचने की बात करती है। आदिवासी लोग जिस पृथ्वी को सालों से अपना सब कुछ समझ लिए थे, उनका यह हक हमेशा केलिए सरकार छीन लेता है । उसे बड़े-बड़े कंपनियों एवं कारखानों केलिए बेचता है। जंगल के पेड़-पौधे को काटते हैं। आदिवासियों केलिए ये पेड़-पौधें ईश्वर के समान है। लेकिन शहरी लोग एवं सरकार केलिए यह केवल बेचने की माल मात्र है। जैसे आदिवासी नारियों को अपने इच्छाओं की पूर्ति

केलिए उपयोग करता है वैसे उनके भूमि का भी।

निष्कर्ष के रूप में बता सकता है कि हमारे देश काफी आगे बढ़ चुके है। लेकिन आज भी विकास के नाम पर शोषण के शिकार होनेवाले मासूम इनसानों की संख्या में कोई कमी नहीं आयी है।वैश्वीकृत ज़माने में नारी और भूमि के साथ अत्याचार होता है। नारी की अस्तित्व एवं भूमि की संरक्षण पर खूब भाषण देते हैं और गुप्त में दोनों का शोषण करते हैं।यह उपन्यास समाज की कुरूप विचारों पर प्रहार करती है। लेखिका तीव्र पीडा के साथ वैश्वीकृत समाज की गिरी हुई स्वरूप का पर्दा-फाश करती है।

अस्थि फूल में यानी जननी के बहाने ज़माने का दर्द, घर से विदा होती बेटियों की माँ का दर्द, एक साथ स्त्री की रियासत और वर्तमान समय के चेहरे को दिखता है । अल्पना मिश्र जी पितृसत्तात्मक संरचना में स्त्री जीवन की जटिलताओं और उत्पीड़न उसकी त्रासदी और संघर्ष के यथार्थ चित्रण अपने सामाजिक सरोकारों को केंद्र में रखकर किया है । यह उपन्यास नारी विमर्श के सीमित दायरे से बहुत आगे की रचना है । इसके माध्यम से अल्पना जी ने अभी तक के लेखन से अपनी एक विशिष्ट जगह आलोचकों और पाठकों के बीच बनाई है ।

<u>सन्दर्भ ग्रन्थसूची</u>

पृ.सं 168-अस्ति फूल-अल्पना मिश्र-राजकमल पेपरबैक्स-नई दिल्ली-2019
पृ.सं 70-अस्ति फूल-अल्पना मिश्र-राजकमल पेपरबैक्स-नई दिल्ली-2019
पृ.सं 99-अस्ति फूल-अल्पना मिश्र-राजकमल पेपरबैक्स-नई दिल्ली-2019
पृ.सं 105-अस्ति फूल-अल्पना मिश्र-राजकमल पेपरबैक्स-नई दिल्ली-2019
पृ.सं 208-अस्ति फूल-अल्पना मिश्र-राजकमल पेपरबैक्स-नई दिल्ली-2019

हीरा चन्द्रन,
शोध छात्रा,
केरल विश्वविद्यालय,
कार्यवट्टम कैंपस, तिरुवनंतपुरम

****

27

एक मॉडर्न लेडी की करुण कथा – पचपन खंभे लाल दीवारें (उषा प्रियंवदा)

अमला

भारतीय समाज में मध्यवर्गीय जीवन परिस्थितियां हमेशा समस्यात्मक होती है। मध्यवर्ग को अपनी ज़िंदगी एक चुनौती एवं बोझ है ,क्योंकि वे हमेशा समाज के हितानुसार जीना चाहते हैं । अपने हर कदम में समाज के नज़र है यह सोचकर वे परेशान भी है । इसलिए ज्यादातर लोगों को दूसरों को दिखाने केलिए या सामाजिक लाज के डर से अनचाही ज़िंदगी से गुजरना पड़ते हैं । आधुनिक समाज में शिक्षित और नौकरीपेशे से सुरक्षित नारी पुरुष के समान पारिवारिक जिम्मेदारियां निभाने लगती हैं । भारतीय समाज में स्त्री की एक विडंबना है कि जो स्त्री अपना सारा जीवन और कमाई परिवार केलिए त्याग कर सबको सुखी जीवन देती है उसकी सारी आशा –आकांक्षाएं नष्ट हो जाती है । भारतीय जीवन और साहित्य में इस प्रकार के नारी पात्रों को खूब देख सकते है ।

उषा प्रियंवदा एक ऐसी रचनाकार है जो अपनी रचनाओं में आधुनिक स्त्री के कई रूप प्रस्तुत करती है । उनका पहला उपन्यास है , ' पचपन खंभे लाल दीवारें ' । छात्रावास के पचपन खंभे और लाल दीवारों के बीच अपनी ज़िंदगी खोनेवाली सुषमा के कहानी है यह उपन्यास । माता पिता के होते हुए भी अपने परिवार का नेतृत्व लेनेवाली सुषमा पारिवारिक रिश्तों और समाज को खुश करने केलिए अपने को नष्ट कर देती है । दरअसल सुषमा मन ही

मन एक मामूली औरत है जो पुरुष का प्रेम और ममता चाहती है । मगर जिम्मेदारियों की बोझ उसे कमजोर बनाकर छोड़ती है ।

पिता के स्वास्थ्य बिगड़ हो जाने के कारण सुषमा गृहनायिका बन जाती है । माँ ,भाई —बहन सुषमा पर भरोसा रखकर जीना चाहते हैं । सबको अपनी अपनी आकांक्षाएं पूरी करना है । पड़ोस के नारायण नामक युवक से सुषमा प्रेम करती थी । फिर भी गृहस्थी संभालने की भागदौड़ में वह अपना प्यार और सपने भूल जाती है ।माँ तक उसकी आशाओं के प्रति चिंतित नहीं थी ।

सुषमा कॉलेज की अध्यापिका और गर्ल्स हॉस्टल का वार्डेन भी है । वह अपने पद के अनुरूप आधुनिक जीवन बितानेवाली महिला है । अपने घर को खूब सजाती है और नए नए फैशन कपड़े पहनती है । घर में नौकरानी भी है । वह छात्राओं के प्रिय अध्यापिका है । कॉलेज में सभी उसका आदर करते भी है । सह अध्यापिकाओं से मिल जुलकर रहनेवाली सुषमा की सहेली मीनाक्षी नामक अध्यापिका है ।

सुषमा के पिताजी पक्षाघात से पीड़ित है । माँ घर का शासन करती है । पिता को पेंशन बहुत काम मिलता था ,इसलिए घर की मुख्य आमदनी सुषमा का वेतन था । परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ती करने में सुषमा हमेशा ध्यान रखती थी । माँ को बहन की शादी की चिंता है मगर वह बड़ी बेटी के बारे में सोचती तक नहीं । माँ की राय में सबको देखभाल करना सुषमा का दायित्व है , क्योंकि पिता ने उसको शिक्षित बनाया और नौकरी भी मिली ।

सुंदर और आकर्षक व्यक्तित्ववाली सुषमा का परिचय नील से होता है । मौसी द्वारा भेजी गई साड़ियां लेकर आया हुआ नील सुषमा को पसंद आ जाती है । पहली मुलाकात में

ही सुषमा के सौन्दर्य और व्यक्तित्व नील को प्रभावित करते है । सुषमा कर्तव्यनिष्ठ और ईमानदार भी है । हॉस्टल के लड़कियों का अनुशासन और कॉलेज के सभी कामों में व्यवस्था लाना आदि सुषमा पूरी लगन से करती है । नील कभी कभी उसे मिलने केलिए आने लगा ।उसकी दोस्ती सुषमा को एक नई अनुभूति थी ।

परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारियां निभानेवाली सुषमा जानती है कि माँ भाई-बहनों की ज़िंदगी केलिए उसको भूल जाती है । यह जानकर शादी की बात करनेवाली मौसी से सुषमा कहती है – '' मौसी जीवन में बहुत महत्वपूर्ण काम है , सिर्फ विवाह तो नहीं , और देशों में देखिए , बिना शादी किए ही औरतें कैसे मजे से रहती हैं ।'' (पृष्ट 14) लेकिन मौसी कहती है उसी प्रकार जीना हमारे समाज में नामुमकिन है । दूसरे देशों में पुरुष मित्र के साथ रहना स्वाभाविक है , मगर यहाँ की आधुनिकता ऐसी नहीं । भाई बहन सब अपने घर बसाकर चले जाएंगे । तब भी वह इस कॉलेज और हॉस्टल में रहेगी । यह भी सुषमा जानती है । वह मीनाक्षी से इसलिए कहती है –'' पैंतालीस साल की आयु में मैं भी एक कुत्ता और बिल्ली पाल लूँगी , उसे सीने से लगाकर रखूंगी । (पृष्ट 128)

नील से जो आकर्षण हुआ वह धीरे धीरे बढने लगा । फिर भी घर के दायित्वों के कारण नील का प्यार स्वीकार करने से वह हिचकती है ।चाहकर भी उसे न अपना सकती है और छोड़ सकती है । बहन के लड़केवालों से मिलने केलिए आने वाली माँ और भाई – बहन का सान्निध्य सुषमा को विवश करता है । घर अनेवाले नील को माँ शंका से देखती है । सुषमा बेचैन हो जाती है कि नील का परिचय कैसे करें । नील ने जो साड़ी उसे गिफ्ट दी थी माँ ने बहन को उसी साड़ी पहनाई तो सुषमा नाराज हो जाती है । माँ को डर हुआ कि सुषमा

नील से शादी करके परिवार को अनाथ छोड़ेगी । यह समझकर सुषमा और दुखी हो जाती है ।

सुषमा कामकाजी महिला होते हुए भी पूर्णत: स्वतंत्र नहीं है । छात्राएं और सह अध्यापिकाएं नील के साथ उसका जो संबंध है उसके नाम पर अपवाद फैलाने लगीं । नील जब उसे मिलने आता है तो छात्राएं चोरी चुपके झाँकने लगीं । सुषमा के अनैतिक संबंध की खबर प्रिंसिपल तक पहुँचती है । सुषमा के मन और जीवन संघर्ष में उलझने लगे । नील को हॉस्टल आने से उसने रोका । अपनी जिम्मेदारियां भूलकर नील से शादी करना सुषमा केलिए नामुमकिन है । वह नील से कहती है – '' यह कॉलेज ,ये खंभे , मेरी डेस्टिनी है, मुझे यहीं छोड़ दो ।'' (पृष्ट 135) दुखी होकर नील उसे समझाने की कोशिश करता है । मगर सुषमा अपनी नौकरी ,प्रमोशन आदि की चिंताओं में परेशान होकर नील का तिरस्कार कर देती है । नाराज़ होकर नील ने कहा – ''तुम यहीं रहो , इन पचपन खंभों में बंदी होकर ।'' (पृष्ट 136)नील को खोकर सुषमा अपने को खो देती है । नील के हॉलेन्ड जाने का समाचार सुनकर सुषमा चौंक जाती है । उसके मन और शरीर कांपने लगते है । वह नील से मिलने केलिए जाना चाहती है , मीनाक्षी टेक्सी भी बुलाती , फिर भी संत्रास और विवशता के कारण वह जा नहीं सकती । ज़िंदगी का यथार्थ ने उसे रोका और अकेलेपन की तीखी दुनिया में उसे धकेल दिया ।

सुषमा की चारित्रिक विशेषताएं :- सुषमा आधुनिक नौकरी पेशा नारी के रूप में हमारे सामने आती है । फिर भी शोषित एवं अकेली सुषमा हमारे मन में चोट पहुंचाती है । समाज और जीवन से संघर्ष करके परिस्थितियों के शिकार बनकर , अकेलापन और कुंठाओ

से ग्रसित , मगर तब भी दायित्वों के प्रति ईमानदार होकर सुषमा जी रही है ,रहेगी भी । कमानेवाली होने का बावजूद भी आधुनिक नारी स्वतंत्र नहीं होती —इसका जीता जागता उदाहरण है सुषमा ।

सुषमा आर्थिक स्वतंत्रता का बहुत बाद मूल्य चुकाकर अपने प्रेम की बली देती है । नील को छोड़ देना बहुत कठिन था फिर भी दूसरों केलिए वह उस प्यार को भूल जाती है । सभी खुश रहते है , सिर्फ सुषमा बिखर जाती है ।अपनी सारी कोमल भावनाओं को छिपाकर वह दायित्वपूर्ण बड़ी बहन और वार्डेन बन जाती है । बहनों की शादी और भाईयों की पढाई के बारे में हमेशा चिंता करनेवाली माँ सुषमा की शादी , प्रेम आदि बातों की चर्चा करना तक पसंद नही करती । वह भी एक नारी है ,फिर भी बेटी के मन की भवनाओं को समझने की कोशिश कभी भी नहीं करती । इसलिए विवश होकर अपने टीनेज प्रेम की तरह नील को भी भूलने का निर्णय सुषमा लेती है ।

माता —पिता , भाई —बहन , आदि के प्रति ममता और करुणा तथा नौकरी की प्रतिष्ठा ये सब सुषमा केलिए ज्यादा महत्वपूर्ण है । इसलिए नील के विषय में संयम रखती है ।

सुषमा अपने दैनिक जीवन में पूर्णत: मॉडर्न है । अपने कमरे को आधुनिक रूप से सजाती है । मेकअप और कपड़े आदि में भी हमेशा खयाल रखती है ।सहेलियों के साथ शॉपिंग करना , रेस्टोरेंट में जाना आदि मजे की बात है । नई नई साड़ियों में बड़ी शौक रखती है । नौकरी में सुषमा कुशल है , हॉस्टल में लड़कियों की समस्याओं का हल करना और कॉलेज में टूटोरियल्स तय करना आदि सभी कार्य बड़ी उत्सुकता से करती है । लास्ट पेरियड लेने से सभी बचना चाहते है तो सुषमा खुशी से लेती है । नौकरानी भौरी से भी उसकी

आत्मीयता ध्यान देने योग्य है । मीनाक्षी और भौरी उसकी भलाई और खुशी चाहती हैं ।

उपन्यास में आदि से अंत तक सुषमा का मानसिक संत्रास का आभास हमें मिलता है । नील से मिलने के बाद उसका दर्द और द्वन्द्व बढ़ जाते है । सुषमा का यह संघर्ष ही उसके चरित्र का महत्वपूर्ण पहलू है । जीवन की चुनौतियों का सामना करते हुए सभी खुशियों से वंचित होकर भी सुषमा धैर्य के साथ जीने केलिए तैयार हो जाती है । एक माडर्न लेडी की निराशा और मोहभंगों की कहानी है 'पचपन खंभे लाल दीवारें ' ।

28

बदलते जीवन मूल्यों का चित्रण गिलिगडु उपन्यास में

सुस्मिता

बीसवीं सदी के उत्तरार्थ में मानव मन में अंकुरित वैश्वीकरण की संकल्पना से प्रेरित होकर राष्ट्रीय सीमाओं का उल्लंखन करके पूरी दुनिया एक छत के नीचे खड़े हो गए तो राष्ट्रों के सरहद से मानव मन में स्वाभाविक रूप से उग आए अलगाव की भावना मिटने लगी। भौगोलिक दूरियाँ अधुनातन सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा मिटाई गई तो वैश्वीकरण नाम सार्थक होने लगा। वैश्वीकरण के दौर में मानव जीवन एक तरफ़ बेहतर रूप से बहने लगा तो दूसरी तरफ़ इसमें इधर उधर कुछ - कुछ समस्यायें छिपा हुआ और स्पष्ट रूप में सामने आने लगी। समस्यायें तो जीवन का अंग ही हैं, उनका सामना करके आगे बढ़ना है परन्तु कभी - कभी ये जीवन को बोझिल बना देता है।

भारत एक ऐसा देश है जहाँ प्राचीन काल से ही पारिवारिक जीवन को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। महाभारत तथा रामायण जैसे पौराणिक ग्रन्थों में भी पारिवारिक जीवन तथा उसके महत्व का आभास मिलता है। भारतीय परिवारों में बुज़ुर्गों को सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान देने की रीति प्रचलित थी। परिवार के अन्य सभी सदस्य उनके मार्ग निर्देशन पर हर कार्य किया करते थे। घर के मुख्य मामलों में वे ही निर्णय लेते थे और बाकी के सदस्य उनका पालन करते थे। इस तरह बुज़ुर्गों के नेतृत्व में परिवार के सब लोग एकता तथा खुशी से जीवन बिताते थे। ऐसी व्यवस्था में कभी कोई अकेला नहीं पड़ता था और किसी एक

व्यक्ति की समस्या पूरे परिवार की समस्या होती थी। सब मिल-जुल कर उसे निपटाने की कोशिश में जुड़ जाते थे। इस तरह परिवार के सभी सदस्य सुरक्षित रहते थे।

वैश्वीकरण ने एक ओर पूरी दुनिया को एक छत के नीचे लाया तो दूसरी तरफ़ पारिवारिक जीवन में बदलाव आने लगा। समय के बदलने के साथ-साथ भारतीय समाज में संयुक्त परिवार की प्रथा धीरे-धीरे गायब होने लगी और उसका स्थान एकल परिवार लेने लगा। परिवार के सदस्यों की संख्या भी माता, पिता और बच्चों में सीमित होने लगी। जीवन का खर्च बढ़ने लगा तो परिवारों में बच्चों की संख्या भी कम होती गयी। बच्चे स्कूल जाकर पढ़ाई करने लगे और माता-पिता दोनों बाहर जाकर काम करने लगे। इस तरह सभी व्यस्त जीवन बिताने लगा तो घर में बूढ़े लोगों को सँभालना मुश्किल हो गया। आधुनिक जीवन के भाग-दौड़ में किसी के पास किसी के लिए भी समय नहीं है। आराम के जीवन बिताने में बूढ़े लोग रुकावट और बोझ समझे जाने लगा तथा उनके प्रति उपेक्षा की भावना प्रकट होने लगी। वृद्धों को वृद्धाश्रम में छोड़ देने की प्रथा शुरू हो गयी। इस प्रकार वृद्ध जीवन, जिसे आराम का जीवन समझा जाता था, तनाव का जीवन बन गया।

वैश्वीकरण के दौर के जीवन को यथारूप अंकित करने का पूरा श्रेय हिन्दी उपन्यास साहित्य को मिलता है। चित्रा मुद्गल द्वारा रचित गिलिगडु भी ऐसा ही एक उपन्यास है जो दो बुज़ुर्गों की कथा सुनाता है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र रिटायर्ड सिविल इंजीनियर जसवंत सिंह है जो अपनी पत्नी के साथ कानपुर के जवाहर नगर वाले अपने घर में जीवन बिता रहे थे। सभी प्रकार की सुविधाओं के साथ बहुत खुशी से वे जी रहे थे। उनके घर के पिछवाडे गैरज में नौकर राम आसरे पासी और उसके परिवार को बसा रखा था। राम आसरे की पत्नी

सुनगुनियां घर में चौका- बासन किया करती थी। जसवंत सिंह के दो बच्चे थे नरेन्द्र और शालिनी। बेटा नरेन्द्र सिंह खुशवाहा एन पी टी सी के चीफ इंजीनियर थे जो अपनी पत्नी और दो बेटों के साथ दिल्ली में रहता है और बेटी शालिनी अपने पति और बच्चों के साथ त्रिवेन्द्रम में रहती है। जसवंत सिंह की पत्नी की अचानक मृत्यु हो गयी तो वे एकदम अकेले हो गए। पत्नी की मृत्यु के तुरन्त बाद उनके बालसखा हरिहर दुबे का भी निधन हो गया जो घर में अकेला रहता था। मृत्यु के तीन चार दिन बाद घर से बदबू आने लगा तो दरवाज़ा तोड़कर देखा गया तो लाश मिला। इस घटना ने जसवंत सिंह को और अधिक परेशान बनाया। इसके बाद वे अकेलेपन से डरने लगे। ऐसे में उन्हें अपने कानपूरवाला घर देखभाल करने केलिए सुनगुनियां को सौंपकर बेटे नरेन्द्र के साथ दिल्ली जाना पड़ा।

दिल्ली में नरेन्द्र का फ़्लैट दो बेडरूमवाला था। इसलिए बालकणी में स्लाइडिंग ग्लैस लगाकर कमरा बनाया गया और बाबू जसवंत सिंह का कमरा वही था। यह बात उन्हें अच्छा नहीं लगा। हर सुबह घर का कुत्ता टॉमी को फारिग कराकर लाना उन्हीं का काम था। सुबह घूमने निकलते थे तो वे टॉमी को भी साथ ले जाते थे। टॉमी को सँभालना उनके लिए आसान कार्य नहीं था। एक दिन टॉमी ने उन्हें गिराया तो विष्णु नारायण स्वामि नामक रिटायर्ड कर्नल उनकी मदद करने पहुँच गए जो उन्हीं की तरह सैर करने केलिए निकले थे। इस तरह दोनों में गहरी दोस्ती हो गई और हर सुबह दोनों एक साथ सैर केलिए जाने लगे। कर्णल स्वामि केरल के थे और वे हमेशा केरल की प्रकृति का वर्णन करते थे। एक दिन सुबह सैर करते समय कुछ मैनाओं को देखकर उन्होंने जसवंत सिंह से कहा कि उनके घर में भी ऐसी दो चिड़ियाँ हैं जो उनकी जुड़वा पोतियाँ हैं। वे हमेशा चहकती- फुदकती, मस्ती करती, हुड़दंगे मचाती रहती

हैं जिसके कारण वे उन्हें गिलिगडु कहकर पुकारते हैं। केरल की भाषा मलयालम में 'किलिकलु' का मतलब है चिड़ियाँ जिसका उन्होंने हिन्दीकरण कर लिया 'गिलिगडु'।

कर्नल स्वामी बाबू जसवंत सिंह से हमेशा अपने भरे पूरे परिवार के बारे में कहते थे। उनके परिवार का ब्यौरा यूँ है — ''पत्नी नहीं हैं। उन्हें गए हुए बरसों बीत गए। तीन बेटे हैं, तीन बहुएँ हैं। बड़े बेटे के दो युवा बेटे हैं- श्रीधरन और श्रीनिवासन। मंझली बेटे- बहू की नन्हीं गिलिगडु हैं। छोटे बेटे और छोटी बहु यानी श्यामली और प्रभाकरन के कोई बच्चा नहीं है। उन्हें जल्दी भी नहीं है। अपना कैरियर बनाने में दोनों जुडे हुए हैं। पूरा परिवार साथ ही रहता है। अपना अपना फ़्लैट बना लेने के बावजूद बच्चे उन्हें छोड़ अलग नहीं रहना चाहते। अपनी अम्मा के जाने के बाद से तो उनका विशेष ख्याल रखते हैं। तय है कि उनके न रहने के बाद भी बच्चे साथ ही मिल-जुलकर रहना चाहते हैं। उनकी मान्यता है कि साथ रहने में बरकत है। फ़्लैट उन्होंने किराए पर उठा रखे हैं। किराए से ही उनका लोन चुकता हो रहा। दुर्गम मोर्चों पर तैनाती होने के चलते परिवार का सुख अप्पू को टुकड़ों में ही मिला। बच्चे उसकी इस पीड़ा को समझते हैं और चाहते हैं कि अप्पू को भरपूर पारिवारिक सुख मिले।''[1] यह सुनकर जसवंत सिंह को बहुत अच्छा लगा कि उनके परिवारवाले उनका इतना खयाल रखते हैं।

बाबू जसवंत सिंह ने अपने कानपुरवाले घर की देखफाल करनेवाली नौकरानी सुनगुनियां से उसकी दोनों बच्चियों के नाम कुमुदिनी और कात्यायनी रखने को कहा जो कर्नल स्वामी की पोतियों के नाम थे। उन बच्चों को सरकारी स्कूल में दाखिल करवाकर पढ़ाने का भी मशवरा उन्होंने दी। उनकी इच्छा थी कि कर्नल स्वामि की गिलिगडु के समान ये लड़कियाँ भी पढ़-लिखकर बड़ी हो जाएँ। जसवंत सिंह के अपने पोते मलय और निलय

हमेशा अपनी पढ़ाई और कंप्यूटर में व्यस्त रहते थे। कभी भी अपने दादाजी के साथ थोडी देर बैठने या उनसे बातचीत करने का फुर्सत उन बच्चों को नहीं था। उनके माँ-बाप भी उन्हें इसके लिए कहते नहीं थे। यह बात भी जसवंत जी को दुखी बनाती थी। बेटे और बहु के उनके प्रति उपेक्षा का भाव उन्हें चिंतित बनाता था।

एक दिन अचानक त्रिवेन्द्रम से बेटी शालिनी ने जसवंद जी को फोन करके कानपुरवाला लॉकर सरेंडर करके उसमें माँ का जो गहने वगैरह हैं उसे उन लोगों को देने को कहा। कानपुरवाले घर में माँ की जो कीमती साड़ियाँ हैं उसे बहु लेना चाहती थी। यह सब सुनकर उन्हें गुस्सा आया। बेटी ने फिर कहा – ''बाबूजी न स्वयं सहज होकर जी रहे, न भैया -भाभी को भी जीने दे रहे। पति-पत्नी के बीच परस्पर समझ की ज़मीन तड़क रही। भैया केलिए उसे भर पाना कठिन हो रहा है। न वह बाबूजी से खुलकर कुछ कह पाते, न भाभी से। अशांत मन:स्थिति के चलते कार्यालय में मन लगाकर काम नहीं कर पा रहे। ऐसा नहीं कि भैया सोचते नहीं कि बाबूजी को कैसे खुश रखा जाए। साथ रहते हुए उन्हें किसी प्रकार का मानसिक कष्ट न हो। वह यह भी मानता है कि उनके स्वभाव में आये परिवर्तन का कारण है अम्मा का अचानक चले जाना। अकेलापन उन्हें खाये जा रहा। मगर भैया के अकेले प्रयत्नों से तो अशांति कम नहीं हो सकती। बाबूजी को भी अपनी खोह से बाहर निकलने की ज़रूरत है। बाहर तभी निकल सकते हैं जब वे स्वयं को निकालने का तय कर लेंगे। परिवार में केवल अपने मान-अपमान के विषय में नहीं सोचेंगे। वह उनके समक्ष है क्या वो उन्हें परिवार के मायने समझाए ? भैया तो यहाँ तक सोच रहे हैं कि जहाँ बाबूजी का मन लगे , वे प्रसन्नचित्त रहें, उन्हें वहीं रखा जाए। उन्होंने पता लगाया है कि नोएडा के सेक्टर पचपन में कोई आनन्द

निकेतन वृद्धाश्रम है, क्यों न उनके रहने की व्यवस्था वहीं कर दी जाए। हमउम्रों की जमात में बाबूजी का मन लगा रहेगा। भैया जगह देख आए हैं। वे बता रहे हैं कि बहुत सुन्दर है। भोजनादि की व्यवस्था उत्तम कोटि की है। उन्हें वहाँ रखने के निर्णय से भैया पर खर्च का अतिरिक्त बोझ पडेगा। भैया उसे सहर्ष उठाने केलिए तैयार हैं।''[2] बेटी की ये बातें उन्हें झकझोर दिया। वे एकदम टूट गए।

मन की चिन्ताओं ने जसवंत जी को बीमार बनाया। फ्लू के कारण घर से बाहर निकलना न मुमकिन हो गया। घर में ही उनकी चिकित्सा होने लगी। कुछ दिनों बाद बीमारी बढ़ जाने पर उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया गया। करीब एक हफ्ता अस्पताल में काटना पड़ा। बीमारी की वजह से उनके रोज़ की सैर और कर्नल स्वामि से मुलाकात असंभव हो गया। वे कर्नल स्वामि के घर फोन लगाकर अपनी बीमारी की खबर उन्हें देना चाहते थे। पर किसी न किसी वजह से फोन नहीं कर पाये। अस्पताल से लौटने के बाद भी कई दिन उन्हें आराम करना पड़ा। इस तरह कर्नल स्वामि से लंबे समय तक मुलाकात नहीं हो पायी थी।

बीमारी से मुक्त होने पर जसवंत जी ने तय किया कि वे कर्नल स्वामि से मिलने उनके घर जायेंगे। वे उनका पता लेकर रवाना हो गए। गिलिगडु केलिए उनके मन पसन्द केक, आइसक्रीम आदि खरीदकर वे कर्नल स्वामि के घर पहुँच गये। उनके भरे-पूरे घर के सदस्यों को, खासकर गिलिगडु को देखने की अत्यधिक इच्छा ने उनके मन को उत्साह से भर दिया था। वे कर्नल स्वामि के घर की घंटी बजाकर दरवाज़ा खुलने की प्रतीक्षा में खड़े रहे। लेकिन बार-बार घंटी बजाने पर भी दरवाज़ा नहीं खुला। ऐसे में उन्होंने सामनेवाले फ्लैट के दरवाज़े की घंटी बजायी। उस घर की औरत ने उन्हें बताया कि कर्नल स्वामि का देहांत हो गया है। यह

खबर सुनकर वे अवाक रह गये। उस औरत ने उन्हें अपने घर में बिठाकर पानी पिलाया और उनके पूछने पर कर्नल स्वामि के जीवन के बारे में कहने लगी। उसने बताया कि अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद कर्नल स्वामि एकदम अकेले हो गये। उनके तीनों बेटे अपने अपने परिवार के साथ अलग शहरों में बस गये। उनमें से कोई भी अपने पिता को साथ ले जाने को तैयार नहीं थे। उनके बेटे यह भी चाहते थे कि पिता इस फ़्लैट को बेचकर उससे प्राप्त रकम तीनों बेटों को बांट दें। वे इसके लिए तैयार नहीं हुए तो उनके बेटे ने उन्हें बुरी तरह मारा और पड़ोसियों की मदद से पुलीस ने उन्हें बचाकर अस्पताल में भर्ती करवाया था। जसवंत जी गिलिगडु के बारे में जानना चाहा तो उस औरत ने बताया कि उन जुडुआ बच्चियों की माँ अपनी बेटियों के डेढ़ साल के होते ही अपने नृत्य गुरु के साथ भाग गयी थी और पिता ने दूसरी शादी कर ली। बच्चियों का पालन-पोषण उनकी दादी करती थी और दादी की मृत्यु के बाद बच्चियों के पिता ने उन्हें हैदराबाद के किसी होस्टल में डाल दिया। उस औरत ने कहा- ''बच्चियों की तसवीरें कर्नल स्वामि ने पूरे घर में लगा रखी हैं। बच्चियाँ उन्हें पिता से छिपकर जब-तब फोन किया करती थीं। श्रीनारायण से छिपाकर वे हैदराबाद बच्चियों से मिलने अकसर जाया करते थे।''[3] उस औरत ने यह भी बताया कि हर दिन शाम वहाँ के मलिन बस्तियों के बच्चे कर्नल स्वामि के पास पढ़ने आते थे। अपनी आय का बड़ा सा हिस्सा वे उन्ही बच्चों के लिए खर्च करते थे। वे उन बच्चों को बड़े चाव से खाना बनाकर खिलाते थे। ये सारी बातें सुनकर जसवंत जी अत्यधिक दुखी एवं उदास हो गये। उन्होंने लाए हुए केक तथा आइसक्रीम उन बच्चों के बीच बाँट देने का निवेदन करके वहाँ से निकले। इस घटना ने जसवंत जी को अपने वसीखत बदलने को मजबूर किया। उन्होंने कानपूरवाले घर में लौटने का निर्णय लिया। सुनगुनियां

उनकी देखभाल करेगी। कानपूरवाले घर वे सुनगुनियां के नाम पर रजिस्टर करवाने तथा लोकर में जो कुछ भी हैं वे सब उसके नाम करने का निर्णय भी लिया। उनकी मृत्यु के बाद उनके क्रियाकर्म करने का अधिकार सुनगुनियां का पुत्र अभिषेक आसरे को होगा। यह सब वे वसीखत में ठीक से लिखेंगे। इस तरह उन्होंने अपने बेटे का घर छोड़कर अपने ही घर में जाकर वहाँ की विधवा नौकरानी तथा उसके बच्चों के साथ रहने तथा सारी जायदाद उन्हें देने का निर्णय लिया।

गिलिगडु उपन्यास में दो बुज़ुर्गों के अकेलेपन तथा उपेक्षा से तड़पते मन तथा जीवन का मार्मिक चित्रण हुआ है। दोनों अपनी - अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद बच्चों के रहते हुए भी अकेले हो गये तथा अपने ही परिवारवालों की उपेक्षा के शिकार हो गये।

बाबू जसवंत जी अपनी पत्नी की अचानक मृत्यु के बाद अकेले रहनेवाले अपने एक मित्र की मृत्यु की खबर सुनकर अकेलेपन से डरने लगे। बेटे के ज़िद करने पर उन्हें कानपुर छोडकर उसके साथ दिल्ली जाना पडा। वहाँ उसके घर के स्लाइडिंग गलैस लगाकर कमरा बनाये गये बालकणी में उन्हें रहना पडा। इसमें उन्होंने आपत्ति प्रकट की तो उनके बेटे की प्रतिक्रिया कुछ इस तरह थी — 'दबी ज़ुबान से उनकी आपत्ति प्रकट करने पर कि रात उन्हें कई दफे पेशाब करने के लिए उठना पड़ता है और इस बालकणी में उन्हें दिक्कत होगी- नरेन्द्र ने चट उन्हें सफाई पकड़ाई। बालकणी में लगे हुए सहन में ही तो कामन टॉयलेट है। उनकी ज़रूरत कमोड है और कमोड वहाँ है। बच्चों के कमरे में कंप्यूटर जैसी कीमती चीज़ें रखी हुई हैं। वहाँ से उन्हें हटाया नहीं जा सकता। इसके अलावा बच्चों के पढ़ने- लिखने की मेज़ें हैं, उनकी पुस्तकें हैं, अलमारियाँ हैं, टू-टियर बिस्तर हैं।'[4] बेटा, बहु तथा पोते अपने अपने

कार्यकलापों में व्यस्त रहते थे। उनके पास आकर कुछ समय बैठने, बातचीत करने की फुर्सत उनमें से किसी के पास नहीं थी। वे उस घर में एक अनावश्यक चीज़ की तरह रह गये। घर का कुत्ता टॉमी को उनसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान मिलता था — 'उनका मानना है कि घर में एक नहीं दो कुत्ते हैं- एक टॉमी, दूसरा अवकाश प्राप्त सिविल इंजिनीयर जसवंत सिंह! टॉमी की स्थिति निस्संदेह उनकी बनिसबत मजबूत है। उसकी इच्छा- अनिच्छा की परवाह में बिछा रहता है पूरा घर। उनके लिए किसी को बिछा रहना जरूरी नहीं लगता। टॉमी अच्छी नस्ल का कुत्ता है। सोसइटी में उनके घर का रुतबा बढ़ाता है। उनके चलते उनका रुतबा कलंकित हुआ है।'[5]

घर के दोनों बच्चे कभी भी अपने दादाजी के पास आकर बैठते या बातें करते नहीं थे। माँ- बाप ने भी उन्हें यह सीख नहीं दी — 'उन्हें अपने तक सीमित रहना सिखाया जा रहा है। उन्हें समझाया जा रहा है कि उन्हें किसी की ज़रूरत नहीं। उन्होंने इसी के चलते मलय-निलय को कभी कोई खेल- ब्लॉक्स, मेकनिक्स, पजल्स भेंट नहीं किये। नरेन्द्र और बहू विचित्र तब भी लगे थे जब बच्चों के बिना माँगे ही वह उन्हें विचित्र-विचित्र खिलौने लाकर दिया करते थे। वे खेल मलय-निलय को अपने में उलझाए और रिझाए रहते। उन्हें किसी की ज़रूरत महसूस नहीं होती। कानपुर आते तो उन्हीं खेलों के साथ आते। गली के बच्चों के साथ खेलने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं होती। न अपने खेलों में उन उत्सुक बच्चों को साझीदार बनाते। न हाथ लगाने देते। उन्हें खेल-खिलौने में भी षड़यंत्र की बू आती। बुद्धिविकास की आड़ में बड़ी खुबसूरती से बच्चों को संवेदना च्युत किया जा रहा- इतना कि बच्चे कभी परिवार में न लौट सकें, न कभी अपना कोई परिवार गढ़ सकें।'[6] इस प्रकार बड़े लोग ही बच्चों को घर के बुज़ुर्गों

से अलग रखते हैं। जसवंत जी ने बच्चों का जन्मदिन उनके साथ मिलकर मनाने की इच्छा प्रकट की तो बच्चे यही कहते हैं कि वे अपने दोस्तों के साथ बाहर मनाना चाहते हैं और उसमें अपने दादाजी को शामिल कराने को भी वे तैयार नहीं होते। जसवंत जी को अपने मन पसंद खाना कभी मिलते नहीं थे — 'अकसर उन्हें वह खाना पड़ता है या खिलाया जाता है जो उनके ढीले और खोखले आये दांतों और बिगड़े हजमे को मंजूर नहीं होता। पसन्द की बात दरकिनार भी कर दें तो अखरनेवाली बात है उनके नाश्ते- पानी का कोई समय नियत न होता।'[7] उनका जन्मदिन भी बेटा-बहू भूल गये। टेलिफोन पर उनका हाथ लगाना भी बहू को पसन्द नहीं था। इस तरह उस घर में एक अनचाही चीज़ बनकर वे जीवित रहे।

जसवंत जी का बेटा पढ़-लिखकर बड़ा आदमी तो बना लेकिन माँ की मृत्यु होने पर कम से कम हफ्ता भर पिता के साथ रहकर उन्हें आश्वासन देने और रस्म के अनुसार माँ के अंतिम क्रिया-कर्म करने को भी उसे फुर्सत नहीं था। यह बात भी जसवंत जी के मन को हमेशा दुखाती है — 'अम्मा के लिए अतिशय प्रेम बघारनेवाले बेटे नरेन्द्र ने उनके काम में बाल उतरवाने से मना कर दिया था। बालों में क्या रखा है। आडंबरों में उसे विश्वास नहीं। कंपनी विसिट करने बाहर से लोग आ रहे। चौथा करके दिल्ली चला जाएगा। तेरहवीं की सुबह लौट आएगा।'[8] हर दिन किसी न किसी बात पर बहू उन पर ऊँगली उठाती थी। वे सब कुछ सह लेते थे। एक दिन बेटी ने उन्हें फोन करके बताया कि माँ के लोकर में रखे गहनों को लेकर उसके बच्चों को दी जाए और माँ की कीमती साड़ियाँ और शाल बहू को दी जाएँ। बेटी ने यह भी कहा कि उसका भाई उन्हें किसी अच्छे वृद्धाश्रम में रखने के बारे में सोच रहे हैं। इस तरह दिल तोड़नेवाली घटनाएँ हर दिन जसवंत जी के जीवन में होती हैं जिसके कारण अधीर

होकर वे बीमार पड़ गये। बेटा, बेटी तथा उनके परिवार इन सबके होने के बावजूद भी वे हमेशा अपने आप को अकेला पाते हैं। कर्नल स्वामि से मिलना, उनसे बातें करना यही उनके लिए एकमात्र खुशी की बात थी। कर्नल स्वामि के भरे-पूरे परिवार का वर्णन उन्हें खुश बनाता था। जो खुशियाँ उन्हें नहीं मिलतीं वे कर्नल स्वामि को भरपूर मिलती हैं यह बात उन्हें अच्छी लगती थी। उनके परिवार से मिलकर कुछ समय केलिए ही सही, उनकी खुशियों में शामिल होने की प्रतीक्षा लेकर वे कर्नल स्वामि के घर पहुँच गये थे। इसके बदले उनकी मृत्यु तथा उनके जीवन की वास्तविकता से जसवंत जी की मुलाकात हुई। इस घटना ने उन्हें अपने बाकी के जीवन के बारे में नए सिरे से सोचने को मजबूर कर लिया। अपने स्वार्थी बच्चों तथा उनके परिवार को छोड़कर सुनगुनियां जैसी ईमानदार नौकरानी तथा उसके बच्चों के साथ जाकर रहने और सबकुछ उन्हें देने का निर्णय उन्होंने लिया। उन्हें पता चला कि अनपढ़ गाँववाले लोगों का प्रेम सच्चा है और उनके अपने बच्चे सिर्फ उनके धन-संपत्ती चाहते हैं।

गिलिगडु उपन्यास का दूसरा बुज़ुर्ग पात्र है रिटायर्ड कर्नल विष्णु नारायण स्वामी। जसवंत सिंह की उनसे दोस्ती हो गयी और दोनों सबेरे टहलने केलिए साथ - साथ जाने लगे। आत्मीयता बढ़ गयी तो जसवंत जी अपनी परेशानियाँ कर्नल स्वामी से कहने लगे और वे उन्हें आश्वासन देते थे। कर्नल स्वामी बहुत ही उमंगवाले आदमी थे जो हमेशा खुश रहते थे। कभी भी वे उदास दिखाई नहीं देते थे। उनका शरीर चुस्त-फुर्त था। वे हमेशा अपने भरे-पूरे परिवार का वर्णन करते थे। अपने तीन पुत्र, तीन बहुएँ तथा पोते-पोतियाँ, खासकर गिलिगडु नाम से बुलाए जानेवाली बच्चियाँ, सब इस तरह जसवंत जी के लिए परिचित हो गये। उनके बयान से यह स्पष्ट होती थी कि परिवार का एक एक व्यक्ति उनका कितना खयाल रखता था

और उनसे कितना प्यार करता था। यह सब सुनकर जसवंत जी को बड़ी खुशी महसूस होती थी कि कर्नल के बच्चे उनके बच्चों की तरह नहीं हैं। वे भी उनकी खुशियों में शामिल होना चाहते थे। कर्नल स्वामी ने जसवंत जी को अपने परिवारवालों से मिलाने का वादा भी किया था। उन्होंने यह भी कहा कि बच्चे उनकी दूसरी शादी अणिमा दास से कराना चाहते हैं ताकि उन्हें कभी अकेलापन महसूस न हो।

कुछ समय तक कर्नल स्वामि की कोई खबर न मिलने पर जसवंत जी उनके घर पहुँच गये तभी सच्चाई सामने आ गयी। कर्नल स्वामी की पड़ोसिन ने उनकी जीवन कथा यों सुनाई- 'चौरानबे की बात होगी। पत्नी की मौत के बाद कर्नल स्वामी निपट अकेले हो गये थे। तीनों बेटों ने तब तक नई नौकरियाँ पकड़कर नए भविष्य की तलाश में नए शहरों को अपना डेरा बना लिया था। छूंछे वादों के अंबार पर उन्हें बैठाए हुए कि बहुत जल्द उन लोगों केलिए संभव हो पाएगा कि उनके अप्पूपन उनके साथ ही रह सकें। बंगलोर, हैदराबाद में कुछ ही समय में उनके अपने छोटे-मोटे फ़्लैट भी हो गये। पिछली गर्मियों में मंझला श्रीनारायण आया था। हैदराबाद से। आया वह विशेष प्रयोजन से ही था कि उनके अप्पू नोएडा वाला चार कमरों वाला फ़्लैट बेवजह अगुवाए हुए हैं। फ़्लैट बेचकर क्यों नहीं अप्पू उससे प्राप्त रकम तीनों भाइयों को बांट दें ? उनके तंग फ़्लैट अब उन्हें तंग कर रहे हैं। तीनों ने अपने-अपने शहर में प्लाट खरीद लिये हैं और अब उन्हें इस बात की ज़रूरत महसूस हो रही है कि अपने प्लाटों पर वे पने मनपसंद बंगले का निर्माण कर, जितनी जल्दी हो सके खुले घरों में पहुँच खुलकर रह सकें। खुलकर रहने केलिए उन्हें तगड़ी रकम की जरूरत है। लोन के चक्कर में बैठे-बिठाए फँसना उन्हें मंजूर नहीं ! मंजूर भी क्यों हो जब साधन घर में मौजूद हो। कर्नल स्वामी पहले ही

राजनगर स्थित गाजियाबाद वाले कीमती प्लाट को बेचकर उन्हें फ्लैट खरीदने में मदद कर चुके थे। श्रीनारायण का प्रस्ताव उन्होंने ठुकरा दिया। क्रुद्ध श्रीनारायण ने पिता पर हाथ उठा दिया।'[9] इस तरह उस दिन बेटे का मार खाकर लहूलुहान कर्नल स्वामी को पडोसियों के बुलाने पर पुलीस ने आकर, बचाकर अस्पताल में दाखिल कराया था।

सच बात तो यह है कि कर्नल स्वामी के तीन पुत्र, बहुएँ तथा पोते-पोतियाँ सब हैं लेकिन कोई भी उनके साथ नहीं रहता था, न ही उनका देखभाल करता था। उनके बेटों को तो उनके धन-संपत्ती से प्यार है। बेचारा कर्नल स्वामी तो भरे-पूरे परिवार की कल्पना करके संतुष्ट रहने की कोशिश करते थे। वे अपने घर के दीवारों पर दोनों पोत्तियों यानी गिलिगडु की तसवीरें लगा रखी थीं। वे जो कुछ चाहते थे उसकी कल्पना करके, कल्पना की दुनिया में वे रहते थे। अपनी निराशा और दुख को वे छिपाते थे और दूसरों के सामने खुश होने का अभिनय करके अपनी खुशी से औरों को भी खुश रखने की चेष्टा करते रहे। अपनी पूरी जवानी देश की सुरक्षा के लिए समर्पित करनेवाले कर्नल स्वामी जैसे व्यक्ति को भी बुढ़ापे में अपनी पत्नी के न रहने पर अपने ही बच्चों के स्वार्थ तथा धनलोलुपता की साक्षी बनकर, अकेलेपन को सहारा बनाकर रहना पड़ता है। कर्नल स्वामी की करुण कथा सचमुच दिल दुखानेवाली है।

एक तरफ से देखा जाय तो जसवंत जी के जीवन से भी घटिया है कर्नल स्वामी का जीवन। हमारे देश में इस तरह के हज़ारों जसवंत सिंह तथा कर्नल स्वामी मौजूद हैं जिन्हें अपने ही पुत्र-पुत्रियों के होते हुए भी अकेलेपन का शिकार बनकर तड़प-तड़पकर जीवन काटना पड़ता है। ऐसे लोगों का एकमात्र सहारा बनता है पास-पडोस के निर्धन लोग या घर के

नौकर-चाकर।

एक जमाने ऐसा था, हमारे देश के परिवारों में बुजुर्गों को सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था। वे ही परिवार की धुरी होते थे। उन्हीं की इच्छा के अनुसार तथा आशीर्वाद से परिवार में सबकुछ होता था। घर के सभी लोग उनका आदर करते थे तथा उनकी आज्ञा के विरुद्ध कुछ भी नहीं करते थे। लेकिन समय के साथ-साथ सबकुछ बदल गया। जीवन मूल्य बदल गये, नयी पीढ़ी का परिप्रेक्ष्य बदल गया। बच्चे तथा युवा लोगों की दुनिया अपने तक सीमित हो रही है। परिवारों में बुजुर्गों की स्थिति जसवंत सिंह तथा कर्नल स्वामी के जैसे हो गये। शारीरिक तौर पर कमज़ोर होनेवाले बूढ़े लोग परिवार केलिए बोझ बनने लगे। वैश्वीकरण के दौर में भारतीय परिवारों को बुरी तरह से प्रभावित करनेवाली इस समस्या का वास्तविक चित्रण गिलिगडु उपन्यास में हुआ है।

संदर्भ

1.गिलिगडु – चित्रा मुद्गल – पृष्ठ – 23-24
2. गिलिगडु – चित्रा मुद्गल – पृष्ठ – 16-17
3. गिलिगडु – चित्रा मुद्गल – पृष्ठ – 137-138
4. गिलिगडु – चित्रा मुद्गल – पृष्ठ – 56-57
5. गिलिगडु – चित्रा मुद्गल – पृष्ठ – 96
6. गिलिगडु – चित्रा मुद्गल – पृष्ठ - 34
7. गिलिगडु – चित्रा मुद्गल – पृष्ठ – 38-39
8. गिलिगडु – चित्रा मुद्गल – पृष्ठ - 52
9. गिलिगडु – चित्रा मुद्गल – पृष्ठ – 136-137

****

29

‘वैश्वीकरण के दौर की 'सबसे बुरी लड़की’

डॉ. दीपक के आर

समकालीन नारीवादी कविता समाज से सीधा संवाद करती है। समाज से वह सार्थक सरोकार स्थापित करती है। एक ओर वह वर्तमान समय में स्त्री की जड़िल समस्याओं को वाणी देती है तो दूसरी ओर वह उसके संघर्षों को भी झब्दबद्ध करती है। स्त्री-जीवन और उसका संघर्ष बेशक कवयित्री नीलम की कविताओं का मूल स्वर है। किन्तु उसकी प्रतिबद्धता मात्र स्त्री से नहीं है। संपूर्ण हाशिएकुत लोग उसकी कविता के केन्द्र में हैं। हाशिएक_तों में स्त्री के जीवन को जड़िल एवं पेचीदा बनाने में उपनिवेशवादी संस्कृति की अहम भूमिका रही है। यह संस्कृति स्त्री के वस्तुकरण को बढ़ावा देने का काम करती है। इस विकट परिस्थिति में पाठकों को इन समस्याओं से अवगत कराके संघर्ष के नया मोर्चा स्थापित करने का प्रयास करती है नीलम की कविताए।

नव उपनिवेशवादी दौर में स्त्री शोषण का दायारा काफी विस्तृत हो गया है और स्त्री की समस्या जटिल से जटिलतर हो गई है। इस स्थिति में इन समस्याओं की तह में जाकर उनके विश्लेषण करना एक चुनौती भरा काम है। वर्तमान समय की हर हलचलों की पहचान उसके लिए बेहद ज़रूरी है। इस पहचान की दृष्टि से और उससे जनित प्रतिरोध की दृष्टि से नीलम की नारी-केन्द्रित कविताओं का अपना विज्ञेष महत्व है।

यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि नारी जबसे लेकर कुछ लिखने या अभिव्यक्त करने

का निश्चय कर लेती है तबसे लेकर वह विद्रोही रूप धारण कर लेती है। क्योंकि साहित्य के क्षेत्र में पुरुषवर्चस्ववाद की प्रतिक्रिया के रूप में ही नारीवादी साहित्य का जन्म हुआ था। वास्तव में नारीवादी साहित्य इस बात का इज़हार है कि लिखने का अधिकार नारी को भी है। एक ज़माना ऐसा भी था, कुछ अभिव्यक्त करने के अधिकार से नारी वंचित थी, चाहे वह अपने ही बारे में क्यों न हो। ''उर्वज्ञी' में दिनकर ने लिखा था, - अवलम्ब है सबको, मगर, नारी बहुत असहाय है।/ दुख-दर्द जतलाओ नहीं, / मन की व्यथा गाओ नहीं,/ नारी! उठे जो हूक मन में, जीभ पर लाओ नहीं। (1)

कुछ लिखने या अभिव्यक्त करने का निश्चय निस्संदेह नारी की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का द्योतक है। इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य बात यह है कि नीलम ने प्रस्तुत कविता-संकलन का समर्पण सारे हाशिएकृत लोगों के लिए किया है, जो एक समय अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से वंचित थे। - जिनकी कलम को / हमेशा / दरकिनार करने का प्रयास / किया गया है, उनके लिए सादर!

प्रस्तुत अभिव्यक्ति ही कवयित्री के लिए सबसे अहम है, अभिव्यक्ति की सुन्दरता तथा कवि-कौशल को लेकर वह परेशान नहीं है, जहाँ तक संभव है, मूक अभिव्यक्ति में भी उसको विश्वास है, गोयाकि विचारों को अभिव्यक्ति देना ही उसके लिए सबकुछ है। इसलिए वह कहती है, - मैं कोई कवि नहीं / जो अपने प्रतीकों और बिंबों से / सब कुछ बयां कर दूँ, / मैं वो हूँ, / पु पु कर देती हूँ / जो मूक होकर भी सब कुछ बयां कर देती हूँ। (मैं कोई कवि नहीं)

स्त्री-लेखन की भूमिका दर असल बहु आयामी है। स्त्री-उत्पीडनकारी तथ्यों के पर्दाफाश करने के साथ-साथ नारीवादी लेखिकाएँ पुरुष द्वारा निर्मित साहित्यिक मान्यताओं

को कठघरे में खड़ा करती है। प्रहार नामक कविता इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस में चट्टान तोड़नेवाली एक मज़दूरिन का चित्रण है। निराला की कविता तोड़ती पत्थर' की मज़दूरिन से बिलकुल भिन्न है इसकी दृष्टि। उसकी आँखों में आज ज्वाला धधक रही है। - देखती बार-बार मुझे / एक बार देखा / उसने इस नज़र से / हो गयी मैं विचलित / उसकी आँखों में / धधक रही थी / एक ज्वाला / लगता था कर देगी / प्रहार इन आँखों से।

नैतिकता के दोहरे मापदण्डों के खिलाफ विद्रोह नारीवादी लेखन का अनिवार्य छर्त है। नीलम ने अपने काव्य-संकलन का नाम 'सबसे बुरी लडकी' रखा है। रोचक तथ्य यह है कि लड़की अच्छी है या बुरी इसका फैसला करनेवाला पुरुष है। पुरुष द्वारा निर्धारित नैतिक मान्यताओं के पालन करनेवाली लड़की या नारी ही आदर्श कहलाती है।

लेखिका इस मिथ को, पितृसत्तात्मक समाज द्वारा गढ़ी गई अच्छी'' और बुरी'' की परिभाषाओं को तोड़ना चाहती है। - मैं बहुत बुरी लड़की हूँ / क्योंकि मैं हँसती हूँ / सभ्य लड़कियाँ हँसती नहीं / उनकी आँखों में होती है / हया और शझार्म / मेरी आँखों की / ज़र्म और हया मर गयी है / क्योंकि मैं खुलकर हँसती हूँ / (सबसे बुरी लडकी)

लेखिका के विचार में इस देश की अच्छी लड़कियाँ न सोचती हैं, न खुलकर बोलती हैं, न ख्वाब देखती हैं और न ही समानता की बातें करती हैं। सच्चाई यह है कि पितृसत्तात्मक या पुरुषमेधा समाज की नज़रों में वे इन्हीं गुणों के कारण अच्छी लड़की' है। लेखिका इस बात से वाकिफ है कि इन परिभाषाओं को तोडे बिना नारी-मुक्ति संभव नहीं है। इसलिए वह अपने आपको इन परिभाषाओं से परे मानती है। - लेकिन मैं तो परे हूँ इससे / क्योंकि मैं हँसती हूँ खुलकर / बोलती हूँ बेबाक / ख्वाबों के भरती हूँ उड़ान / सजग अपने अधिकारों से / रचती

हूँ / एक नया समतामूलक संसार / वाकई में मैं / इस देश की सबसे बुरी लड़की हूँ। (सबसे बुरी लडकी)

''स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि उसे बना दिया जाता है।'' विख्यात लेखिका सिमोन द बुआर का प्रस्तुत कथन काफी चर्चित है। पितृसत्तात्मक समाज नारी के ऊपर उसका जो अधिकार और नियंत्रण है, उसे कायम रखने के लिए बचपन से ही उसको पितृसत्तात्मक साँचे में ढालना आरंभ कर देता है। सिमोन द बुआर के डाब्दों में- ''औरत को औरत होना सिखाया जाता है। औरत बनी रहने के लिए उसे अनुकूल किया जाता है।(2) इस प्रकार औरत को एक पूर्वनिर्धारित साँचे में ही बडी होनी है। बचपन से ही लड़की की सीमायें निर्धारित की जाती हैं। उसके लिए अलग शिक्षा दी जाती है और उस पर हमेशा अनुशासन की कडी निगाह बनी रहती है। कहना न होगा कि पुरुष द्वारा निर्धारित इस अनुशासन का पालन करनेवाली ही अच्छी लड़की है। इस अनुशासन का पालन कराना प्रत्येक नारी की नियति है। उसे हर वक्त याद दिलाया जाता है कि चुप रहना ही तंरा काम है- धीरे-धीरे / सुन-सुन के ताने / होने लगी बड़ी / जब हुई / थोड़ी सी बड़ी / लोगों ने बोला, / बेटी की जात है / चुप रहना ही तेरा काम (नियति)

नीलम की कविता इस तरह औरत को गढ़ने की प्रक्रिया की आलोचना करती है। नारी जताना चाहती है कि वह अपने आपको केवल घर की चहारदीवरी में कैद करने को तैयार नहीं है। पुरुष का विचार ऐसा है कि नारी को भौतिक सुविधाएँ प्रदान करके उसे अपने अधीन में रखना संभव है। किन्तु आज नारी इन उपहारों का तिरस्कार करती है- हमें उपहार नहीं चाहिए / साड़ी और फ्रॉक नहीं चाहिए / हमें एक लंबी उड़ान चाहिए / गुडिया और बार्बी

डॉल ले लो / दे दो, / कार और हवाई जहाज़ हमको / (हमें उपहार नहीं चाहिए)

पितृसत्तात्मक समाज बच्चों के खिलौनों में भी लिंग-भेद चढ़ाता है। वह लड़का और लड़की को अलग-अलग खिलौने देकर उसके चरित्र को गढ़ना चाहता है। गुडिया और बार्बी डॉल लड़कियों के खिलौने हैं। लड़कों के खिलौने कार और हवाई जहाज़ का संबंध 'बाहर' और 'असीम आसमान' से हैं किन्तु आज नारी इस साजिश से वाकिफ है। प्रस्तुत पंक्तियाँ इसका प्रमाण है।

स्त्री को देवी घोषित करना वास्तव में स्त्री के ऊपर उसके शोषण को बरकरार रखने का एक उपाय मात्र है। बेबस योनी' नाम की तीन कविताओं से पुरुष की इस असलियत का पोल खोल देती है नीलम। - धन की लक्ष्मी वह / लेकिन रहे विष्णु के पैरों तले / उससे ऊपर / सोच न पाये / विद्या की देवी तो कहलाये / लेकिन उस / विद्या से रहे दूर / बने साक्षर / लेकिन रहे शिक्षा विहीन / (बेबस योनि-एक)

पुरुष चाहे दुर्गा, चंडी, काली आदि जो भी नामों से स्त्री को अभिहित करें, किन्तु उसकी नज़र में स्त्री की वास्तविक छवि भोग्या की ही है। उसे रात में स्त्री के रति या उर्वशी रूप चाहिए।

नारी 'सामान्य' की स्थिति से हमेशा वंचित है। समाज द्वार उसकी पूजा करना वास्तव में एक दिखावा मात्र है। नीलम की निम्नलिखित पंक्टियाँ भारतीय नारी के जीवन की वास्तविकता को व्यक्त करती हैं, - पूजा तो करेंगे तेरी / लेकिन रखेंगे ताले में / खींच दिया / जो लक्ष्मण रेखा / उससे बाहर न होना तुम! / औरत हो / औरत ही रहना (बेबस योनि-तीन)

उपनिवेशवादी संस्कृति ने नारी देह के वस्तुकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है।

पुरुष की नज़र में नारी महज देह है, वह सिर्फ भोगने की वस्तु है। प्रत्येक स्त्री देह उसके लिए एक नयी 'ैकेन्सी' मात्र है। उसकी सुप्त इन्द्रियाँ तब सक्रिय हो उठती हैं जब कोई स्त्री उसके सामने से गुज़रती है। - उनकी समस्त नज़रों में / एक मानव देह / वस्तु में, / तब्दील हो जाती है / सच में / (वैकेन्सी)

''मेंहदी हूँ कविता में भारतीय नारी के जीवन की सच्चाई को उजागर किया गया है। एक औसत भारतीय नारी का जीवन पुरुष के डूर्द-गिर्द ही घूमता रहता है। वह पुरुष के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है, उसके हर कार्य में सहयोग देती है किन्तु यह तो सिर्फ इसका फर्ज़ माना गया है। वह अपने जीवन को मिटाकर भी पुरुष की भलाई चाहती है। वह उस मेहंदी के समान है जो अपना सारा रंग देकर बेरंग हो जाती है।

नारी जीवन को अभिशप्त बनाने में दहेज-प्रथा की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। उपनिवेशवादी संस्कृति से उपजी वणिकवृत्ति और उपयोगिता की मानसिकता के कारण दहेज- प्रथा आज काफी जटिल हो गई है। 'दहेज के लोभी'' कविता में इस स्थिति का चित्रण किया गया है। दमकेगा वैभव मेरा'' कविता का विषय भी यही है। ऐ.ए.एस. प्राप्त पुरुष अब अपने को बिकने को उद्यत है। ऐ.ए.एस उसके लिए ज़्यादा दान-दहेज वसूल करने का साधन मात्र है। - लो बन गया / मैं आई.ए.एस./ जितना पढ़ा / जितना लगाया / आज उतना वसूलूगा / लो मैं बन गया / आई.ए.एस. / खड़ा हूँ बाज़ार में / लगा लो बोली / बिकने को मैं तैयार

(दमकेगा वैभव मेरा)

''पु" नरक से पिता की रक्षा करनेवाला पुत्र भारतीय परिवारों में विशेष अधिकारों के

हकदार है। वह पुत्री की अपेक्षा श्रेष्ठ माना गया है। पुत्र ही परिवार का नाम और वंश चलाता है। विश्वास ऐसा है कि वृद्धावस्था में पुत्र ही माता-पिता का संरक्षण करने की योग्यता रखता है। इन्हीं कारणों से पुत्र और पुत्री के साथ परिवारवालों के सलूक में गहरा अन्तर है। इस संबंध में श्रीनिवास गुप्त का कथन उल्लेखनीय है, ''पुत्री को तो बचपन के पूरे अधिकार भी नहीं दिए जाते हैं। लड़कियों को मौलिक स्वास्थ्य सेवा, पोषण और शिक्षा की पर्याप्त सुलभता से वंचित रखा जाता है। लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ अधिक संख्या में कुपोषण की शिकार होती हैं। इसी प्रकार परिवारों में लडकों की शिक्षा पर जितना ध्यान दिया जाता है उतना लडकियों पर नहीं दिया जाता। उनके विवाह की बात से उन्हें सदा जोडे रखा जाता है।(3)

बेटा और बेटी के बीच के इस भेदभाव के कारण बेटी को जन्म देनेवाली माँ भी अपने आपको बदकिस्मत मानती है। - पैदा हुई तो उदास / हो गया सारा घर / लोगों ने कहा- बेटा होता / तो अच्छा था / दादी-दादा रोये / बापू रोया / फिर रोयी माँ बेचारी / बोली किस्मत थी / मेरी बे / मेरी बेकार / जो जना मैंने बेटी / (नियति)

इस भेदभाव का भीषणतम रूप है कन्या-भ्रूण हत्या। जन्म लेने से पूर्व ही अपने मानवीय अधिकारों से वंचित होने के लिए विवज्ञ है नारी। इस समस्या का चित्रण नीलम अपनी कविता माँ आने दे' में बहुत ही संवेदनात्मक ढंग से करती है। गर्भ में पड़ी हुई बच्ची कहती है, - माँ आने दो मुझको / देखूँगी प्यारा संसार / पापा का हाथ पकड़कर / मैं इतराऊँगी / तेरी अंगुली पकड़कर / जाऊँगी बाज़ार / माँ आने दो मुझको / (माँ आने दे)

पित्सत्तात्मक के खिलाफ विद्रोह कविता का अनिवार्य शर्त है । पित्सत्तात्मक समाज के खिलाफ सख्त विद्रोह नारीवादी कविता का अनिवार्य शर्त है। विद्रोह का पहला कदम

पहचान है। पहचान के बाद उस व्यवस्था का ध्वंस करना भी अनिवार्य है, जिसके कारण नारी ज़ोषण का शिकार है। ज़ोषण के नए-नए तरीकों से आज पूरी तरह वाकिफ है नारी। उसे पूर्ण विश्वास है कि वह पितृसत्तात्मक समाज के मकड़जाल से मुक्त हो जाएगी। - लेकिन ज़ान के आगे / ध्वस्त हो जाता है तुम्हारा किला / समझ चुके हैं लोग / तुम्हार मकड़जाल को / अब वो फँसने को नहीं तैयार / तुम्हारे बनाए जाल के / एक-एक रेशे को तोड़कर / निकलेंगे बाहर (मकड़जाल)

पितृसत्तात्मक सामाजिक नियम और परिवारिक साँचे ने मिलकर नारी की हालत कुछ इस तरह बनायी कि उसके स्वतंत्र अस्तित्व के बारे में सोचने की कोई गुंजाईश नहीं रही। हमारे समाज और परिवार के अंतर्गत नारी एक व्यक्तित्व विहीन इकाई मात्र थी। पुरुष से अलग उसके व्यक्तित्व की कल्पना करना संभव ही नहीं था। वास्तविकता यह है कि उसके लिए कोई नाम तक हासिल नहीं था। अमुक की बेटी, अमुक की पत्नी, अमुक की माँ, यही नारी की पहचान थी। नारी-शिक्षा एवं पाश्चात्य नारीवाद के प्रचार ने ही भारतीय नारी को सबसे पहले अपने अस्तित्व के बारे में सोचने को विवज्ञ किया था। वास्तव में इसी सोच ने ही उसके मन में अस्मिता बोध को जन्म दिया था। आज की जागृत नारी के लिए अपनी अस्मिता ही सर्वोपरी है। अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए आज वह किसी भी तरह के समझौते के लिए तैयार नहीं है। अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत नारी उसकी रक्षा करने में आज पूरी तरह समर्थ है। वह कहती है - ललकारो मत / हमारे अस्तित्व को / हमें है उस पर नाज़ / डालोगी यदि हाथ इस पर / कर देंगे जला कर राख / हैं नहीं / अब हम अबला / नहीं हैं हम / सत्ययुग के सीता-सावित्री / हैं हम / आज की नारी। (प्रतिबंध)

नारी द्वारा लिखित साहित्य पर प्रायः यह आरोप लगाया जाता है कि वह लिंग (gender) केन्द्रित है। लेकिन समकालीन नारीवादी लेखिकायें इस भ्रम को तोड़ रही हैं। वे प्रत्येक क्षेत्र में आज अपनी भूमिका जाहिर करना चाहती हैं। उनकी चिंता और उनकी प्रतिबद्धता आज केवल नारी वर्ग तक सीमित न होकर संपूर्ण मनुष्य को लेकर है, संपूर्ण देश को लेकर है। इसलिए अपने डिजिटल देज्ञ की वर्तमान स्थिति को लेकर काफी चिन्तित है नीलम। इस डिजिटल देश में आज भी लोग दाने-दाने को मरते हैं किन्तु यहाँ निर्जीव मूर्तियों के सामने दूध की नदियाँ बहायी जाती हैं। एक ओर घी के दिये जलते हैं तो दूसरी ओर इन्सान ज़िन्दा दफनाये जाते हैं। धार्मिक कर्मकाण्ड की व्यर्थता इस प्रकार चित्रित है, - क्या हम / उस देझ्ञ के वासी हैं / जहाँ दाने-दाने को भी / मरते हैं लोग / वाह रे मेरे देश के लोग / मेरे देश का धर्म / मेरे देश की संस्कृति / जहाँ इनसान से / ज़्यादा पेट भरते हैं लोग / निर्जीव वस्तु का (त्यौहारी)

मनुवाद के कारण आज देज्ञ का संविधान खतरे में है। आज वैज्ञानिक बोध या समझ के स्थान पर पुरानी रूढियों की पुनःस्थापना करने के लिए तुले हैं कुछ लोग। नींबू-मिर्च' कविता में इस बात की हँसी उठाती है लेखिका। - अब नींबू-मिर्च से / होगा दुइ्मन देश परास्त / अब तो / एक श्राप पर आँधे मुंह / लटकेगा पाकिस्तान (नींबू-मिर्च)

''आया राजतंत्र' नामक कविता में भी देश की वर्तमान स्थिति पर गौर से विचार किया गया है। अभिव्यक्ति की आज़ादी आज खतरे में है। क्योंकि आज प्रजातंत्र के स्थान पर राजतंत्र आ गया है। - सावधान! / होशियार! / खबरदार! / सुनो-सुनो! / देशवासियों! / हमारे लोकतंत्र में / बोलना मना है, / हँसना मना है, / सवाल करना मना है / (आया राजतंत्र)

लेखिका राम राज्य के नाम पर करनेवाली मनमानी के खिलाफ आक्रोश करती है 'राम राज्य' नाम की कविता के माध्यम से। लेखिका इस बात से अवगत है कि जिस राम राज्य की कल्पना आज के सत्ताधारी कर रहे हैं, उसमें हाशिएकृत लोगों की क्या दशा होगी। - औरत को अब भी / ये न समझे इन्सान / दलितों का करते / ये संहार / राम के नाम पर / अल्पसंख्यकों को / भेजते पाकिस्तान / देखो देखो / अब फिर आया राम राज्य / (राम राज्य)

''उठो संघर्ष करो' कविता में सारे हाशिएकुत लोगों से एकजुट होकर संघर्ष ज़ारी रखने का आह्वान देती है नीलम। जाहिर है यहाँ संघर्ष तोड़ के लिए नहीं निर्माण के लिए है, जो साहित्य का सबसे सकारात्मक पक्ष है। - फिर भी हम / नया इतिहास बनायेंगे / क्यों डरते हैं / दुनिया से हम / दुनिया तो हमें डरयेगी / लेकिन बिना डरे हम / बिना रुके हम / मिलकर / नयी राह बनाएंगे। (उठो संघर्ष करो)

साहित्य का रचनात्मक पक्ष है निर्माण। यहाँ निर्माण के लिए ही संघर्ष है। ''आइकॉन' कविता में मनुवाद अथवा परंपरागत पितृसत्तात्मक मूल्यों को तोड़नेवाली नारी को आज की आइकॉन (icon) के रूप में चित्रित किया गया है जो सारी रुणा परंपराओं और संस्कृतियों को भेदती है और ललकारती है। यह नारी 'नारीत्व' न ने तोड़ती है संस्कृतियों को भेदती है और ललकारती है। यह नारी 'नारीत्व'' की परंपरागत मिथ को तोड़ती है। नैतिकता के उसूलों पर वह प्रहार करती है। नारी का यह रूप देखकर मनुवादियों का सिंहासन हिल रहा है। - पुरुषत्व को / तोड़ती तुम / सीता-सावित्री की / धारणा को / तोड़ती तुम / शुचिता की दीवार / तुम हो, हाँ तुम हो / हम सबकी आइकॉन। (आइकॉन)

नारीवाद का मूल उद्देश पितृसत्तात्मक मूल्यों के खिलाफ संघर्ष करने के लिए नारी

को प्रश्नय देना है । किन्तु नीलम जैसी समकालीन लेखिकाएँ पुरुष को शतु नहीं मानतीं। उनका विश्वास सहयोग में है, पुरुष के साथ कदम मिलाकर चलने में हैं। नारी की इच्छा पुरुष के साथ आसमान में उड़ने की है, सब होंगे बराबर' कविता में यही भाव व्यक्त हुआ है। - उड़ती रहूँगी / बिना डर के / खुले आसमान में / जहाँ न कोई भेद होगा / औरत और मर्द का / सब होंगे बराबर / न कोई फर्क होगा / न होगा कोई भेद / मिलकर हम उड़ेंगे / खुले आसमान में। (सब होंगे बराबर)

कहना न होगा कि नीलम की कविताएँ समकालीन मुद्दों से सीधा संबंध रखती हैं। उसमें पहचान और प्रतिरोध दोनों के स्वर दर्ज हुए हैं। सृजनात्मकता की इच्छा उसका प्रबल पक्ष है। समकालीनता को परिभाषित करते हुए डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने यों लिखा था, ''समकालीनता, एक काल में साथ-साथ जीना नहीं है समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का 'मुकाबला' करना है । समस्याओं और चुनौतियों में भी, केन्द्रीय महत्व रखने वाली लत समकालीनता होती 9 निस्संदेह सिर कविताएँ वाली समस्यावों की समझ से समकालीनता उत्पन्न होती है। '' निस्संदेह नीलम की कविताएँ अपने समय की समस्याओं का, अपने समय की चुनौतियों का मुकाबला करती हैं।

संदर्भ-ग्रन्थ

1.रामधारीसिंह दिनकर, उर्वशी, द्वितीय अंग, पृ-29
2. सिमोन द बुआर, The Second Sex, स्त्री उपेक्षिता, अनुवादक-प्रभा खेतान, पू-24
3. श्री निवास गुप्त, वसुधा-विशेषांक, 59-60, अक्टूबर 2003-04, पृ-224-22
4. समकालीन सिद्धांत और साहित्य, डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ-6

Dr.DEEPAK.K.R
Assistant Professor
Department of Hindi
University of Kerala
Thiruvananthapuram

****

30

समकालीन हिंदी साहित्य-विस्थापन के संदर्भ में

डॉ. आर जयचंद्रन

विस्थापन का स्वरूप

जब एक व्यक्ति या समूह अपने देश से निर्वासित होकर उस देश की भाषा में साहित्य रचना करते हैं तो उस व्यक्ति की रचना को विस्थापन साहित्य के रूप में परिभाषित किया जाता है।हिंदी शब्द विस्थापन के समानार्थी रूप में अंग्रेजी में diaspora/exile/displacement आदि शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है ।इसके लिए हिंदी में निर्वासन/निष्कासन/जलावतनी आदि शब्द भी प्रयोग में है। वैश्वीकरण विस्थापन के नए पैटर्न को जन्म दिया है और दुनिया भर में भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाओं को जागृत करने का कार्य किया है।

विस्थापन के संदर्भ में कुछ सवाल विशेष बल के जाय उत्पन्न होता है।

1.अंतरराष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद के बीच तनाव

2. स्थान और पहचान के बीच संबंध

3.संस्कृति और साहित्य के बीच के तरीके,

आदि गतिशीलता के नए पैटर्न प्रवास और निर्वासन बहिष्करण के परिचित परिदृश्य पर तैयार किया जाता है।

परिभाषा

विस्थापन एक भूभाग का छूटना नहीं या एक भूगोल से निकल कर दूसरे भूगोल में चला जाना मात्र नहीं है, बल्कि अपने इतिहास, अपनी संस्कृति, अपनी भाषा, अपनी प्रकृति से भी बाहर होना है। जिसकी क्षतिपूर्ति भी संभव नहीं है। विस्थापन का विस्तार कहाँ से कहाँ तक हो सकता है, तो इस प्रश्न का उत्तर संभवतः यही होगा- गांव से जबरिया फेंके जानो एवं सांस्कृतिक चौपाल का ई-चौपाल में बदले जाने तक हो सकता है। बाजारवाद के फलस्वरूप अपने भीतर आयी बेदखली तक लेकिन हम विस्तार का खतरा यह है कि विस्थापन का जो वर्तमान प्रसंग है, वह एकतरफा रह जाएगा।

विस्थापन (Displacement) को सामाजिक विज्ञान में एक महत्वपूर्ण शब्द माना जाता है। यह शब्द विभिन्न प्रकार के सामाजिक और आर्थिक प्रक्रियाओं को व्यक्त करता है, जहां मानवीय निर्णयों के कारण लोग अपने स्थायी या अस्थायी निवासस्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर जाने के लिए मजबूर होते हैं। विस्थापन का कारण विभिन्न हो सकते हैं, जैसे कि विकास परियोजनाएं, नैतिक बाधाएं, संघर्ष, आराजकता, युद्ध, प्राकृतिक आपदायें आदि। विस्थापन की परिभाषा और भेदों के साथ, यह महत्वपूर्ण है कि हम उसके सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं को भी समझें। विस्थापन सामाजिक न्याय और मानवाधिकार के मुद्दों को उठाता है, क्योंकि इसके दौरान लोगों के अधिकारों, स्वतंत्रता और गरिमा पर प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए, सरकारों, सामाजिक संगठनों और अन्य हितधारकों को उन लोगों की सहायता करने के लिए जिम्मेदारी और सावधानीपूर्वक योजनाएं बनानी चाहिए जो विस्थापित लोगों को आरामदायक स्थानों पर समायोजित करें और उन्हें उनके नए संदर्भों में समर्थन प्रदान करें।

सार्वभौमिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो, विस्थापन एक सामाजिक मुद्दा है जो हमें यह समझने के लिए प्रेरित करता है कि हमारी समाजिक, आर्थिक और न्यायिक व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो स्थायी और अस्थायी विस्थापन को कम कर सके और अस्थायी विस्थापन के प्रभावों को समय-समय पर दूर कर सके। इसके लिए, नीतियों, कानूनों और कार्यक्रमों को विकसित करने की आवश्यकता होती है जो विस्थापन के प्रभावों का प्रबंधन करने, प्रतिसाद देने और पुनर्वास को सुनिश्चित करने में मदद करें।

अधिकांश मामलों में, विस्थापित लोगों को सामान्यतः समर्थन, संरक्षण, पुनर्वास और सुधार की आवश्यकता होती है। सरकारों को इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संबंधित विभागों, अधिकारियों और संगठनों के साथ मिलकर काम करना चाहिए। यह आवश्यक है कि स्थायी और अस्थायी विस्थापन के बारे में सामरिक और व्यावसायिक नीतियों का विकास किया जाए, जो लोगों को सहायता, समर्थन और विकास के लिए संघर्ष करने में मदद कर सकें।

विस्थापन एक मानवीय मुद्दा है जिसे हमें गंभीरता से देखना चाहिए। यह हमारे समाज के विकास और प्रगति को प्रभावित कर सकता है और साथ ही, यह हमारी मानवीयता, न्याय और समरसता के मानकों का परीक्षण कर सकता है। हमें समझना चाहिए कि विस्थापित लोगों के साथ सहयोग और समर्थन करना

आवश्यक है ताकि हम सामाजिक न्याय और मानवाधिकार के मूल्यों को प्रदर्शित कर सकें।

अच्छी नीतियों, कानूनों और कार्यक्रमों के साथ संयुक्त प्रयास द्वारा हम विस्थापित लोगों को आरामदायक और सुरक्षित नए स्थानों पर स्थापित कर सकते हैं। उच्चतम स्तर पर, हमें विस्थापन के कारणों को पहचानना, उन्हें नियंत्रित करने के लिए उपयुक्त नीतियों को अमल में लाना और संगठित सामाजिक सहायता और पुनर्वास कार्यक्रमों का विकास करना आवश्यक है।

विस्थापन को न्यायिक, सामाजिक और आर्थिक मुद्दों के संदर्भ में समझना आवश्यक है। यह हमारी समाज की स्थायित्वता, समरसता और सामाजिक समावेश की मान्यताओं को परीक्षण कर सकता है। स्वतंत्रता, अधिकार, और समानता के मूल्यों की संरक्षण और प्रोत्साहन करने के लिए हमें विस्थापन से प्रभावित होने वाले लोगों के साथ मिलकर काम करना चाहिए। यह हमारी जिम्मेदारी है कि हम विस्थापित लोगों को समर्थन, सुरक्षा, और समावेश महसूस कराएं ताकि उन्हें उनकी पुनर्वास की प्रक्रिया में सहायता मिल सके।

समाज के सभी स्तरों पर, हमें विस्थापन के प्रभावों को मिटाने के लिए सामाजिक, आर्थिक, और मानव संसाधनों का संगठन करना चाहिए। विस्थापित लोगों को अवसरों का निर्माण करने, उन्हें पुनर्वास की प्रक्रिया में सक्षम बनाने, और उन्हें स्थायी और सुरक्षित निवासस्थान प्रदान करने के लिए नीतियों और कार्यक्रमों को विकसित करना चाहिए।

विस्थापन के भेदों को समझना महत्वपूर्ण है ताकि हम उच्चतम स्तर पर उन्हें समझ सकें और इससे उत्पन्न होने वाली मानसिक, आर्थिक, और सामाजिक समस्याओं का समाधान करने के लिए उच्चतम स्तर पर नीतियों को विकसित कर सकें। विस्थापन के प्रभावों का प्रबंधन करने, विस्थापित लोगों को समर्थन प्रदान करने, और समाज को समानता और न्याय के मूल्यों पर आधारित बनाने के लिए हमें स्थायी और सुरक्षित स्थानों का निर्माण करना चाहिए।

विस्थापन एक महत्वपूर्ण शब्द है जो आपके समाजशास्त्रीय और वातावरणीय अध्ययन के संदर्भ में महत्वपूर्ण है।विस्थापन के विभिन्न प्रकार हैं, जो निम्नलिखित हैं जैसे कि नौकरी के लिए शहरों की ओर लोगों का प्रवास, ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में लोगों का प्रवास, और आदिवासी समुदायों को वनों से बाहर निकाल देना आदि।

विस्थापन के लक्षण

1.अव्यवस्था (Dislocation)

2.विषाद (Nostalgia)

3.भेदभाव (Discrimination)

4.अस्तित्व (Survival)

5.सांस्कृतिक पहचान (Cultural identity)

6.सांस्कृतिक परिवर्तन (Cultural change)

7.बहु-सांस्कृतिकवाद (Multi culturalism)

8.दोहरे पहचान (Dual identity)

इन लक्षणों के साथ कोई भी रचना हमारे सामने आए तो उसे विस्थापित साहित्य की कोटि में रखा जाना समीचीन है।

विस्थापन के तीन प्रकार आज की परिस्थिति में संभव है

1.देश निकाला जाना

2.रोज़ी रोटी के लिए घर बार छोड़कर दूसरे देश जाना

3.मानसिक विस्थापन

विस्थापन का साहित्यिक संदर्भ

हिंदी में कविता के क्षेत्र में जो विस्थापन नज़र आता है खासकर उसमें कश्मीरी कवि अग्नि शेखर का जिक्र अधिक समीचीन प्रतीत होता है । विस्थापन का दर्द क्या होता है ? विस्थापितों की मानसिकता क्या होती है ? इस पर उनकी कविताएँ हमें उदाहरण के रूप में कई चीजों का पोल खोलने वाली है। जवहर टनल, मुझसे छीन ली गई मेरी नदी ,जीवन राग आदि कवितायें विशेष उल्लेखनीय हैं । काला दिवस उनकी एक और उल्लेखनीय कविता हैं ,पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार है:-

'आज के दिन

मैं यहूदियों की तरह किसी वेलिंग वाल के सामने जाकर

रोता चाहता हूँ जोर-जोर

अपनी जिनोसाइड और जलावतनी

भूल जाना चाहता हूँ

और पलट कर

कल्पनातीत जो-जो हुआ हमारे साथ

मैं छूना चाहता हूँ

एक नया और ताजा आकाश'।

दूसरा विस्थापन

दूसरा विस्थापन लोगों को रोजी-रोटी के लिए घर-बार/गाँव/कस्बा छोड़कर दूसरे प्रदेश में जाकर बसना पड़ता है। विश्वग्राम की भावना बहु-सांस्कृतिकवाद से चलकर सम-संस्कृति, सम-भाषा एवं सम-सभ्यता की ओर अग्रसर है। रोजी-रोटी के लिए अपनी मातृभूमि को छोड़कर यात्रा एवं हुनर जिसका उद्देश्य हो गया है। ऐसे विस्थापित लोगों की त्रासदी अलका सरावगी के उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' में दर्शाया गया है।

तीसरा विस्थापन -मानसिक विस्थापन

इस प्रकार का विस्थापन भारतीयों को ज्यादा अनुभव होता है। पहले दूसरे व तीसरे प्रकार का विस्थापन 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में झलकता है। समकालीन कथा साहित्य में किसान लगभग गायब है। लेकिन अलका जी ने किसानों को इस रूप में रेखांकित किया है। 'हमारा इंडिया विकास के पथ पर बढ़ रहा है, उसके रास्ते में जो भी पत्थर आएँगे, उन्हें हटाना हमारा कर्तव्य है। किसानों का निर्वासन किसी बड़ी लीग में शामिल होना, बड़ी-बड़ी कॉर्पोरेट कंपनियों के लिये काम करना भला गुनाह कैसे हो गया? अगर वह काम भी नहीं है कि स्पेशल यानी कि सेज बनाने के लिए दो चप जौ किसानों को उजाड़ रही है तो क्या वे भी गुनेहगार हैं ? सरकार, कंपनी,किसान सब अपना अपना फायदा देख रहे हैं'(एक ब्रेक के बाद ,पृ.सं -146)

मानसिक विस्थापन को समझाने के लिए ये पंक्तियाँ भी अत्यंत समीचीन प्रतीत होता है : 'तुम्हें क्या मालूम कि वहाँ बिज़िनेसमैन के पास बड़े से बड़े हो जाने का ग्लोबल सपना है, दलाल का दूसरों की मेहनत में हिस्सा पाते रहने का सपना है, नेता का स्विज़बैंक में अकाउंट खोलने का सपना है, अफसर का घूस की रकम

सपरिवार शॉपिंग मॉल में खर्च करने का सपना है। तुम अखबार पढ़ते हो या नहीं, गांवों के पास सपना है शहर बनने का, महानगरों के पास मेट्रोपोलिस बनने का, हिमालय के सपनों की कब्रगाह पर अब नए सपने आ गये है बंधु(एक ब्रेक के बाद ,पृ-सं 214)

वैश्वीकरण के चलते इस प्रकार का विस्थापन बढ़ा और सम संस्कृति, भाषा एवं सभ्यता की बात चर्चित होने लगी।फिलहाल भारत की संस्कृति भारतीय नहीं,विदेशी भी नहीं,बल्कि संस्कृति विभाजित होती जा रही है। विस्थापित होती जा रही है। इस प्रकार के सांस्कृतिक बदलाव की कई सारी कहानियाँ है- सुभाष चंद्र कुशवाहा की कहानी 'नून तेल मोबाइल', उदय प्रकाश का 'पॉल गोमरा का स्कूटर',जयनंदन का 'विश्व बाजार का ऊंट', अमरीक सिंह दीप का 'ड्राकुला', सुभाष पंत का 'बाज़ार', परितोष चक्रवर्ती की कहानी 'अंधेरा समुद्र' आदि।

ऋषिकेश सुलभ की कहानी 'डाइन' पढ़ने पर यह विस्थापित मानसिक द्वंद्व हमें घेर लेता है।डायन का नायक कोशी नदी की बाढ़ में किसी लापता लाश पर कब्जा करके बाढ़ में मरने वालों की सूची में वह अपने बाप का नाम दर्ज करता है और पैसा लेता है। लापता लोगों में अपनी माँ का नाम भी लिखवाकर वह पैसा वसूल करता है।तीन महीने के बाद जब माँ लौट आती है तो वह उसे पहचानने से इंकार करता है, माँ को देख कर उसे लगता है कि मुआवज़े के रुपए कोशी नदी में बहे जा रहे हैं ,और वह माँ के सामने 'डायन डायन' चिल्लाता है ,क्यों कि नायक मानसिक रूप से अत्यंत विस्थापित हो गया है।

उदय प्रकाश का 'पॉल गोमरा का स्कूटर' का नायक राम गोपाल सक्सेना अपनी अस्मिता से पलायन चाहता है।वह अपाची इंडियन, रेमो फर्नांडिस,साम पित्रोदा आदि की बराबरी करने के लिए अपना असली नाम राम गोपाल सक्सेना को बदल देने का निर्णय कर लेता है।

अपने परिवेश से विखंडन वादी संस्कृति को वह अपना लेता है। इसकी वजह से बदल देता है अपना नाम राम गोपाल से पॉलगोमरा। अपने विघटित मानसिक स्थिति के कारण प्रेमचंद, लल्लूलाल, हज़ारीप्रसाद, कबीरदास आदि नाम उसे पिछड़ा, दकियानूस और अधम दर्जे का लगने लगा।

विस्थापन के दौर में पिता पुत्र के संबंध का एक अनोखा दास्तान है देवेंद्र की कहानी 'क्षमा करो हे वत्स' ।बहू के किसी और के साथ भाग जाने पर दांत पीसते हुए पिता बेटे से कहता है- हिजड़े जनखे! बूत नहीं

था तो मुझसे कहा होता। उत्तर में बेटा चीख उठता है- मैंने आपको मना किया था क्या? हिंदी कहानी में ऐसे बाप बेटे का चित्रण भी मिलता है।

तीसरे प्रकार का यह विस्थापन की मानसिकता यह विखंडित, विस्थापित, विभाजित मन का यह उपभोक्तावादी आकर्षण, विकर्षण उसे अपने समाज और संस्कृति से काटता है साथ ही साथ उसको समाज और संस्कृति से अलग भी कर देता है ,जैसे गोमरा की कविता में व्यक्त की गई है, :-

'प्रजातियाँ लुप्त हो रही है
यथार्थ मिटा रहा है जिनका अस्तित्व
हो सके तो हम उनकी
हत्था में न हो शामिल
और संभव हो तो संभाल कर रख लें
उनके चित्र
ये चित्र अतीत के स्मृति चिह्न हैं'।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.एक ब्रेक के बाद -अलका सरावगी
2.काला दिवस —अग्निशेखर
3.डाइन — ऋषिकेश सुलभ
4.पॉल गोमेरा का स्कूटर —उदय प्रकाश
5.क्षमा करो हे वत्स —देवेन्द्र

डॉ. आर जयचंद्रन
प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग
कार्यवट्टम कैंपस
केरल विश्वविद्यालय

****